

भारतीय राजनीति

BAPOL-201

Self Learning Material



Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY

MEERUT-250005

UTTAR PRADESH

SIM Module Developed by :

Reviewed by :

-

Assessed by:

Study Material Assessment Committee, as per the SVSU ordinance No. VI (2).

Copyright © Laxmi Publications Pvt Ltd.

No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior permission from the publisher.

Information contained in this book has been published by Laxmi Publications Pvt Ltd and has been obtained by its authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the publisher and its author shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specially disclaim and implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by : Laxmi Publications Pvt Ltd., 113, Golden House, Daryaganj, New Delhi-110 002.

Tel: 43532500, E-mail: info@laxmipublications.com

DEM

Typeset at:

Edition: 2020

C—

Printed at:

विषय-सूची

1. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था	1
1.1 उद्देश्य	1
1.2 प्रस्तावना	1
1.3 भारतीय संविधान सभा—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	1
1.4 संविधान सभा की रचना और उसकी प्रकृति	3
2. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की विशिष्टताएँ	5
2.1 उद्देश्य	5
2.2 प्रस्तावना	5
2.3 भारत का संविधान	6
2.4 संसदात्मक प्रजातंत्र	8
2.5 भारत : एक संघ	8
2.6 भारत में संसदीय लोकतंत्र	10
2.7 संसदीय प्रणाली बनाम अध्यक्षीय प्रणाली	10
3. संघीय संसद : लोक सभा और राज्य समा	14
3.1 उद्देश्य	14
3.2 प्रस्तावना	14
3.3 संघीय संसद की विशेषताएँ	15
3.4 राज्य सभा—राज्यों की परिषद्	18
3.5 राज्य सभा की शक्तियाँ और कार्य	21
3.6 राज्य सभा की उपयोगिता	24
3.7 लोक सभा—लोगों का सदन	26
3.8 लोक सभा की शक्तियाँ और कार्य	32
3.9 लोक सभा का स्पीकर	35
3.10 लोक सभा और राज्य सभा में संबंध	38
4. संघीय संसद की समितियाँ	44
4.1 उद्देश्य	44
4.2 प्रस्तावना	44
4.3 संघीय संसद की समितियाँ	45
4.4 संसदीय समितियों का संगठन	46
4.5 लोक सभा की विभिन्न समितियों के कार्य	47
4.6 वैधानिक समितियों के कार्य	48
4.7 वित्तीय समितियाँ	49

4.8	संयुक्त समितियाँ	52
4.9	कानून बनाने की प्रक्रिया	53
4.10	बजट पास करने की प्रक्रिया	57
5.	संघीय सरकार : राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति	63
5.1	उद्देश्य	63
5.2	प्रस्तावना	63
5.3	राष्ट्रपति के निर्वाचन का ढंग	64
5.4	राष्ट्रपति के चुनाव के ढंग की आलोचना	71
5.5	राष्ट्रपति की शक्तियाँ और स्थिति	74
5.6	राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ	83
5.7	संकटकालीन व्यवस्थाओं का औचित्य	90
5.8	भारत के उप-राष्ट्रपति	95
6.	मंत्रि-परिषद् और प्रधानमंत्री	97
6.1	उद्देश्य	97
6.2	प्रस्तावना	98
6.3	मंत्रि-परिषद् का निर्माण, गठन एवं कार्यकाल	98
6.4	मंत्रि-परिषद् और मंत्रि-मण्डल में अन्तर	100
6.5	मंत्रि-मण्डल के शक्तियाँ और कार्य	101
6.6	भारत का प्रधानमंत्री : योग्यताएँ, नियुक्ति, कार्य एवं शक्तियाँ	102
6.5	प्रधानमंत्री की स्थिति	108
6.6	प्रधानमंत्री की तानाशाही	109
6.9	भारतीय प्रधानमंत्री और ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियों में तुलना	110
6.10	भारतीय प्रधानमंत्री की शक्तियों तथा स्थिति की अमेरिकन राष्ट्रपति की शक्तियों तथा स्थिति से तुलना	112
7.	राज्य सरकार : राज्य-विधानमण्डल, राज्यपाल, मंत्रि-परिषद् और मुख्यमंत्री	114
7.1	उद्देश्य	114
7.2	प्रस्तावना	115
7.3	राज्य-विधानमण्डल के कार्य तथा शक्तियाँ	116
7.4	राज्य का राज्यपाल	119
7.5	राज्यपाल की भूमिका	125
7.6	राज्य मन्त्रि-परिषद्	132
7.7	राज्य का मुख्यमंत्री	137
8.	न्यायपालिका : सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, न्यायिका पुनर्निर्माण	144
8.1	उद्देश्य	144
8.2	प्रस्तावना	144

8.3	सर्वोच्च न्यायालय : रचना, शक्तियाँ और कार्य	145
8.4	राज्य उच्च न्यायालय	152
8.5	न्यायिक पुनर्निरीक्षण	158
8.6	भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण : विशेषताएँ	161
9.	सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था एवं लोक अदालत	168
9.1	उद्देश्य	168
9.2	प्रस्तावना	169
9.3	सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था : अवधारणा और प्रकृति	169
9.4	सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था की विशेषताएँ	170
9.5	लोक अदालत	172
9.6	लोक अदालतों का संगठन और कार्य करने का ढंग	173
9.7	भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता : विशेषताएँ	175

B.A. Political Science 1 Year: II Semester

Course Code Number: BAPOL-201

Course Title: Indian Polity (Compulsory paper)

Objective: This is a fundamental paper in the field of political science. This paper is designed to inculcate and flourish the students' understanding regarding the Indian Political landscape. This paper further illustrates the basic elements of the Indian Polity.

Unit I: Indian Polity- introduction, evolution, elements, features, functions.

Unit II: Union Legislature and State Legislature; Rajya Sabha and Lok Sabha; functioning of the Indian Parliamentary System.

Unit III: Union Executive- the President, the Prime Minister and the the Council of Ministers; State Executive- the Governor, the Chief Minister and the Council of Ministers.

Unit IV: Judiciary- the Supreme Court, Judicial Review, Public Interest Litigation, Judicial Activism, Judicial Reforms.

References for Reading:

- Brass, P.R. (1999) *The Politics of India Since Independence*. New Delhi: Cambridge University Press and Foundation Books.
- Agrawal, A. (2005) 'The Indian Parliament,' in Kapur, D. and Mehta P.B. (ed.) *Public Institutions in India: Performance and Design*. New Delhi: Oxford University Press.
- Manor, J. (2005) 'The Presidency', in Kapur, D. and Mehta, P.B. (ed.) *Public Institutions in India: Performance and Design*. New Delhi: Oxford University Press.
- Manor, J. (1994) 'The Prime Minister and the President', in Dua, B.D. and Manor J. (eds.) *Nehru to the Nineties: The Changing Office of the Prime Minister in India*, Vancouver: University of British Columbia Press.
- *Bhushan, P. (2007) 'Public Interest Litigation: Supreme Court in the Era of Liberalization', in Dua, B.D., Singh, M.P. and Saxena, R. (eds.) *Indian Judiciary and Politics: The Changing Landscape*. New Delhi: Manohar.
- *Ramchandran, R. (2006) 'The Supreme Court and the Basic Structure Doctrine', in Kirpal, B.N., Desai, A., Subramaniam, G., Dhavan, R., and Ramchandran, R. (eds.) *Supreme But Not Infallible: Essays in Honour of the Supreme Court of India*. New Delhi: Oxford University Press.

इकाई-1

अध्याय 1: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था (Indian Political System)

नोट

संरचना (Structure)

- उद्देश्य (Objectives)
- प्रस्तावना (Introduction)
- भारतीय संविधान सभा-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Indian Constitution Assembly-Historical Background)
- संविधान सभा की रचना और उसकी प्रकृति (Composition and Nature of the Constitution Assembly)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- संविधान सभा की रचना और प्रकृति के बारे में जानने हेतु;
- भारतीय संविधान-सभा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानने हेतु।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में ब्रिटिश, 1600 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में, व्यापार करने आए। महारानी एलिजाबेथ प्रथम के चार्टर द्वारा उन्हें भारत में व्यापार करने के विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। कंपनी, जिसके कार्य अभी तक सिर्फ व्यापारिक कार्यों तक ही सीमित थे, ने 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी (अर्थात् राजस्व एवं दीवानी न्याय के अधिकार) अधिकार प्राप्त कर लिए। इसके तहत भारत में उसके क्षेत्रीय शक्ति बनने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। 1858 में, 'सिपाही विद्रोह' के परिणामस्वरूप ब्रिटिश ताज (Crown) ने भारत के शासन का उत्तरदायित्व प्रत्यक्षतः अपने हाथों में ले लिया। यह शासन 15 अगस्त, 1947 में भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक अनवरत रूप से जारी रहा।

1.3 भारतीय संविधान सभा-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Indian Constitution Assembly-Historical Background)

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हमारे राष्ट्रीय नेताओं द्वारा बार-बार यह बात दोहराई गई कि ब्रिटिश संसद द्वारा बनाया गया संविधान भारतीय जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकता। दूसरों शब्दों में, संविधान का निर्माण ब्रिटिश

सरकार नहीं, भारतीय जनता के चुने हुए प्रतिनिधि करें। गांधी जी के शब्दों में, “स्वराज्य का अर्थ है—जन-प्रतिनिधियों द्वारा कायम की गई एक ऐसी व्यवस्था जो जनता की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं के अनुकूल हो।”

1917 में भारत मंत्री मान्टेग ने ब्रिटिश संसद में यह घोषणा की थी कि ब्रिटिश सरकार की नीति भारत में धीरे-धीरे ‘उत्तरदायी शासन’ (Responsible Government) की स्थापना है। परन्तु 1919 के भारत शासन अधिनियम और उसकी कार्यशैली से भारतीयों को बड़ा आघात पहुँचा। 1922 में महात्मा गांधी ने स्पष्ट रूप से यह लिखा कि “स्वराज्य ब्रिटिश संसद से उपहारस्वरूप नहीं मिलेगा।” उसके बाद राष्ट्रीय कांग्रेस ने संविधान सभा की माँग पर गंभीरता से विचार करना शुरू कर दिया।

नेहरू रिपोर्ट (Nehru Report)

1927 में भारत के संवैधानिक विकास पर विचार करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की गई, जिसके अध्यक्ष सर जॉन साइमन (Sir John Simon) थे। इस आयोग के गठन से भारतीयों को बड़ी निराशा हुई, क्योंकि उसके सातों सदस्य अंग्रेज थे। 3 फरवरी, 1928 को आयोग जब मुंबई आया तो उसका स्वागत देशव्यापी हड़ताल से हुआ। आयोग के सदस्य जहाँ-जहाँ गए वहाँ ‘साइमन! वापस जाओ’ (Simon! go back) के नारों से उनका स्वागत किया गया। मार्च, 1928 में कांग्रेस ने साइमन कमीशन के प्रत्युत्तर में ‘एक सर्वदलीय सम्मेलन’ का आयोजन किया, जिसमें भारत के भावी संविधान के निर्माण का फैसला किया गया। संविधान की रूपरेखा तैयार करने का दायित्व मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित एक समिति को सौंपा गया। समिति के अन्य सदस्य थे—सर अली इमाम, सर तेजबहादुर सप्रू और सुभाष चन्द्र बोस। इस समिति की रिपोर्ट जो नेहरू रिपोर्ट (Nehru Report) के नाम से विख्यात है संविधान-निर्माण की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम था। नेहरू रिपोर्ट की प्रमुख विशेषताएँ ये थीं—(i) देशी रियासतों और भारत के ब्रिटिश प्रांतों को मिलाकर एक अखिल भारतीय संघ की स्थापना की जाए; (ii) केन्द्रीय विधान मंडल में मुसलमानों को एक-तिहाई सीटें दी जाएँ और प्रांतीय विधान सभाओं में उनके लिए जनसंख्या के आधार पर सीटें आरक्षित की जाएँ, (iii) संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश किया जाए; तथा (iv) केन्द्र में गवर्नर-जनरल और प्रांतों में गवर्नर ‘संवैधानिक अध्यक्ष’ के नाते कार्य करें और वास्तविक कार्यकारी शक्तियाँ मंत्रिमंडल को प्रदान की जाएँ। मंत्रिमंडल को विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी बनाया जाए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने रिपोर्ट का पूरी तरह से समर्थन किया, पर मुस्लिम लीग ने उसे नामंजूर कर दिया।

पूर्ण स्वराज्य की घोषणा (Declaration of Purna Swaraj)

कांग्रेस का 1929 का लौहारा अधिवेशन अत्यन्त उत्तेजक वातावरण में संपन्न हुआ। जवाहरलाल नेहरू ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की। कांग्रेस ने ‘पूर्ण स्वराज्य’ की घोषणा की तथा 26 जनवरी, 1930 को ‘पूर्ण स्वराज्य दिवस’ के रूप में मनाने का आह्वान किया। उसके बाद संविधान सभा की स्थापना कांग्रेस की एक प्रमुख माँग बन गई। दूसरी ओर, सरकार द्वारा नियुक्त साइमन कमीशन की रिपोर्ट भी अब प्रकाशित हो चुकी थी, जिस पर विचार करने के लिए नवंबर, 1930 में लंदन में प्रथम गोल मेज सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन का स्वर ‘भारत का स्वर’ नहीं था, क्योंकि देश के सबसे महत्वपूर्ण दल (कांग्रेस) ने उसका बहिष्कार किया था। 1934 में जब भारत शासन अधिनियम (Government of India Act, 1935) को अंतिम रूप दिया जा रहा था कांग्रेस ने संविधान सभा की माँग को बहुत जोर-शोर से बुलंद किया। स्वराज्य पार्टी ने तो अपने प्रस्ताव में यह कहा, “हमारी पार्टी अन्य राष्ट्रों की भाँति भारत के लिए ‘आत्मनिर्णय’ (Self-determination) के अधिकार की माँग करती है। इस अधिकार को लागू करने के लिए यह जरूरी है कि संविधान सभा का गठन किया जाए जिसमें प्रत्येक वर्ग व दल के प्रतिनिधि हों।” महात्मा गांधी ने स्वराज पार्टी के इस प्रस्ताव का स्वागत किया। 1936 के फैजपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने इस आशय का एक लंबा प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया था कि भारतीय जनता केवल उस संविधान को स्वीकार करेगी जिसे उसने स्वयं बनाया है। दूसरी ओर, ब्रिटिश सरकार ‘संविधान सभा’ के नाम से ही चिढ़ती थी, क्योंकि अमेरिका, फ्रांस और रूस में ये शब्द ‘क्रान्ति’ के पर्यायवाची बन गये थे।

संवैधानिक गतिरोध (Constitutional Deadlock)

1935 के भारत शासन अधिनियम के अंतर्गत 1937 में जो चुनाव हुए उनमें भारत के 11 प्रांतों में से 8 में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। लेकिन ये सरकारें ज्यादा दिन नहीं चल पाईं। 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश शासन के रवैये से रुष्ट होकर अक्टूबर, 1939 में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिए। कांग्रेस सरकारों के त्यागपत्र के बाद

फिर संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया। इस गतिरोध को दूर करने के लिए 1940 और उसके बाद 1945 में गवर्नर जनरल ने यह प्रस्ताव रखा कि वे अपनी 'कार्यकारी परिषद्' का विस्तार करने को तैयार हैं ताकि उसमें और अधिक भारतीयों को स्थान दिया जा सके। उन्होंने यह भी संकेत दिया कि युद्ध की समाप्ति के बाद भारत के भावी संविधान की रूपरेखा पर विचार किया जा सकेगा, परन्तु इन सुझावों के बावजूद संवैधानिक गतिरोध दूर नहीं हो सका।

1.4 संविधान सभा की रचना और उसकी प्रकृति (Composition and Nature of the Constitution Assembly)

संविधान सभा की रचना अथवा गठन के विषय में निम्नलिखित तीन बातें उल्लेखनीय हैं—

1. कुल सदस्य-संख्या (Total Strength of the Assembly)

संविधान सभा सदस्य-संख्या की दृष्टि से एक बहुत बड़ी सभा थी। कैबिनेट मिशन ने उसके सदस्यों की कोई अधिकतम संख्या निर्धारित नहीं की थी। कैबिनेट मिशन का प्रस्ताव था कि हर दस लाख की आबादी के लिए एक प्रतिनिधि होना चाहिए। इस फार्मूले के अनुसार संविधान सभा में प्रांतों के अधिक-से-अधिक 296 सदस्य हो सकते थे और देशी राज्यों के 93। प्रांतों के 296 सदस्यों का सांप्रदायिक आधार पर इस तरह से बाँटवारा किया गया—मुसलमानों के 79 प्रतिनिधि, सिखों के 4 प्रतिनिधि तथा 213 सामान्य सीटें (मुसलमान और सिखों को छोड़कर शेष सभी वर्गों को दिए गए स्थान)। पाकिस्तान के निर्माण और मुस्लिम लीग द्वारा संविधान सभा के बहिष्कार के कारण सदस्य-संख्या गिर गई। उसमें प्रांतों के केवल 235 और देशी रियासतों के 73 प्रतिनिधि रह गए। संविधान के अंतिम मूल मसौदे पर इन्हीं 308 सदस्यों ने हस्ताक्षर किए थे।

2. चुनाव की विधि (Method of Election)

जहाँ तक प्रांतों का प्रश्न है, उनके प्रतिनिधियों का चुनाव जुलाई, 1946 में प्रांतीय विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा हुआ। देशी राज्यों के आधे प्रतिनिधि राजाओं द्वारा मनोनीत किए गए और आधे जनता द्वारा चुने गये। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत के बालिग स्त्री-पुरुषों ने प्रत्यक्ष रूप से संविधान सभा के सदस्यों को नहीं चुना। संविधान सभा की प्रथम बैठक का सभापतित्व सच्चिदानंद सिन्हा ने किया। यह आदर उन्हें इसलिए प्रदान किया गया क्योंकि संविधान सभा के सबसे वयोवृद्ध सदस्य वे ही थे। बाद में संविधान सभा ने डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद को अपना अध्यक्ष चुना। उन्होंने बड़ी योग्यता, मर्यादा और निष्पक्षता से इस पद की जिम्मेवारी का निर्वाह किया।

3. संविधान सभा के सर्वाधिक प्रभावशाली सदस्य (Most Influential Members of the Assembly)

संविधान सभा के सर्वाधिक प्रभावशाली सदस्य थे—डॉ. राजेंद्र प्रसाद, मौलाना आजाद, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, डॉ. अम्बेडकर, गोविंदवल्लभ पंत, एन.जी. आयंगर, कृष्णास्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी, आचार्य कृपलानी तथा श्यामाप्रसाद मुखर्जी। इनमें से अधिकांश कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे। नेहरू देश के प्रधानमंत्री थे, पटेल गृहमंत्री थे, आजाद शिक्षामंत्री थे और अम्बेडकर, एन.जी. आयंगर तथा श्यामाप्रसाद मुखर्जी भी मंत्री पद पर आसीन थे। गोविंदवल्लभ पंत उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। ये सभी सुशिक्षित थे। **जी. आस्टिन (G. Austin)** के शब्दों में, "नेहरू उच्च कोटि के विचारक थे। अय्यर एक असाधारण कोटि के वकील थे और एन.जी. आयंगर उच्च कोटि के प्रशासक, पटेल लौह-पुरुष और राजनीतिज्ञ थे।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. संवैधानिक गतिरोध क्या था?

.....

.....

.....

नोट

2. संविधान सभा की प्रकृति पर टिप्पणी लिखें

.....

.....

.....

.....

.....

.....

सारांश (Summary)

- भारत में ब्रिटिश ईस्ट कंपनी सन् 1600 ई. में भारत आई थी। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यों को नियमित और नियंत्रित करने की दिशा में ब्रिटिश सरकार द्वारा उठाया गया यह पहला कदम था।
- भारत में संविधान स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया।
- संविधान देश में शासन योजना की मूलभूत रूपरेखा होती है। भारतीय संविधान का अभिमुखीकरण करने वाले प्रधान मूल्य उदारवाद, संविधानवाद और बहुलवाद है।
- 'देश की मौलिक विधि' का अर्थ है—संविधान। मौलिक अधिकार संविधान द्वारा सुरक्षित हैं इसलिए राज्य का कोई भी अंग इनका उल्लंघन नहीं कर सकता।
- भारतीय संविधान उन आदर्शों और लक्ष्यों का वर्णन करता है जिनके अनुसार समाज का नव-निर्माण करना है। सामाजिक राजनीतिक उत्थान के दायरे में अनेक चीजों को शामिल किया गया है।

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. भारतीय संविधान सभा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की संक्षेप में व्याख्या करें।
2. भारतीय संविधान की रचना और उसकी प्रकृति का वर्णन करें।
3. भारतीय राज्यव्यवस्था के विषय में संविधान सभा के दृष्टिकोणों का वर्णन करें।

संदर्भ पुस्तकें (Further Reading)

1. भारतीय सरकार एवं राजनीति—डी. एस. यादव, डिसकवरी पब्लिशिंग हाउस।
2. भारतीय शासन एवं राजनीति—विपलव, हिन्दी बुक सेन्टर।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति—शैलेन्द्र सेंगर, ऐटलांटिक पब्लिशर्स।
4. भारतीय शासन एवं राजनीति—वासुकी नाथ चौधरी, युवराज कुमार, ओरियंट ब्लैक स्वान।

अध्याय 2: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की विशिष्टताएँ (Features of the Indian Political System)

संरचना (Structure)

- 2.1 उद्देश्य (Objectives)
- 2.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 2.3 भारत का संविधान (Constitution of India)
- 2.4 संसदात्मक प्रजातंत्र (Parliamentary Democracy)
- 2.5 भारत : एक संघ (India : An Union)
- 2.6 भारत में संसदीय लोकतंत्र (Parliamentary Democracy in India)
- 2.7 संसदीय प्रणाली बनाम अध्यक्षीय प्रणाली (Parliamentary System Versus Presidential System)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- भारत के संविधान को समझने हेतु;
- संसदात्मक प्रजातंत्र की विशेषताएँ एवं भारत: एक संघ है को समझने हेतु।

2.2 प्रस्तावना (Introduction)

हम, भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष और लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए उन सब में, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए, दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवंबर, 1949 ई. (तिथि मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, सम्वत् दो हजार छः विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते हैं।

2.3 भारत का संविधान (Constitution of India)

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि भारतीय संविधान का दर्शन इसकी प्रस्तावना, मौलिक अधिकार और नीति-निर्देशक तत्वों में सन्निहित है। प्रस्तावना आदर्शों की एक ऐसी व्यवस्था है जिसकी संरचना में भारतीय समाज को ढालना एवं इसका समाजीकरण करना है। मौलिक अधिकार न्यायोचित है और इन्हें व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध प्रत्याभूत किया गया है। संविधान के चतुर्थ अध्याय में वर्णित नीति-निर्देशक तत्व गैर-न्यायोचित (non-justiciable) हैं, लेकिन ये भी 'राज्य के शासन हेतु मौलिक हैं' तथा यह भी स्पष्ट है कि 'विधि निर्माण में इन सिद्धांतों का क्रियान्वयन राज्य का दायित्व होगा।'

मौलिक अधिकार बनाम नीति-निर्देशक तत्व

चूँकि मौलिक अधिकार न्यायोचित और नीति-निर्देशक तत्व गैर-न्यायोचित हैं इसलिए कुछ व्यक्तियों का यह मत हो जाता है कि शायद नीति निर्देशक तत्व गौण हैं या महत्त्व में कम हैं। यह दृष्टिकोण भ्रान्तिपूर्ण है।

राज्य के भविष्य के संदर्भ में नीति-निर्देशक तत्व कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और यदि हमें प्रस्तावना में वर्णित आदर्शों की प्राप्ति करनी है तो आवश्यक होगा कि नीति-निर्देशक तत्वों को जीवन्त बनाया जाए। ये तत्व समाज के गतिशील मूल्य हैं, ये सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के आधार हैं।

मौलिक अधिकारों में सम्मिलित आदर्श स्थायी हैं। ये एक विशेष सामाजिक-आर्थिक स्तर सम्पन्न नागरिक के लिए अधिक सार्थक होते हैं लेकिन जहाँ विपन्नता सर्वत्र व्याप्त हो ये अधिकार, अर्थहीन हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में, विपन्नता से 'मुक्ति' का अधिकार अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है जिसे नीतिनिर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन से ही प्राप्त किया जा सकता है। इन दोनों अधिकार व्यवस्थाओं के मध्य तुलना विश्लेषण से श्रेष्ठता का निर्धारण सम्भव नहीं हो सकता। इनमें से प्रत्येक की श्रेष्ठता परिस्थिति पर निर्भर करती है। 1975-77 में आन्तरिक आपातकाल के दो वर्षों में, इन्दिरा गाँधी सरकार तानाशाह हो गई थी। मौलिक अधिकार विलुप्त हो गए। व्यक्ति इन अधिकारों के लिए बेचैन हो गए। अगर नीति-निर्देशक तत्व उपेक्षित हो जाए तो ऐसा ही होगा। व्यक्तियों की दृष्टि में वही महत्त्वपूर्ण हो जाता है जो न हो।

मौलिक अधिकार न्यायोचित हैं अर्थात् इनके उल्लंघन होने पर न्यायालय की शरण ली जा सकती है जो इन्हें लागू करेगा। लेकिन नीति-निर्देशक तत्व गैर-न्यायोचित हैं। इन्हें न्यायालय क्रियान्वित करने के लिए बाध्य नहीं है। ये दार्शनिक आदर्श हैं। इनके गैर-न्यायोचित स्वरूप ने इन्हें मूल अधिकारों की तुलना में निम्न स्तर पर ला खड़ा किया है और न्यायालयों ने भी कुछ समय पूर्व तृतीय अध्याय (मौलिक अधिकार) और चतुर्थ अध्याय (नीति-निर्देशक तत्व) के मध्य संघर्ष होने पर ऐसा ही कानूनी दृष्टिकोण अपनाया था। मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता प्रदान करने पर उच्चतम न्यायालय ने एक ऐसे सिद्धांत का प्रतिपादन किया था जिसे सहायक व्याख्या (subsidiary Interpretation) कहा जाता है। प्रसन्नता है कि यह दृष्टिकोण अब अमान्य हो चुका है और अब सर्वोच्च न्यायालय उन प्रकरणों की व्याख्या करते समय नीति-निर्देशक तत्वों को भी ध्यान में रखता है जिसमें मौलिक अधिकारों के प्रश्न निहित हैं; तथा वह सिद्धांत जो इस नवीन दृष्टिकोण को चरितार्थ करता है वह है "सामंजस्यपूर्ण व्याख्या"। सर्वोच्च न्यायालय ऐसे प्रकरणों में पूर्णता दृष्टिकोण अपनाता है तथा इन दोनों, नीति-निर्देशक तत्व एवं मौलिक अधिकारों, के मध्य संघर्ष प्रतिबन्धित करने का प्रयास करता है। दूसरे शब्दों में, हाल के वर्षों में मौलिक अधिकारों की अब उतनी उग्र व्याख्या नहीं होती और इस प्रक्रिया में दोनों के मध्य समतुल्यता स्थापित की गई है जिसमें न कोई श्रेष्ठ है, और न ही यह श्रेष्ठ प्रक्रिया है।

भारतीय संविधान के दर्शन की व्याख्या जो इस प्रपत्र में निहित है, पूर्ण करने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि वास्तविकीकरण प्रक्रिया (actualisation) का भी विश्लेषण किया जाए। संवैधानिक यथार्थता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह आनुभविक यथार्थता भी हो और इसे सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। इससे भी अधिक हमें इस आंदोलन की दिशा और गति का भी पता लगना चाहिए।

नोट

दर्शन का ज्ञान राजनीतिक और विकास के उस गतिविज्ञान पर निर्भर करता है जो 1950 में संविधान के उद्घाटन से ही सक्रिय था। धर्म के आधार पर देश का विभाजन धर्मनिरपेक्षता पर कुठाराघात था लेकिन हमारा देश धर्म-निरपेक्षता को बनाए रखने में सफल हुआ है। यह हमारे समाज और नेतृत्व का योगदान है। तृतीय विश्व के अधिकांश संविधान मार्ग में औंधे पड़े हैं और ऐसी परिस्थिति में भी संसदात्मक प्रजातंत्र को बनाए रखने में भारत की प्रशंसा ही की जा सकती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतीय संविधान तृतीय विश्व में सबसे प्राचीन सक्रिय संविधान है।

संविधान दर्शन का वास्तविकीकरण समग्र राजनीतिक अनुशासन पर निर्भर करता है और इसी की कमी है। शासन के विभिन्न स्तरों में राजनीतिक प्रक्रियाओं में आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्ग द्वारा विभिन्न वर्गों की कीमत पर, फेरबदल की जाती है। प्रभावी जातीय गुटों का अभ्युदय हो चुका है और वे ही, वास्तव में विभिन्न प्रांतों में शक्ति उत्तोलक नियंत्रक हैं। संविधान दर्शन को प्राप्त करने की दिशा में जाति एक बहुत बड़ी बाधा है।

देश का भौगोलिक-राजनीतिक परिस्थिति इसे राष्ट्रीय बजट के बड़े भाग को प्रतिरक्षा हेतु छोड़ने के लिए बाध्य करती है। संयुक्त राज्य अमरीका तथा चीन द्वारा पाकिस्तान के शस्त्रीकरण ने भारत के दुर्लभ संसाधनों पर अतिरिक्त बोझ डाल दिया है। भारत का पड़ोसी चीन भी मित्र नहीं है। अतः राष्ट्र के लिए इन खतरों के प्रति असावधान होना या इन्हें कम मानना उचित नहीं होगा।

भारतीय संविधान के सामाजिक आर्थिक प्रावधान अनेक हैं। अतः किसी भी राजनीतिक दल को अपनी विचारधारा एवं कार्यक्रम के क्रियान्वयन में किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। किसी भी विधि से इन दलों ने अपनी वरीयताओं और कार्य दिशा को संकीर्ण बनाने का प्रयास नहीं किया है। साम्यवादी विचारधारा वाले राज्य भी उतनी ही सरलता और सहजता से संविधान संरचना के अन्तर्गत कार्य कर सकते हैं जितना कि वे दल जो व्यक्तिगत उद्यमों पर विश्वास करते हैं। साम्यवादी केरल, पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा में सत्ता में है और उन्हें नीति निर्देशक तत्वों या संविधान के अन्य प्रावधानों से कोई हानि नहीं हुई है। सत्य यह है कि राजनीतिक दलों के समक्ष कोई भी नीति या विचारधारा अपनाने की उनको स्वतंत्रता है।

परिणामस्वरूप, नीति-निर्देशक तत्वों में कार्यवाही पूर्णतया राजनीतिक वरीयता पर निर्भर करती है। संविधान के अध्याय-IV में भारत सरकार से यह अपेक्षा की गई है कि वह समान नागरिक संहिता या सिविल कोड का निर्माण करेगा लेकिन इस पर कोई कार्यवाही आज तक नहीं की गई है। इससे भी अधिक बुरी बात यह है कि, 1985 में, केन्द्रीय सरकार ने अतिशीघ्रता में मुस्लिम (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम पारित कर दिया था। सर्वोच्च न्यायालय ने विवाह और तलाक सम्बन्धी मुस्लिम व्यक्तिगत कानून निरस्त कर दिया था। संविधान भी एक समरूप नागरिक संहिता का स्वप्न देखता है। संविधान में दर्शन का औपचारिक स्वरूपीकरण न तो सार्वजनिक नीति निर्देशन करता है और न इसमें सन्निहित उद्देश्यों का निर्धारण ही।

मौलिक अधिकारों को अक्षुण्ण नहीं माना जाना चाहिए। ये निरपेक्ष नहीं हैं। संविधान एक नागरिक को स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है, लेकिन साथ ही साथ राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में उसे बिना सुनवाई के हिरासत में रखा जा सकता है। (इसके अतिरिक्त 1975-77 में इन्दिरा गाँधी ने आन्तरिक आपातकाल के दौरान सम्पूर्ण तृतीय अध्याय को निलम्बित कर दिया था) मौलिक अधिकार इस प्रकार, राष्ट्रीय हित में तर्कसंगत सीमाओं से बंधे हैं। यह एक ऐसा उदाहरण है जिसमें एक पश्चिमी आदर्श को विकासशील प्रजातंत्र में अंगीकृत करने का प्रयास किया गया है। इससे भी अधिक, मौलिक अधिकारों का अध्ययन नवें परिशिष्ट और अनुच्छेद 31बी और 31सी को संदर्भित कर किया जाना चाहिए। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि नवें परिशिष्ट को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। यही स्थिति अनुच्छेद 31बी और 31सी के साथ भी है। अन्यथा भी, मौलिक अधिकार के अतिक्रमण की दशा में इनकी प्राप्ति न्यायिक प्रक्रिया का अवलम्बन करके ही सम्भव है। यह प्रक्रिया बहुत खर्चीली एवं देरी करने वाली है। स्वाभाविक है कि मौलिक अधिकार उन्हें नहीं मिल पाते जो एक विशिष्ट आर्थिक/सामाजिक स्तर के नहीं हैं।

भारतीय प्रशासन 1950 में लागू संविधान की संरचना के अन्तर्गत सक्रिय है। इसके प्रकार्यों का निर्धारण संविधान की निम्नलिखित दो विशेषताओं द्वारा होता है—

1. केन्द्र और राज्य दोनों में संसदीय प्रकार का प्रजातंत्र जिसमें कार्यपालिका निर्वाचित व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है।

नोट

2. संविधान का संघात्मक स्वरूप जिसमें केन्द्रीय सरकार और राज्यों के मध्य प्रकार्यों का विभाजन संवैधानिक है तथा जिसमें केन्द्रीय सरकार अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ-साथ, आपात्काल में राज्यों के हाथों से प्रशासन अपने हाथ में ले सकती है।

संविधान के अन्य महत्त्वपूर्ण मूल्य धर्मनिरपेक्षवाद, समाजवाद और गणतंत्रवाद हैं। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। यद्यपि यह धर्मनिरपेक्ष शब्द संविधान की प्रस्तावना में 1976 में जोड़ा गया था जब भारत में आन्तरिक आपातकाल घोषित था। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में धर्मनिरपेक्षवाद की परिभाषा इस प्रकार की गई है—‘वह सिद्धांत कि नैतिकता पूर्णतया मानवजाति के वर्तमान जीवन को श्रेष्ठ बनाने पर आधारित होनी चाहिए तथा इसमें ईश्वर या भविष्य के राज्य के प्रति आस्था से कोई विचार नहीं होना चाहिए।’ इस परिभाषा के आधार पर भारत धर्मनिरपेक्ष नहीं है; भारत धर्म के प्रति उदासीन नहीं है। भारत को बहु-साम्प्रदायिक कहना अधिक उपयुक्त होगा; यह सभी धर्मों के प्रति समभाव रखता है। इसकी नीति “सर्वधर्म समभाव” है। जबकि भारत में हिन्दू धर्म बहुमत में है लेकिन यह देश मुसलमानों की मक्का यात्रा में अनुदान देता है तथा उसे अधिक-से-अधिक सुविधाजनक बनाने का प्रयास करता है। यहाँ सार्वजनिक पद देश के सभी धर्मावलम्बियों के लिए खुले हैं तथा यह भी ध्यान में रखा जाता है कि सार्वजनिक पदों के वितरण में किसी की उपेक्षा न हो, उदाहरणस्वरूप, राज्यपालों की नियुक्ति।

संविधान के अन्य मूल्य समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता हैं। इन्हें भी संविधान की प्रस्तावना में 1976 में ही जोड़ा गया था। गणतंत्रवाद का भारत में कोई विकल्प नहीं है और इसीलिए यह यहाँ स्थायी हो गया है। लेकिन समाजवाद की नैया कमजोर है क्योंकि यह अवधारणा अपने अर्थों में अत्यधिक लचीली है। आज सन् 2000 में हमारा देश पिछले वर्षों की अपेक्षा कहीं अधिक “असमाजवादी” है। 1990 में अंगीकृत नवीन आर्थिक नीति संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समाजवादी गणतंत्र के विपरीत है तथा पूँजीवादी मार्ग में प्रशस्त है। अतः कहा जा सकता है कि संविधान में मुखरित सभी वैचारिक आदर्श समान महत्त्व या बल के नहीं हैं।

2.4 संसदात्मक प्रजातंत्र (Parliamentary Democracy)

संविधान में निहित संसदात्मक प्रजातंत्र की कई विशेषताएँ हैं लेकिन हमारे देश में लोक प्रशासन के लिए निम्नलिखित विशेषताएँ अधिक सारगर्भित हैं—

1. कार्यपालिका पर संसद का वर्चस्व तथा प्रशासन मशीन का पुनर्निरीक्षण करने का संसद का अधिकार।
2. संसद के प्रति मंत्रिमंडल का सामूहिक उत्तरदायित्व और मंत्रिमंडल द्वारा महत्त्वपूर्ण नीतियों का निर्धारण।
3. (सामूहिक उत्तरदायित्व के एक भाग के रूप में) व्यक्तिगत उत्तरदायित्व उन व्यक्तिगत मंत्रियों जो विभाग प्रधान के रूप में विभागीय नीतियाँ बनाते हैं, उन्हें क्रियान्वित करते हैं तथा अपने अधीन प्रशासन मशीन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए भी उत्तरदायी हैं।
4. लोक सेवकों और मंत्रियों का यह दायित्व है कि वे संविधान और विधि के शासन की व्यवस्था बनाए रखें।
5. यह लोक सेवकों का दायित्व है कि वह पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से मंत्रियों के निर्णयों को क्रियान्वित करें चाहे ये उसकी सलाह के विरुद्ध ही क्यों न हों।
6. लोक सेवकों की अपने वरिष्ठ पदाधिकारियों या मंत्रियों को परामर्श देने की पूर्ण स्वतंत्रता तथा
7. लोक सेवकों द्वारा राजनीतिक तटस्थता, निष्पक्षता और अज्ञात रहने के सिद्धांत का पालन।

2.5 भारत : एक संघ (India : An Union)

यद्यपि “संघ” शब्द का भारतीय संविधान में कहीं कोई वर्णन नहीं है लेकिन फिर भी भारत एक संघ है। एक संघ में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं। इन्हें भारतीय संविधान में सन्निहित किया गया है तथा जिनके परिणामस्वरूप भारत एक संघात्मक व्यवस्था कहा जा सकता है—

नोट

1. द्विस्तरीय सरकार—केन्द्र सरकार और राज्यों की सरकारें होनी चाहिए;
2. केन्द्र और राज्य सरकारों की शक्तियाँ एवं प्रकार्य अनिवार्य रूप से एक लिखित संविधान में उल्लिखित होने चाहिए;
3. दोनों ही सरकारें अपने-अपने कार्यक्षेत्र में स्वायत्त होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, केन्द्र सरकार का अपना विशिष्ट कार्यक्षेत्र होना चाहिए और इसी प्रकार राज्य सरकारों का भी।
4. केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों की शक्तियों और प्रकार्यों सम्बन्धी विवादों का समाधान करने का अधिकार एक स्वतंत्र-न्यायपालिका का होना चाहिए।

भारतीय संविधान उपयुक्त चारों ही परीक्षणों में खरा उतरता है। संविधान में दो (1993 में 73वें और 74वें संशोधन) के पश्चात् अब तीन स्तरों की सरकारों का विवेचन किया गया है, और इनमें से प्रत्येक अपने प्रकार्यात्मक क्षेत्र में स्वायत्त है। इन दोनों स्तरों की सरकारों के मध्य संविधान के माध्यम से प्रकार्यों का वितरण किया गया है। केन्द्रीय सरकार के क्षेत्राधिकार में 97 विषय आते हैं। वास्तव में ये केवल 96 विषय हैं। 97वाँ विषय 'कोई भी अन्य विषय जिसका वर्णन सूची दो और सूची तीन में, उन समस्त करों सहित जो इन सूचियों में नहीं है, वर्णित नहीं किया गया है।' यह अस्तित्व में अवशिष्ट शक्ति है। राज्य सूची में 66 विषय हैं जो पूर्णतया राज्य व्यवस्थापिका के क्षेत्राधिकार में हैं। इसके अतिरिक्त एक समवर्ती सूची है जिसमें 47 विषय हैं। इन विषयों में दोनों स्तरों की सरकारों का समवर्ती क्षेत्राधिकार है। लेकिन इसमें भी केन्द्र सरकार का वर्चस्व होता है। केन्द्र और राज्य सरकारों के मध्य विवादों का समाधान सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है जो संविधान के अधीन एक स्वतंत्र संस्था है।

इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि भारत के संविधान ने केन्द्र को असाधारण शक्ति सम्पन्न बनाया है। अनुच्छेद 249 के अनुसार अगर राज्य सभा 2/3 बहुमत से संस्तुत करे तो संसद राज्य सूची में वर्णित किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 312 के अनुसार अगर राज्य सभा 2/3 बहुमत से संस्तुत करे तो संसद नई अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण कर सकती है। 1963 में इस अनुच्छेद को व्यवहार में लाया गया। राज्य सभा की संस्तुति पर केन्द्रीय सरकार ने तीन अखिल भारतीय सेवाएँ—भारतीय वन सेवा, भारतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा तथा भारतीय अभियन्ता सेवाएँ बनाने का निर्णय किया। लेकिन इन तीन प्रस्तावित सेवाओं में से केवल एक—भारतीय वन सेवा ही बनायी जा सकी। अनुच्छेद 256 राज्य सरकारों पर दायित्व डालता है कि वे अपनी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करते समय संसद द्वारा पारित कानूनों का पालन भी सुनिश्चित करें और इसी उद्देश्य से केन्द्र को आवश्यक निर्देश देने का अधिकार भी दिया गया है। कुछ निश्चित प्रकरणों में अनुच्छेद 257 भी राज्य सरकारों को केन्द्र के अधीन कर देता है। इसमें कहा गया है—

(1) प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग किया जाएगा कि यह केन्द्रीय सरकार कार्यपालिका शक्ति प्रयोग में बाधक या विरोधी न बने और केन्द्र की कार्यपालिका शक्ति को एक राज्य को ऐसे निर्देशन देने का अधिकार है जो भारत की सरकार को उस उद्देश्य के लिए आवश्यक लगते हों। (2) केन्द्रीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति एक राज्य को संचार साधनों के निर्माण और रखरखाव, जिन्हें राष्ट्रीय या सैन्य महत्त्व का घोषित किया गया है, के लिए निर्देशन देने के सम्बन्ध में भी होती है। (3) केन्द्रीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति राज्यों द्वारा अपने प्रदेश में रेल की सुरक्षा के सम्बन्ध में क्या-क्या कदम उठाए जाएँगे, उससे सम्बन्धित निर्देश देने में निहित हैं।

अनुच्छेद 200 और 201, राज्यपाल, जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होते हैं, को यह शक्ति प्रदान करते हैं कि वे राज्य व्यवस्थापिका द्वारा पारित किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रखें और राष्ट्रपति को ऐसे विधेयकों पर बिना कारण बताए निषेधाधिकार का प्रयोग करने का अधिकार है। आपात्काल में तो केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ व्यापक और निरंकुश हो जाती हैं। भारत संघ एकात्मक राज्य का रूप ग्रहण कर लेता है (अ) जब राष्ट्र की सुरक्षा खतरे में हो, (ब) जब एक राज्य में संविधान चरमरा जाए, या (स) जब किसी भी राज्य की वित्तीय स्थिरता को खतरा हो।

नोट

अन्त में, भारतीय संघवाद में एक अप्रत्याशित विशेषता भी है कि एक राज्य की पहचान ही स्थायी नहीं होती। अनुच्छेद 3 में कहा गया है कि संसद कानून द्वारा (अ) एक नवीन राज्य का निर्माण कर सकती है; (ब) किसी भी राज्य के क्षेत्र का विस्तार कर सकती है; (स) किसी भी राज्य के क्षेत्र को कम कर सकती है; (द) किसी भी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है; (ई) राज्य का नाम बदल सकती है; और जैसा कि अनुच्छेद 4 में कहा गया है कि इस प्रकार के किसी भी परिवर्तन को संशोधन नहीं माना जाना चाहिए। केन्द्रीय सरकार ने अनुच्छेद 3 का व्यापक प्रयोग किया है।

राष्ट्रपति राज्याध्यक्ष है और केन्द्रीय सरकार उसी के नाम से परिचालित होती है। अनुच्छेद 74 में कहा गया है कि एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होगा, जिसका कार्य राष्ट्रपति को उसके कार्य सम्पादन में सहायता एवं परामर्श देना होगा। मंत्रिपरिषद् भारतीय संसद के निम्न सदन लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। भारतीय संसदीय व्यवस्था ब्रिटिश उपागम पर रचित है। इसलिए, व्यवहार में समस्त शक्ति का केन्द्र मंत्रिपरिषद् है जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री है। प्रधानमंत्री संसद में बहुमत दल का नेता है और सामान्यतया लोक सभा का सदस्य भी होता है। उपप्रधानमंत्री सहित अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की सलाह से की जाती है। प्रधानमंत्री किसी भी मंत्री को त्यागपत्र देने और मंत्रिपरिषद् से चले जाने के लिए कह सकता है।

2.6 भारत में संसदीय लोकतंत्र (Parliamentary Democracy in India)

भारत में संसदीय लोकतंत्र ब्रिटिश शासन-प्रणाली के आधार पर गढ़ा गया है, जिसे वेस्टमिंस्टर मॉडल (Westminster Model) कहते हैं। हालांकि भारतीय संसद की स्थिति कई बातों में ब्रिटिश संसद से भिन्न है, पर ब्रिटेन की ही भाँति भारत में भी मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी है। भारत में संसदीय संस्थाओं का विकास अंग्रेजों के शासन-काल में ही हो गया था। 1919 से लेकर आजादी के समय तक भारतीयों को संसदीय संस्थाओं की अच्छी जानकारी मिल गई थी। नेहरू स्वयं संसदीय लोकतंत्र के प्रधान शिल्पी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा कि “हमने इस प्रणाली को जानबूझकर चुना है, क्योंकि वह हमारी परंपरा के अनुकूल है।” के.एम. मुंशी ने संसदीय प्रणाली का जोरदार समर्थन करते हुए कहा था, “संसदीय प्रणाली को चलाने का इतना लंबा अनुभव अर्जित करने के बाद हम अपनी परंपरा को क्यों छोड़ें और शासन के क्षेत्र में कोई नया प्रयोग क्यों करें?” भारतीय संसद दो सदनों से मिलकर बनती है, जिसमें एक को राज्यसभा (Council of States) और दूसरे को लोकसभा (House of the People) की संज्ञा दी गई है। राष्ट्रपति भी संसद का एक अभिन्न अंग है। वह न केवल संसद का अधिवेशन बुलाता है, बल्कि लोकसभा को भी भंग कर सकता है। संसद द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक उसकी स्वीकृति से ही कानून का रूप ग्रहण करता है।

2.7 संसदीय प्रणाली बनाम अध्यक्षीय प्रणाली (Parliamentary System Versus Presidential System)

संसदीय प्रणाली की प्रमुख विशेषता “कार्यपालिका (मंत्रिमंडल) और विधायिका (संसद) का गठबंधन” है। इसमें प्रधानमंत्री और अन्य सब मंत्री विधानमंडल का अंग होते हैं और वे तब तक सत्ता में बने रहते हैं जब तक संसद में उनका बहुमत बना रहता है। इसमें विपक्ष एक सजग प्रहरी के रूप में कार्य करता है और वह न केवल सरकार को जागरूक व कार्यक्षम बनाये रखता है, पर अक्सर आने पर शासन की बागडोर संभालने को भी तैयार रहता है।

अध्यक्षीय प्रणाली में राष्ट्रपति ‘शासन का वास्तविक अध्यक्ष’ होता है। उसके सचिव (मंत्री) संसद की बैठकों में भाग नहीं ले सकते और न ही वे संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। विधानमंडल और कार्यपालिका दोनों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है और दोनों के अलग-अलग कार्यक्षेत्र हैं—एक का कार्य है ‘कानूनों को बनाना’ और दूसरे का कार्य है ‘उन्हें लागू करना’। मंत्रीगण सीधे राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी हैं। विधानमंडल मंत्रियों के कार्यों की चाहे जितनी निन्दा करे, वे तब तक अपने पद पर बने रहते हैं जब तक कि राष्ट्रपति उनके कार्य से संतुष्ट हो। इस प्रकार अध्यक्षीय

प्रणाली में कार्यपालिका (राष्ट्रपति व उसकी मंत्रिपरिषद्) ज्यादा स्थिर है। न तो राष्ट्रपति संसद को भंग कर सकता है और न मंत्रिपरिषद् ही संसद की इच्छानुसार डाँवाडोल रहती है।

भारत के लिए कौन-सी व्यवस्था सबसे अधिक उपयुक्त है? (Which System is the most suited for India?)—संसदीय और अध्यक्षीय सरकारों की अपनी-अपनी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं। अध्यक्षीय प्रणाली का एक अनुपम उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका है। इस प्रणाली का एक बड़ा लाभ यह है सरकारें स्थिर होती हैं। 1974 में अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन को महाभियोग चलाए जाने के भय से इस्तीफा देना पड़ा, अन्यथा अमेरिका के किसी भी राष्ट्रपति की कार्य-अवधि में मृत्यु के अलावा और किसी कारण से रुकावट नहीं आई। कई ऐसे राष्ट्रपति भी हुए जो लगातार आठ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक अपने पद पर कायम रहे। दूसरे, राष्ट्रपति अपने सचिवों (मंत्रियों) की नियुक्ति के विषय में काफी स्वतंत्र हैं। विदेश-नीति, प्रतिरक्षा और वित्तीय मामलों के लिए वह विशेषज्ञों की सेवाएँ हासिल कर सकता है।

नोट

संसदीय प्रणाली में दलबन्दी की भावना बड़ी उग्र बनी रहती है। राजसत्ता किसी एक दल या मोर्चे के हाथ में होती है और दूसरा दल उसे हथियाना चाहता है। फलस्वरूप, सदन में लगातार उखाड़-पछाड़ चलती रहती है। यहाँ तक कि सत्ता हथियाने के लिए विभिन्न दलों के सदस्यों को पद और पैसे का प्रलोभन दिया जाता है। एक दल छोड़कर दूसरे दल में शामिल होने से राजनीतिक अस्थिरता को बल मिलता है। इसे राजनीतिक अनैतिकता भी कहा जा सकता है, क्योंकि जन-प्रतिनिधि यदि चुने जाने के बाद अपना दल बदल लें तो यह मतदाताओं के साथ विश्वासघात है और साथ ही उस दल के साथ भी जिसके चिह्न व समर्थन से वे चुनाव जीतते हैं। 1967 के बाद भारत के विभिन्न राज्यों में दल-बदल की अनेक घटनाएँ घटीं। कई विधायकों ने तो कई-कई बार दल बदले। 1977 में केन्द्र में गठित जनता पार्टी की सरकार इसलिए गिरी क्योंकि पार्टी के अनेक सदस्य अपने दल के प्रति निष्ठावान नहीं रहे। दिसम्बर 1989 में भारत में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार बनी, पर नेताओं की अदूरदर्शिता के कारण 7 नवम्बर, 1990 को उसका पतन हो गया। इसके बाद चन्द्रशेखर के नेतृत्व में एक नयी सरकार का गठन किया गया, पर चार मास के बाद चन्द्रशेखर को भी प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ा। जून 1996 में जनता दल के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी, पर संयुक्त मोर्चा और कांग्रेस के रिश्तों की तनातनी की वजह से लोकसभा भंग करनी पड़ी। 19 मार्च 1998 को भाजपा गठबंधन के नेता श्री वाजपेयी ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली पर सुश्री जयललिता की हठधर्मी सरकार को ले बैठी।

अध्यक्षीय प्रणाली—इस समय भारत के समक्ष प्रमुख चुनौती यह है कि स्पष्ट बहुमत के अभाव में जो सरकारें बनती हैं उनकी स्थिरता कैसे सुनिश्चित की जाए? इसीलिए प्रायः अध्यक्षीय या राष्ट्रपतीय शासन-प्रणाली को अपनाने की चर्चा की जाती है, पर इस संबंध में कोई निर्णय लेने से पहले हम तीन बातें कहना चाहेंगे—

प्रथम, संसदीय लोकतंत्र के स्थान पर राष्ट्रपतीय प्रणाली अपनाने के लिए संविधान को पुनः लिखे जाने की जरूरत है। ऐसे समय में जब जातिवाद, धर्मांधता और क्षेत्रीय शक्तियों ने उग्र रूप धारण कर लिया हो, नयी संविधान सभा की रचना का प्रयास करना भारी अव्यवस्था और विवाद को आमंत्रित करना होगा।

दूसरे, निकट भविष्य में राजनीतिक दलों के ध्रुवीकरण की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। जिन दलों की नीतियों और कार्यक्रमों में कोई खास अंतर नहीं है वे मोटे तौर पर एक मंच पर आ सकते हैं। इससे स्पष्ट विचारधारा पर आधारित दो-तीन बड़े दलों के विकास का रास्ता आसान हो जाएगा।

तीसरे, एक संभावना यह भी है कि हमारे राजनेता मिली-जुली सरकारें बनाने और उन्हें सक्षम ढंग से चलाने का कौशल अर्जित कर लें।

अविश्वास-प्रस्ताव लाने का मामला—पिछले 50 वर्षों में संविधान में लगभग 80 संशोधन हो चुके हैं। जब कभी कोई आवश्यकता महसूस की गई, तब 'तदर्थ संशोधन' (*ad hoc amendment*) कर लिया गया। पिछले 50 वर्षों में कोई सर्वांगीण समीक्षा नहीं की गई। न्यायमूर्ति वेंकटचलैया की अध्यक्षता में गठित संविधान समीक्षा आयोग (The Constitution Review Commission) उन सभी बातों पर विचार कर सकता है जिनके जवाब हमें मौजूदा संविधान में नहीं मिलते। सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने के मामले में बदलाव की जरूरत है। प्रसिद्ध विधिवेत्ता

वी.एम. तारकुंडे के अनुसार, “जिस सरकार या प्रधानमंत्री के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाया जा रहा हो, उसके विकल्प के रूप में व्यवस्था पहले होनी चाहिए। विकल्प मौजूद होने पर ही अविश्वास प्रस्ताव लाया जाए, जैसा कि जर्मनी में होता है।”

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. संसदात्मक प्रजातन्त्र की विशेषताओं का उल्लेख करो।

.....

.....

.....

.....

.....

2. भारत एक ‘संघ’ का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

सारांश (Summary)

- राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख लक्ष्य आंदोलनकारियों या स्वतंत्रता सेनानियों के मध्य उद्देश्य की एकता को प्रोन्नत करना एवं मतभेद दूर करना था। आजादी की लड़ाई में पूर्ण एकता होना आवश्यक था।
- इतिहास ने जो विचारधारा हमें विरासत में दी है वह मिश्रित प्रकार की है।
- कांग्रेस में, “वामपंथी” विचारधारा, गाँधीवादी विचारधारा तथा आंदोलनात्मक एवं क्रान्तिकारी विचारधाराएँ भी थीं।
- संसद के समान एक संस्था का निर्माण बहुत लम्बे समय से हो रहा था। 1909 के मिन्टो-मार्ले सुधारों में इस संस्था के अभ्युदय के निश्चित चिह्न विद्यमान थे।
- भारतीय संविधान का अभिमुखीकरण करने वाले प्रधान मूल्य उदारवाद, संविधानवाद और बहुलवाद हैं।
- संविधानवाद मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय की संरक्षक भूमिका, संघवाद इत्यादि संयंत्रों से पोषित है। बहुलवाद भारतीय राजव्यवस्था की सर्वमान्य विचारधारा है तथा यह हमारे “अनेकता में एकता” संकल्प में परावर्तित होती है।
- मौलिक अधिकार न्यायोचित है और इन्हें व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध प्रत्याभूत किया गया है।
- भारतीय प्रशासन 1950 में लागू संविधान की संरचना के अन्तर्गत सक्रिय है।
- संविधान के अन्य महत्वपूर्ण मूल्य धर्मनिरपेक्षवाद, समाजवाद और गणतंत्रवाद हैं। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है।
- यद्यपि “संघ” शब्द का भारतीय संविधान में कहीं कोई वर्णन नहीं है लेकिन फिर भी भारत एक संघ है।

- भारत जैसे संसदीय प्रजातंत्र में मंत्रिमंडल प्रशासनिक पद-सोपान का शीर्षस्थ अंग है। यह सरकार की सामान्य नीतियों का निर्माण करती है, विभिन्न विभागों के मध्य सहयोग और समन्वय स्थापित करती है। प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-70) के शब्दों में, मंत्रिमंडल नीतियों के अंतिम निर्धारण के लिए उत्तरदायी है तथा साथ ही साथ यह सरकार के समस्त कार्यों प्रशासनिक संगठन के सामान्य निर्देशन, समन्वय और निरीक्षण के लिए भी उत्तरदायी है।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
की विशिष्टताएँ

नोट

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. संसदात्मक प्रजातंत्र का अर्थ स्पष्ट करें।
2. 'भारत एक संघ है।' सत्यापित करें।
3. भारतीय संविधान का संक्षेप में उल्लेख करें।

संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)

1. भारतीय शासन एवं राजनीति—शैलेन्द्र सेंगर, ऐटलांटिक पब्लिशर्स।
2. भारतीय सरकार एवं राजनीति—डी. एस. यादव, डिसकवरी पब्लिशिंग हाउस।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति—वासुकी नाथ चौधरी, युवराज कुमार, ओरियंट ब्लैक स्वान।
4. भारतीय शासन एवं राजनीति—विपलव, हिन्दी बुक सेन्टर।

नोट

अध्याय 3: संघीय संसद: लोक सभा और राज्य सभा (Union Parliament: Lok Sabha and Rajya Sabha)

संरचना (Structure)

- 6.1 उद्देश्य (Objectives)
- 6.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 6.3 संघीय संसद की विशेषताएँ (Characteristics of Union Parliament)
- 6.4 राज्य सभा-राज्यों की परिषद् (Rajya Sabha—The Council of States)
- 6.5 राज्य सभा की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of the Rajya Sabha)
- 6.6 राज्य सभा की उपयोगिता (Utility of Rajya Sabha)
- 6.7 लोक सभा-लोगों का सदन (Lok Sabha—The House of the People)
- 6.8 लोक सभा की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of Lok Sabha)
- 6.9 लोक सभा का स्पीकर (Speaker of the Lok Sabha)
- 6.10 लोक सभा और राज्य सभा में संबंध (Relation between Lok Sabha and Rajya Sabha)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- संघीय संसद की विशेषताएँ बताने में।
- राज्य सभा की शक्तियों के बारे में जानने में।
- लोक सभा के कार्यों के बताने में।
- लोक सभा और राज्य सभा में संबंधों को बताने में।

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

संघ की कानून निर्माण शक्तियाँ भारतीय संविधान के द्वारा संघीय संसद को सौंपी गई हैं। स्वतंत्रता से पहले इसको केन्द्रीय विधानपालिका (Central Legislature) कहा जाता था, परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान

नोट

निर्माण सभी ने संविधान में इसको संघीय संसद का नाम दिया। संविधान के अनुच्छेद 79 में लिखा गया है कि संघ की एक संसद होगी जिसमें राष्ट्रपति और दो सदन होंगे जिनका क्रमवार नाम राज्यों की परिषद् (राज्य सभा) और लोगों का सदन (लोक सभा) होगा। राज्य सभा को उपरि सदन का दर्जा दिया गया है और निम्न सदन को लोक सभा कहा गया है। राष्ट्रपति किसी सदन का सदस्य तो नहीं होता परन्तु उसको संसद का एक अभिन्न अंग माना जाता है। संसद की समस्त कार्यवाही राष्ट्रपति के नाम पर चलती है और कोई भी बिल जोकि संसद ने पास किया हो, तब तक कानून नहीं बनता जब तक राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर नहीं कर देता।

भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में संघ की और संघीय सरकार में संसद की स्थिति बहुत शक्तिशाली और प्रभावशाली है। यह ब्रिटिश की तरह प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद तो नहीं परन्तु इसके पास विशाल शक्तियाँ हैं और इसकी स्थिति बहुत शक्तिशाली और प्रभावशाली है। कई तरह से इसकी शक्तियाँ अमरीकी कांग्रेस से भी अधिक हैं क्योंकि जहाँ अमरीका में राष्ट्रपति के पास बहुत विशाल शक्तियाँ होती हैं और वह कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होता वहाँ भारतीय राजनीतिक प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री और मंत्री-परिषद् अपने सभी कार्यों के लिए संघीय संसद के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेह होते हैं।

3.3 संघीय संसद की विशेषताएँ (Characteristics of Union Parliament)

भारतीय संसद की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

1. **राष्ट्रपति संसद का सदस्य नहीं होता परन्तु इसका अभिन्न अंग माना जाता है** (President is not a member of the Parliament but is an Integral part of Parliament): राष्ट्रपति संसद के किसी सदन का न तो सदस्य होता है और न ही बन सकता है, परन्तु संविधान के अनुच्छेद 79 के अधीन उसको संघीय संसद का एक अभिन्न और महत्वपूर्ण भाग बनाया गया है। राष्ट्रपति ही संसद के अधिवेशन बुलाता है, उनको स्थगित करता है, या फिर संसद को भंग करता है।

नोट: संघीय संसद के द्वारा पास कोई भी बिल राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बिना कानून नहीं बन सकता।

कुछ बिलों के सम्बन्ध में नियम यह है कि उनको संसद में पेश करने से पहले ही राष्ट्रपति की स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है। राष्ट्रपति संसद को कोई संदेश भी भेज सकता है। कानून निर्माण राष्ट्रपति-सहित संसद के द्वारा किया जाता है।

2. **संसद का गैर-प्रभुसत्ता सम्पन्न स्तर** (Non-sovereign Status of Union Parliament): ब्रिटिश संसद से विपरीत भारतीय संसद एक गैर-प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद है क्योंकि भारत में सर्वोच्चता संविधान को प्राप्त है और संसद संविधान के द्वारा दी गई शक्तियों का ही प्रयोग करती है। यदि संसद के द्वारा पास किया गया कोई भी कानून संविधान का विरोधी हो या संविधान का उल्लंघन करता हो तो सर्वोच्च न्यायालय उसको रद्द कर सकता है। दूसरे शब्दों में, संघीय संसद के द्वारा निर्मित कानूनों पर सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति लागू होती है। फिर भारतीय संसद केवल संघ सरकार के क्षेत्र में आने वाले विषयों पर ही कानून निर्माण कर सकती है।

3. **संसद की संवैधानिक संशोधन करने की शक्ति** (Parliament's Power to amend the Constitution): संविधान के अनुच्छेद 368 के अधीन संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति दी गई है और इसमें संशोधन करने का ढंग भी स्पष्ट रूप में लिखा गया है। संसद संविधान के किसी भाग में भी संशोधन कर सकती है परन्तु सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रणाली अधीन यह निर्णय कर सकता है कि किसी भी संशोधन के द्वारा संविधान की मौलिक संरचना में परिवर्तन तो नहीं किया गया। संसद के द्वारा पास किए गए संवैधानिक संशोधनों के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति लागू होती है।

4. **दो-सदनीय संगठन** (Bi-cameral Organisation): अमरीका, इंग्लैण्ड, स्विट्ज़रलैंड आदि कई अन्य देशों के समान भारत में भी संघीय संसद दो-सदनीय संसद है। इसके दो सदन हैं: (i) राज्यों की परिषद् अर्थात्

नोट

राज्य सभा जोकि उपरि सदन है और जिसमें भारतीय संघ की इकाइयों को प्रतिनिधित्व दिया गया है। राज्य सभा के सदस्य अप्रत्यक्ष रूप में प्रत्येक राज्य की विधानसभा के द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। यह एक अर्ध-स्थायी सदन है जिस के एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष बाद सेवा-निवृत्त होते हैं। इसमें भारतीय संघ के राज्यों को समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया और यह विशेषता अमरीकी सीनेट से इसको भिन्न बनाती है। (ii) लोगों का सदन अर्थात् लोक सभा, जोकि संसद का निम्न सदन है भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करता है। इसके सदस्य जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित किए जाते हैं। इसकी सदस्य संख्या 545 है और इसका कार्यकाल 5 वर्ष होता है। प्रत्येक पाँच वर्ष बाद इसके लिए नए चुनाव करवाए जाते हैं, परन्तु राष्ट्रपति कार्यकाल पूरा होने से पहले भी इसको भंग कर सकता है।

5. लोक सभा राज्य सभा से अधिक शक्तिशाली सदन है (Lok Sabha is more powerful than Rajya Sabha): भारतीय संविधान द्वारा संघीय संसद के दोनों सदनों को एक समान अधिकार नहीं दिए गए। लोक सभा को राज्य सभा से अधिक शक्तियाँ दी गई हैं। मंत्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है, राज्य सभा के प्रति नहीं। धन बिल केवल लोक सभा में ही पेश किए जा सकते हैं और इस सम्बन्ध में राज्य सभा के प्रति नहीं। धन बिल केवल लोक सभा में ही पेश किए जा सकते हैं और इस सम्बन्ध में राज्य सभा किसी भी धन बिल को पास होने में केवल 14 दिन की देर ही कर सकती है। देश के धन पर लोक सभा का नियंत्रण होता है। साधारण कानून निर्माण क्षेत्र में सैद्धांतिक रूप में दोनों सदनों को एक जैसी शक्ति दी गई है परन्तु व्यवहार में लोक सभा ही अधिक कानून-निर्माण शक्तियों का प्रयोग करती है। राज्य सभा की स्थिति कमजोर है परन्तु यह इतनी कमजोर नहीं जितनी कि इंग्लैण्ड के लार्ड सदन की और लोक सभा की स्थिति भी इतनी शक्तिशाली नहीं जितनी कि इंग्लैण्ड के कॉमन सदन की।

6. नामजदगी की व्यवस्था (Provision for Nomination): लोक सभा लोगों का एक प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित सदन है परन्तु राष्ट्रपति इसमें एंग्लो-इंडियन समुदाय के दो प्रतिनिधियों को मनोनीत कर सकता है यदि वह समझे कि इस समुदाय को लोक सभा में उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार राज्य सभा में भी राष्ट्रपति 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जिन्होंने कला, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति और समाज सेवा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्राप्तियाँ की हुई हों।

7. संघीय संसद के पास वैधानिक और वित्तीय शक्तियों के साथ-साथ कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियाँ भी हैं (The Union Parliament exercises some Executive and Judicial Powers alongwith its Legislative and Financial Powers): भारतीय संविधान शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित नहीं है। भारतीय संसद को कानून निर्माण और वित्तीय शक्तियों के साथ-साथ कुछ कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियाँ दी गई हैं। संसद कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री और मंत्रि-परिषद् पर नियंत्रण करती है। संविधान के अनुच्छेद 75 (3) में लिखा गया है कि मंत्रि-परिषद् सामूहिक रूप में लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। मंत्रि-परिषद् के निरन्तर निरीक्षण और नियंत्रण अधीन कार्य करती है। लोक सभा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके या बजट को रद्द करके या फिर किसी कार्यपालिक नीति या निर्णय को रद्द करके मंत्रि-परिषद् को पद से हटा सकती है। लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का चुनाव करते हैं। संसद के दोनों सदन महाभियोग का मुकद्दमा चला कर राष्ट्रपति को पद से हटाने का अधिकार भी रखते हैं। इस प्रकार भारतीय संसद के पास कार्यपालिका न्यायिक चुनाव से सम्बन्धित और कई अन्य प्रकार की शक्तियाँ हैं। दूसरे शब्दों में, भारतीय संविधान के अधीन संसद को वैधानिक शक्तियाँ ही नहीं बल्कि कार्यपालिका और न्यायिक शक्तियाँ भी सौंपी गई हैं।

8. उप-राष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन अध्यक्ष होता है जबकि स्पीकर लोक सभा का अध्यक्ष होता है (The Vice-President is the Ex-officio Chairman of Rajya Sabha and Speaker is the Chairman of Lok Sabha): अमरीकी सीनेट की तरह भारतीय राज्य सभा को बैठकों की अध्यक्षता भी उप-राष्ट्रपति करता है। भारतीय उप-राष्ट्रपति राज्य सभा का सदस्य तो नहीं होता परन्तु वह राज्य सभा के प्रधान के रूप में कार्य करता है और इसकी बैठकों की कार्यवाही संचालित करता है। उसको केवल निर्णायक वोट

नोट

(Casting Vote) देने का अधिकार होता है। लोक सभा की बैठकों की अध्यक्षता स्पीकर करता है और यदि स्पीकर अनुपस्थित हो तो उप-स्पीकर लोक सभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है। स्पीकर और उप-स्पीकर दोनों ही लोक सभा के सदस्य होने आवश्यक होते हैं। इनका चुनाव लोक सभा के सदस्य करते हैं। ब्रिटिश कॉमन सदन के स्पीकर की भांति लोक सभा का स्पीकर भी एक निष्पक्ष प्रधान की तरह कार्य करता है परन्तु जहाँ कि ब्रिटिश स्पीकर अपना पद संभालने के समय राजनीति से संन्यास ले लेता है वहाँ भारतीय स्पीकर पर संभालने के पश्चात् सदन में एक निष्पक्ष प्रधान की तरह तो कार्य करता है परन्तु राजनीतिक से संन्यास नहीं लेता। इस प्रकार भारतीय लोक सभा के स्पीकर की स्थिति न तो ब्रिटिश स्पीकर की तरह पूर्ण निरपेक्षता की है और न ही अमरीकी स्पीकर की तरह पूर्ण राजनीतिक प्रतिबद्धता की है।

9. समिति व्यवस्था (Committee System): विश्व की विभिन्न संसदों की तरह भारतीय संसद भी कई एक समितियों के द्वारा अपनी कानून-निर्माण कार्यवाही और अन्य अधिक शक्तियों का प्रयोग करती है। भारतीय संसद के दोनों सदनों की अपनी-अपनी अलग-अलग समिति व्यवस्थाएँ हैं परन्तु इसके साथ ही कई एक साझी समितियाँ भी हैं। अपनी कई समितियों के द्वारा जैसा कि सार्वजनिक लेखा अनुदान समिति (Public Account Committee), अनुमान समिति (Estimate Committee) आदि के द्वारा संसद कार्यपालिका पर नियंत्रण करने का कार्य भी करती है। संसद में कानून निर्माण के कार्य में संसद की समितियाँ बहुत महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाती हैं।

इस प्रकार संघीय संसद एक गैर-प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद है परन्तु यह एक अत्यन्त शक्तिशाली संस्था है। संघीय सूची में दिए गए 97 विषयों और अवशेष विषयों (Residuary Subjects) पर कानून निर्माण का अधिकार संघीय संसद के पास है। साझी सूची के 47 विषयों पर संघीय संसद और राज्य विधानपालिकाओं दोनों ही कानून बना सकती हैं परन्तु यदि दोनों के कानून में कोई विरोध हो तो संसद के द्वारा पास किए गए कानून को प्राथमिकता दी जाती है। कुछ विशेष तरह की संकटकाल स्थितियों में संघीय संसद राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है। इस प्रकार संघीय संसद के पास कानून निर्माण की विशाल शक्तियाँ हैं।

क्या आप जानते हैं: देश के धन पर अन्तिम नियंत्रण संघीय संसद का ही होता है। इसकी स्वीकृति के बिना संघ सरकार न तो कोई कर लगा सकती है, न ही कोई कर एकत्रित कर सकती है और न ही कर व्यवस्था में कोई परिवर्तन कर सकती है।

भारतीय संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली लागू की गई है और इसके अधीन संघीय मंत्रि-परिषद् अपने कार्यों के लिए संसद के समक्ष जिम्मेवार और उत्तरदायी होती है। संघीय संसद सरकार के कार्यों का निरीक्षण करती है और सरकार को निरंकुश शक्तियों के प्रयोग से रोकती है। इस प्रकार भारतीय संघीय संसद एक शक्तिशाली संसद है। लेकिन यह प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद नहीं। भारत में संविधान देश का सर्वोच्च कानून है और संसद संविधान के अनुसार ही अपने शक्तियों का प्रयोग करती है। भारतीय संविधान में संशोधन करने की शक्ति संसद के पास है परन्तु यह संविधान के मौलिक ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संसद एक सुसंगठित शक्तिशाली संसद है परन्तु यह प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद नहीं है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

1. संघीय संसद के द्वारा पास कोई भी बिल के हस्ताक्षर के बिना कानून नहीं बन सकता।
2. संघीय संसद के द्वारा निर्मित कानूनों पर की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति लागू होती है।
3. राज्य सभा किसी भी को पास होने में केवल दिन की देर ही कर सकती है।

3.4 राज्य सभा-राज्यों की परिषद् (Rajya Sabha—The Council of States)

नोट

राज्य सभा अर्थात् राज्यों की परिषद् संघीय संसद का उपरि सदन है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है, राज्य सभा की स्थापना भारतीय संघ के राज्यों को प्रतिनिधित्व देने के लिए की गई है। परन्तु संयुक्त राज्य अमरीका और स्विट्ज़रलैण्ड के उपरि सदनों के विपरीत, भारतीय राज्यों को राज्य सभा में एक समान प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। इन राज्यों को राज्य सभा में भी उनकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया है।

1. राज्य सभा की रचना (Composition of the Rajya Sabha): राज्य सभा अर्थात् संसद के उपरि सदन में अधिक-से-अधिक 250 सदस्य होते हैं जिनमें से 238 राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं और शेष 12 सदस्यों की नामजदगी राष्ट्रपति के द्वारा उन व्यक्तियों में से की जाती है जिन्होंने कला, साहित्य, विज्ञान या समाज सेवाओं के क्षेत्रों में विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त की हों। राज्यों का प्रतिनिधित्व करते 238 सदस्य, भारत के 28 राज्यों में सक्रिय राज्य विधानसभाओं के द्वारा चुने जाते हैं। प्रत्येक राज्य विधानसभा के द्वारा चुने गए सदस्यों की संख्या अलग-अलग होती है। संविधान की चौथी सूची में राज्यों को राज्य सभा की सीटें बांटी गई हैं। अधिक जनसंख्या वाले राज्यों को अधिकतर सीटें दी गई हैं।

Table 3.1: राज्य सभा: सीटों का विभाजन (14वीं अनुसूची)

	<i>Name of States</i>	<i>Seats</i>		<i>Name of States/UT</i>	<i>Seats</i>
1.	Andhra Pradesh	18	16	West Bengal	16
2.	Assam	7	17.	Jammu and Kashmir	4
3.	Bihar	16	18.	Nagaland	1
4.	Goa	1	19.	Himachal Pradesh	3
5.	Gujrat	11	20.	Manipur	1
6.	Haryana	5	21.	Tripura	1
7.	Kerala	9	22.	Maghalaya	1
8.	Madhya Pradesh	13	23.	Sikkim	1
9.	Tamil Nadu	18	24.	Mizoram	1
10.	Maharashtra	19	25.	Arunachal Pradesh	1
11.	Karnataka	12	26.	Delhi	3
12.	Orissa	10	27.	Pandicherry	1
13.	Punjab	7	28.	Chhattisgarh	3
14.	Rajasthan	10	29.	Jharkand	6
15.	Uttar Pradesh	31	30.	Uttarakhand	3

दूसरे शब्दों में, अलग-अलग राज्यों को सीटें उनकी जनसंख्या के अनुपात में बांटी गई हैं। उदाहरण के रूप में पंजाब की राज्य सभा में 7, हरियाणा की 5, आंध्र प्रदेश की 18 और मिज़ोरम की एक सीट है। वर्तमान समय में राज्य सभा के सदस्यों की कुल संख्या 245 है जिनमें से 233 सदस्य राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रतिनिधि हैं और 12 मनोनीत किए सदस्य हैं। राज्य सभा में सीटों का विभाजन करते समय संविधान, राज्य की जनसंख्या के साथ भौगोलिक और सामाजिक कारकों को भी ध्यान में रखा है।

संघ के राज्यों में राज्य सभा की सीटों का विभाजन संविधान के द्वारा दर्ज किया गया है और इस व्यवस्था को संवैधानिक संशोधन के द्वारा ही बदला जा सकता है। राज्य सभा में भी भारतीय संघ के बड़े राज्यों जैसे यू. पी. और बिहार को अधिक सीटें मिली हुई हैं और छोटे राज्यों को कम सीटें, परन्तु यह एक नियम है कि राज्य सभा में छोटे से छोटे राज्य को भी एक सीट अवश्य मिलती है।

नोट

संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में संघ के प्रत्येक राज्य को सीनेट (संयुक्त राज्य का उपरि सदन) में समान प्रतिनिधित्व (दो सीटें) दी दिया गया है, चाहे इसका क्षेत्रफल और जनसंख्या कितनी भी क्यों न हो। इसके विपरीत भारत संघ के विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को अलग-अलग सीटों दी गई हैं। इसको भारतीय संघीय प्रणाली की गैर-संघीय विशेषता समझा जाता है। वास्तव में, भारतीय संविधान के निर्माताओं ने राष्ट्रीय विधानसभा के उपरि सदन में संघ के राज्यों को प्रतिनिधित्व देते समय अमरीका और स्विट्ज़रलैंड की प्रणाली को तो अपनाया परन्तु संघ के सभी राज्यों को एक समान प्रतिनिधित्व देने के सिद्धान्त को उपेक्षित कर दिया।

II. चुनाव की विधि (Method of Election): राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव राज्य विधान सभाओं के सदस्यों के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व एकहरी हस्तांतरित वोट प्रणाली के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में किया जाता है। प्रत्येक राज्य विधानसभा के द्वारा उतने ही प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाता है जितने की आज्ञा संविधान के द्वारा दी गई होती है। राष्ट्रपति राज्य सभा में 12 सदस्यों को उन व्यक्तियों में से मनोनीत करता है जिन्होंने कला, विज्ञान, साहित्य और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि प्राप्त की हो।

अक्टूबर 2003 में एक सर्वदलीय सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया कि राज्य सभा की सदस्यता के लिए राज्य में निवास के नियम को समाप्त किया जाना चाहिए और साथ ही मुक्त मतदान (Open Voting) के द्वारा राज्य सभा के सदस्यों के निर्वाचन की व्यवस्था की जाने चाहिए, लेकिन जून 2004 में राज्य सभा की सदस्यता के सम्बन्ध में प्रस्तावित संशोधन किए जाने पर सर्वोच्च न्यायालय ने रोक लगा दी।

III. सदस्यों की योग्यताएँ (Qualifications of Members): राज्य सभा की सदस्यता के लिए संविधान में बताए अनुसार व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए:

- (क) वह भारत का नागरिक होना चाहिए।
- (ख) जिस राज्य से वह चुनाव लड़ना चाहता है, उस राज्य का वह कम-से-कम 6 महीने से निवासी होना चाहिए।
- (ग) उसकी आयु 30 वर्ष से अधिक होनी चाहिए। इसीलिए राज्य सभा को बुजुर्गों का सदन (House of Elders) कहा जाता है।
- (घ) वह संसद के द्वारा निश्चित की गई अन्य सभी योग्यताएँ पूर्ण करता हो।
- (ङ) वह भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन किसी लाभप्रद पद पर नियुक्त न हो।
- (च) वह पागल या दिवालिया नहीं होना चाहिए।
- (छ) उसको संसद के किसी कानून के अधीन अयोग्य करार न दिया गया हो।

IV. कार्यकाल (Tenure): राज्य सभा एक अर्ध-स्थायी सदन है। यह लोक सभा के समान भंग नहीं हो सकता। प्रत्येक दो वर्षों बाद इसके एक-तिहाई सदस्य सेवा-निवृत्त हो जाते हैं और खाली सीटों के लिए चुनावस करवाए जाते हैं। राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल छः वर्ष का होता है। किसी सदस्य की सदस्यता तब रद्द हो जाती है जब वह त्याग-पत्र दे दे या उसको अयोग्य करार दे दिया जाए। अध्यक्षता करने वाले अधिकारी के द्वारा करवाई गई सदन की बैठकों और इसके अधिवेशनों में बिना किसी कारण 60 दिनों तक अनुपस्थित रहने वाले राज्य सभा के सदस्य को अयोग्य करार दिया जा सकता है।

V. अधिवेशन (Sessions): राज्य सभा के अधिवेशन सामान्य रूप में राष्ट्रपति के द्वारा लोक सभा के अधिवेशनों के साथ ही या फिर जब उसको आवश्यक प्रतीत हो, बुलाए जाते हैं। परन्तु राज्य सभा के दो अधिवेशनों में छः महीने से अधिक अन्तर नहीं हो सकता। इसी प्रकार वर्ष में कम-से-कम दो अधिवेशन बुलाने संवैधानिक आवश्यकता है। राष्ट्रपति उस स्थिति में राज्य सभा का विशेष अधिवेशन बुला सकता है जब लोक सभा भंग हो चुकी हो और संकटकाल स्थिति की घोषणा की स्वीकृति लेनी हो। किसी राज्य में राष्ट्रपति राज्य की अवधि बढ़ाने के लिए अध्यादेश (आर्डिनैस) की स्वीकृति के लिए भी राज्य सभा विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकता है। मई-जून, 1999 में कारगिल युद्ध के मुद्दे पर चर्चा करवाने के लिए राज्य सभा के एक विशेष अधिवेशन की मांग की गई क्योंकि इस समय 12वीं लोक सभा भंग की जा चुकी थी, परन्तु ऐसा विशेष अधिवेशन बुलाया नहीं गया था।

नोट

VI. राज्य सभा की बैठकों की गणपूर्ति (Quorum for the Meetings of Rajya Sabha):

राज्य सभा की प्रत्येक बैठक में इसके कम से कम 1/10 सदस्यों का उपस्थित होना अनिवार्य है अर्थात् सदन की कार्यवाही के लिए राज्य सभा के कम-से-कम 1/10 सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है। 42वें संशोधन द्वारा, राज्य सभा को अपनी बैठकों में सदस्यों का आवश्यक कोरम निश्चित करने की शक्ति दी गई परन्तु 44वें संशोधन के द्वारा यथापूर्व स्थिति अर्थात् सदस्यों के 1/10 सदस्यों की उपस्थिति वाली व्यवस्था को पुनः स्थापित किया गया।

VII. सदस्यों के विशेष अधिकार (Privileges of Members): राज्य सभा के सदस्यों को कई विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। उनके द्वारा सदन में अपने विचार प्रकट करने पर कोई रोक नहीं होती और सदन में उन के द्वारा कहे गए किसी शब्द पर उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। राज्य सभा के अधिवेशन के 40 दिन पहले और 40 दिन बाद तक और इसके दौरान इस किसी सदस्य को किसी दीवानी अपराध के लिए गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। सदन के सदस्यों के विशेष अधिकारों की सुरक्षा के लिए, राज्य सभा की स्थापना के समय से ही एक विशेष समिति (विशेष अधिकारों की समिति) का गठन किया गया है।

VIII. राज्य सभा का अध्यक्ष (Chairman of the Rajya Sabha): भारत का उप-राष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन (Ex-officio) अध्यक्ष होता है। वह न तो सदन का सदस्य होता है और न ही सदन में अपनी वोट का प्रयोग करता है परन्तु बैठकों की अध्यक्षता और इसकी कार्यवाहियों का संचालन वह ही करता है। वह विचार-विमर्शों में भाग नहीं लेता परन्तु सदन में अनुशासन और व्यवहारकुशलता स्थापित रखता है। किसी वैधानिक बिल के सम्बन्ध में बराबर के वोट पड़ने के समय उप-राष्ट्रपति, राज्य सभा का अध्यक्ष होने के नाते अपनी निर्णायक वोट का प्रयोग कर सकता है। जब भारत के उप-राष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो उस समय वह न तो बैठकों की अध्यक्षता कर सकता है और न ही निर्णायक वोट देने के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। उप-राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में, राज्य सभा का डिप्टी अध्यक्ष, जिसका चुनाव राज्य सभा के सदस्यों के द्वारा अपने में से ही किया जाता है, बैठकों की अध्यक्षता करता है। आजकल भारत के उप-राष्ट्रपति श्री हामिद अंसारी राज्य सभा के प्रधान हैं।

IX. वेतन, भत्ते और पेंशन (Salary, Allowances and Pensions): राज्य सभा के सदस्यों को संसद के कानून के द्वारा निश्चित किए वेतन और भत्ते मिलते हैं और यदि कोई सदस्य अपना छः वर्ष का कार्यकाल पूर्ण कर लेता है तो उसको पेंशन भी मिलती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

4. राज्य सभा में अधिकतम सीटों की संख्या है—

(a) 250	(b) 238
(c) 245	(d) 240
5. राष्ट्रपति राज्य सभा में कितने सदस्य मनोनीत कर सकता है?

(a) 18	(b) 16
(c) 12	(d) 14
6. दिल्ली में राज्य सभा की कितनी सीटें हैं?

(a) 3	(b) 5
(c) 4	(d) 2

3.5 राज्य सभा की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of the Rajya Sabha)

नोट

1. वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers): साधारण कानून बनाने के क्षेत्र में राज्य सभा के पास लोक सभा के समान शक्तियाँ हैं। एक साधारण बिल राज्य सभा में भी पेश किया जा सकता है और यह तब तक कानून नहीं बन सकता जब तक इसको राज्य सभा की स्वीकृति प्राप्त न हो। संघीय सूची, समवर्ती सूची या अवशेष शक्तियों के विषयों से सम्बन्धित कोई भी बिल, बशर्ते कि यह धन बिल न हो, राज्य सभा में पेश किया जा सकता है। किसी साधारण बिल पर संसद के दोनों सदनों में गतिरोध पैदा होने की स्थिति में और यदि यह गतिरोध छः महीने तक निपटाया ना जा सके तो राष्ट्रपति इस के समाधान के लिए दोनों सदनों की साझी बैठक बुलाता है। इस साझी बैठक की अध्यक्षता लोक सभा के स्पीकर के द्वारा की जाती है। यदि साझे अधिवेशन में बिल पास हो जाए तो बिल को राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षरों के लिए भेज दिया जाता है और राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के पश्चात् बिल कानून बन जाता है। अगर किसी बिल पर गतिरोध समाप्त न हो तो बिल को रद्द कर दिया जाता है।

2. वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers): वित्तीय क्षेत्र में राज्य सभा की स्थिति लोक सभा की तुलना में काफी कमजोर है। एक धन बिल केवल लोक सभा में ही पेश किया जा सकता है। लोक सभा के द्वारा पास किया गया धन बिल विचार के लिए राज्य सभा में भेजा जाता है। यदि 14 दिनों के अंदर-अंदर राज्य सभा बिल पास करने में असफल रहती है तो बिल को संसद के द्वारा पास समझा जाता है चाहे राज्य सभा ने उसको पास न ही किया हो। यदि राज्य सभा कुछ सुधारों का प्रस्ताव रखती है तो धन बिल लोक सभा में वापस भेज दिया जाता है। प्रस्तावित सुधारों को स्वीकार या रद्द करना लोक सभा पर निर्भर करता है। बजट भी धन बिल ही होता है और राज्य सभा इसके पास होने के मार्ग में भी बाधा पैदा नहीं कर सकती। यह अधिक-से-अधिक धन बिल पास करने में 14 दिनों की देरी ही कर सकती है। इस मामले में राज्य सभा की शक्ति ब्रिटिश हाऊस ऑफ लार्ड से भी कम है, जो धन बिल को 30 दिन तक रोक सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका की सीनेट वित्तीय क्षेत्र में भारतीय राज्य सभा से अधिक शक्तिशाली है। संयुक्त राज्य की सीनेट ही धन बिल के अन्तिम रूप का निर्णय करती है।

3. कार्यपालिक शक्तियाँ (Executive Powers): भारतीय संविधान 75 (3) के अनुसार, “मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप में लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है।” केवल लोक सभा ही अविश्वास का प्रस्ताव पास करके मन्त्रि-परिषद् को हटाए जाने का कारण बन सकती है।

क्या आप जानते हैं: राज्य सभा को मन्त्रि-परिषद् पर कम ही नियन्त्रण शक्ति प्राप्त है। राज्य सभा मन्त्रि-परिषद् को उसके पद से हटा नहीं सकती, परन्तु राज्य सभा के सदस्य प्रशासन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करके, अपनाई गई नीतियों की आलोचना करके, प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछ कर और स्थगन प्रस्ताव पास करके मन्त्रियों पर कुछ रोक लगा सकते हैं।

राज्य सभा में से भी कुछ मन्त्री लिए जाते हैं। यह परम्परा कि प्रधानमन्त्री सदैव लोक सभा में से ही होता है, अब टूट चुकी है। 1996 में, प्रधानमन्त्री एच. डी. देवेगौड़ा लोक सभा के नहीं बल्कि राज्य सभा के सदस्य बने। अप्रैल, 1997 में श्री इन्द्र कुमार गुजराल प्रधानमन्त्री बने और वह भी राज्य सभा के ही सदस्य थे। वर्तमान प्रधानमन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह भी राज्य सभा के ही सदस्य हैं। इस प्रकार अब राज्य सभा का सदस्य भी प्रधानमन्त्री बन सकता है बशर्ते कि लोक सभा में बहुमत वाले/समूह उसको अपना नेता निर्वाचित कर ले, अपना ले, जैसा कि डॉ. मनमोहन सिंह के मामले में मई 2004 में हुआ था। परन्तु कुल मिला कर, राज्य सभा को प्राप्त कार्यपालिक शक्तियों के क्षेत्र में सीमित भूमिका ही प्राप्त है।

4. संशोधन शक्तियाँ (Amendment Powers): जहाँ तक संशोधन करने की शक्तियों का सम्बन्ध है, संसद के दोनों सदनों में से किसी एक में कोई भी संवैधानिक संशोधन बिल प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि राज्य सभा इसको अपना लेती है तो इसको स्वीकृति के लिए लोक सभा में भेजा जाता है और यदि लोक सभा इसको

नोट

पास कर दे तो इसको बाद में स्वीकृति के लिए राज्य सभा के पास भेजा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि राज्य सभा और लोक सभा दोनों की स्वीकृति के बिना कोई संवैधानिक संशोधन बिल पास नहीं किया जा सकता। दोनों को समान रूप में और संविधान के अनुच्छेद 368 के द्वारा निश्चित बहुमत के अनुसार एक संशोधन बिल पास करना होता है। अतः संशोधन करने के क्षेत्र में संसद के दोनों सदनों को एक समान शक्तियाँ प्राप्त हैं।

5. चुनाव से सम्बन्धित शक्तियाँ (Electoral Powers): राज्य सभा के पास कुछ निर्वाचन शक्तियाँ भी होती हैं। राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य, लोक सभा और सभी राज्यविधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर भारत के राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। राज्य सभा के सदस्य अपने में से ही एक सदस्य को अपना उपाध्यक्ष चुनते हैं। राज्य सभा के सदस्य लोक सभा से मिलकर भारत के उप-राष्ट्रपति का चुनाव करते हैं।

6. न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers): यह ठीक है कि राज्य सभा के पास कोई सिविल या फौजदारी अधिकार-क्षेत्र नहीं, परन्तु यह निम्नलिखित न्यायिक कार्य करती है:

- (क) राज्य सभा तथा लोक सभा दोनों मिलकर राष्ट्रपति पर संविधान का उल्लंघन करने का आरोप लगा कर उस पर महाभियोग का मुकद्दमा चला सकती है।
- (ख) राज्य सभा सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिए विशेष प्रस्ताव पास कर सकती है।
- (ग) उप-राष्ट्रपति पर आरोप केवल राज्य सभा में ही लगाए जा सकते हैं।
- (घ) यह कुछ उच्च अधिकारियों जैसा कि अटारनी जनरल ऑफ इंडिया, कम्पट्रोलर और आडीटर जनरल, मुख्य चुनाव आयुक्त आदि को हटाने के लिए भी प्रस्ताव पास कर सकती है।

7. फुटकल शक्तियाँ (Miscellaneous Powers): उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त, राज्य सभा, लोक सभा से मिलकर निम्नलिखित कार्य संयुक्त रूप में पूर्ण करती है:

- (क) राष्ट्रपति के द्वारा जारी किए गए अध्यादेशों की स्वीकृति करना।
- (ख) संकटकाल स्थिति के घोषणा की स्वीकृति करना।
- (ग) सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में परिवर्तनों से सम्बन्धित बिल पास करने की शक्ति।
- (घ) लोक सभा और राज्य सभा की सदस्यता के लिए योग्यताओं में परिवर्तन करने की शक्ति।

8. राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ (Special Powers of Rajya Sabha): राज्य सभा को सौंपी गई कुछ विशेष शक्तियों का ब्यौरा इस प्रकार है:

(i) राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित करने की शक्ति (The Power to declare a Subject of State List as a Subject of National Importance): अनुच्छेद 249 अधीन, राज्य सभा विद्यमान सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास करके राज्य सूची के किसी भी विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित कर सकती है। ऐसे प्रस्ताव के फलस्वरूप संघीय संसद उस विषय के सम्बन्ध में एक वर्ष के समय के लिए कानून बना सकती है। ऐसा प्रस्ताव राज्य सभा के द्वारा प्रत्येक वर्ष बार बार पास किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, जब राज्य सभा धारा 249 के अधीन कोई प्रस्ताव पास करती है तो सम्बन्धित राज्य विषय एक वर्ष के लिए साझा विषय बन जाता है। इस पर संघीय संसद कानून-निर्माण कर सकती है। इस प्रकार राज्य सभा के पास साधारण समय के दौरान किसी भी राज्य के विषय को संघीय संसद के वैधानिक अधिकार क्षेत्र में शामिल करने की विशेष शक्ति प्राप्त है।

(ii) किसी अखिल भारतीय सेवा की स्थापना अथवा समाप्ति से सम्बन्धित शक्ति (Power in respect of Creation or Abolition of an All India Service): संविधान के अनुच्छेद 312 के अनुसार राज्य सभा 2/3 बहुमत से एक प्रस्ताव पास करके एक या एक से अधिक नई अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना कर सकती है। इसी प्रकार, राज्य सभा किसी विद्यमान अखिल भारतीय सेवा को भंग भी कर सकती है।

(iii) लोक सभा के भंग होने की स्थिति में, राज्य सभा राष्ट्रपति के द्वारा संकटकालीन शक्तियों के प्रयोग पर लोकतन्त्रीय ढंग से रोक लगाने के योग्य होती है। लोक सभा की ऐसी स्थिति में संकटकाल की घोषणा को राज्य सभा के द्वारा स्वीकार करवाए जाने की व्यवस्था है।

(iv) केवल राज्य सभा ही भारत के उप-राष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव पेश कर सकती है।

नोट

राज्य सभा की स्थिति (Position of the Rajya Sabha)

राज्य सभा की शक्तियों के अध्ययन से एक बात सामने आती है कि यह न तो ब्रिटिश हाऊस ऑफ लार्ड के समान एक सजावटी सदन है और न ही अमरीकी सीनेट के समान एक बहुत शक्तिशाली सदन है। इसकी स्थिति इन दोनों के बीच वाली है। यह लोक सभा की परछाई नहीं है, परन्तु लोक सभा के समान शक्तिशाली भी नहीं है। अब संघीय संसद के उपरि सदन होने के नाते राज्य सभा को लोक सभा से कम शक्तियाँ सौंपी गई हैं, परन्तु इसके साथ ही यह भी जान लेना आवश्यक है कि संविधान द्वारा राज्य सभा को जो भूमिका दी गई है, वह काफी महत्वपूर्ण है।

इससे कोई इनकार नहीं कि लोक सभा की तुलना में राज्य सभा कमजोर सदन है, कई आलोचकों के द्वारा तो इसको गौण या निरर्थक सदन भी कहा गया है। डॉ. अबेडकर भी इसकी उपयोगिता के प्रति निश्चित नहीं थे। उनके विचार के अनुसार, “मैं नहीं कह सकता कि मैं दूसरे सदन के बहुत पक्ष में हूँ। परन्तु संविधान निर्माण सभा के द्वारा राज्य सभा को दूसरा सदन बनाने का निर्णय कर लिया गया जो भारत संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करेगा और जो सहायक और नियन्त्रक सदन के रूप में कार्य करेगा।” (I cannot say that I am very strongly prepossessed in favour of a second chamber. However, the Constituent Assembly decided to provide for the Rajya Sabha as a second chamber, a chamber designed to give representation to the units of Indian Federation and a chamber designed to act as a helping as well as a checking chamber.) राज्य सभा को न तो ब्रिटिश हाऊस ऑफ लार्ड के समान शक्तिहीन बनाया गया और न ही संयुक्त राज्य की सीनेट जितना शक्तिशाली। साधारण कानून-निर्माण, राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के निर्वाचनों, महाभियोग चलाने की शक्ति और सरकार की रिपोर्टों को विचारने की शक्ति के सम्बन्ध में राज्य सभा को लोक सभा के समान शक्तियाँ दी गई हैं। परन्तु कुल मिला कर इसकी भूमिका को निम्न सदन की भूमिका से कम महत्वपूर्ण रखा गया। लोक सभा को संघ की कार्यपालिका और देश के वित्तीय नियन्त्रण का उत्तरदायित्व सौंपा गया है और इस क्षेत्र में राज्य सभा की शक्तियाँ बहुत सीमित हैं।

राज्य सभा की कमजोर भूमिका के लिए उत्तरदायी कारक

(Factor responsible for giving a Weaker Role to Rajya Sabha)

1. **राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न दिया जाना (Lack of Equal Representation to the States):** राज्य सभा की रचना एक सच्चे संघ की प्रकृति के अनुसार नहीं है क्योंकि इसमें राज्यों को एक समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। राज्यों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या और क्षेत्र के आधार पर किया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका और स्विट्ज़रलैंड जैसे संघीय राज्यों में, संघीय इकाइयों को राष्ट्रीय संसदों के उपरि सदन में समान प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसी कारण राज्य सभा एक वास्तविक संघीय सदन नहीं बन सकी।

2. **दल के हितों का प्रतिनिधित्व (Representation of the Party Interests):** राज्य सभा के सदस्य लोक सभा के सदस्यों के समान राज्य के हितों की नहीं बल्कि दल के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका चुनाव दलीय रेखाओं के अनुसार किया जाता है। श्री गिरधारी लाल के शब्दों में, “यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि यह राज्यों की परिषद् नहीं बल्कि राज्य सभाओं के राजनीतिक दलों की परिषद् है।” (It is, plainly speaking, not a council of states but a council of political parties in the state assemblies.) इसकी रचना ऐसी है जो अलग-अलग राज्य विधान सभाओं में अलग-अलग राजनीतिक दलों के द्वारा प्राप्त सीटों की आनुपातिक संख्या को प्रकट करती है।

नोट

3. मनोनीत सदस्यों की व्यवस्था (Provision for Nominated Members): राष्ट्रपति राज्य सभा में 12 सदस्य मनोनीत करता है। यह वास्तव में लोकतन्त्रीय और संघीय भावना के विरुद्ध है। यह संभावना सदैव स्थापित रहती है कि मनोनीत किए गए 12 सदस्य अपना पूर्ण समर्थन राज्यों को देने की अपेक्षा केन्द्र को देंगे।

4. अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली (Indirect Election System): राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष ढंग से होता है और इसके लिए वह जना के प्रति प्रत्यक्ष रूप में उत्तरदायी नहीं होते। इसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली में प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली की तुलना में भ्रष्ट ढंगों के प्रयोग की अधिक संभावना रहती है।

5. कम शक्तिशाली सदन (Less Powerful House): राज्य सभा की शक्तियाँ निश्चय ही लोक सभा की शक्तियों से कम हैं। राज्य सभा धन बिल को पास करने में केवल 14 दिन की देरी ही कर सकती है और इसका कार्यपालिका पर वास्तविक और प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं होता। मन्त्री लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं, राज्य सभा के प्रति नहीं। साधारण बिलों के सम्बन्ध में भी राज्य सभा की शक्तियाँ लोक सभा से कम होती हैं क्योंकि दोनों सदनों में गतिरोध के निपटारे के लिए बुलाया साझा अधिवेशन भी अधिक सदस्यता के कारण लोक सभा का ही पक्ष पूर्ण करता है। साझे अधिवेशन में निर्णय लेने में लोक सभा के सदस्य के कारण लोक सभा का ही पक्ष पूर्ण करता है। साझे अधिवेशन में निर्णय लेने में भी लोक सभा के सदस्य हावी रहते हैं।

6. बिलों को संशोधन की शक्ति वास्तव में लाभप्रद नहीं है (Revision of Bills not really Useful): लोक सभा के द्वारा पास किए गए बिलों को दोहराना राज्य सभा का एक महत्वपूर्ण कार्य है परन्तु यहाँ भी, उग्र पार्टी राजनीति के कारण, राज्य सभा में विचार-विमर्श पार्टी रेखाओं पर ही होता है। राज्य सभा की भूमिका सीमित होती है। यदि लोक सभा में बहुमत रखती पार्टी को ही राज्य सभा में बहुमत प्राप्त हो तो लोक सभा के द्वारा पास किया गया बिल राज्य सभा में पास होना अनिवार्य ही होता है। इसके अतिरिक्त समिति प्रणाली की कार्य शैली ने भी दूसरे सदन के दोहराने की भूमिका को वास्तव में निरर्थक बना दिया है।

राज्य सभा वह भूमिका निभाने में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकी जो संविधान निर्माताओं ने हमें सौंपी थी। साधारण रूप में इसने भारत संघ के राज्यों के प्रतिनिधि के रूप के सदन तथा बुजुर्गों के सदन की भूमिका दृढ़ता से नहीं निभाई है। बल्कि इसके विपरीत इसने दलीय रेखाओं पर चलते हुए विभाजित हुए सदन की भूमिका निभाई है जिसमें प्रत्येक राजनीतिक दल अपना ही पक्ष प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही यह लोक सभा पर 'रोक' (Check/Brake) की भूमिका निभाने में भी असफल रहा है। साथ ही, कई बार राज्यने 'वृद्ध' या 'पराजित दल' के उम्मीदवारों को संसद में शामिल करने के लिए एक मार्ग के रूप में कार्य किया है। छोटे चुनाव क्षेत्र अर्थात् राज्य विधानसभा के सदस्यों के मतों को राज्य-सभा में किसी एक उम्मीदवार के चुनाव के लिए संकीर्ण हितों के लिए, आसानी से खरीदा जा सकता है।

3.6 राज्य सभा की उपयोगिता (Utility of Rajya Sabha)

इस सच्चाई के बावजूद कि राज्य सभा एक कमजोर सदन है, भारतीय संवैधानिक प्रणाली में संघीय संसद का सहायक और दोहराने वाला सदन होने के कारण, और संघ और राज्यों के मध्य एक सम्पर्क-सूत्र का कार्य करने वाली संस्था के रूप में इसका स्थान महत्वपूर्ण रहा है। राज्य सभा की उपयोगिता का वर्णन करते हुए *मोरिस जोनज़* (Morris Jones) लिखते हैं, "इसकी तीन प्रभावशाली विशेषताएँ हैं: यह अतिरिक्त राजनीतिक अवसर देती है जिनकी मांग विद्यमान है, यह विचार-विमर्श के लिए अधिक अवसर उपलब्ध करवाती है जिनकी कभी-कभार आवश्यकता पड़ी है, और यह सीमित वैधानिक समस्याओं के समाधान ढूँढने में सहायता करती है।" संघीय संसद के उपरि सदन के रूप में राज्य सभा के महत्त्व का अग्रलिखित तथ्यों के आधार पर वर्णन किया जा सकता है:

(1) योग्य व्यक्तियों की प्रतिनिधि (Representative of Able Persons): भारत का राष्ट्रपति ऐसे व्यक्तियों में से राज्य सभा में 12 मनोनीत करता है जिन्होंने कला, विज्ञान, साहित्य और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त की होती हैं। इस प्रकार योग्य और अनुभवी व्यक्तियों को संघीय संसद में शामिल करके राष्ट्र के द्वारा उनकी सेवाओं का लाभ उठाया जा सकता है।

नोट

(2) विशेष शक्तियों सहित अर्ध-स्थायी सदन के रूप में राज्य-सभा की उपयोगिता (Rajya Sabha's Utility as a Quasi-permanent House with Special Powers): राज्य सभा एक अर्ध-स्थायी सदन है और अपनी विशेष शक्तियों के कारण भारतीय संवैधानिक प्रणाली में प्रभावशाली भूमिका निभाता है। अर्ध-स्थायी सदन के रूप में यह स्थिरता का स्रोत है। जब लोक सभा भंग हो चुकी हो और विशेष कार्य आ पड़े जैसा कि किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ानी हो या संकटकालीन समय के घोषणा की स्वीकृति की आवश्यकता हो, उस समय राज्य सभा से स्वीकृति ली जा सकती है। मई, 1991 में हरियाणा में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाने की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए दो दिन का राज्य सभा का विशेष अधिवेशन बुलाया गया था। 21 मई, 1991 को भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के दुर्भाग्यपूर्ण और दुखदायी कत्ल के कारण चुनाव प्रक्रिया पूरी होने में हुई देरी के कारण यह बहुत आवश्यक हो गया था। इसके साथ ही राज्य सभा सहायक सदन के रूप में भी कार्य करती है। यह लोक सभा का कार्य-भार हल्का करती है क्योंकि विवाद-रहित और कुछ अन्य बिल पहले राज्य सभा में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यह बिलों को दोहराने वाले सदन के रूप में भी कार्य करती है। संविधान की संशोधन प्रक्रिया में और राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का चुनाव में यह लोक सभा के समान भूमिका निभाती है। फिर इसके पास अनुच्छेद 249 और 312 के अधीन विशेष शक्तियाँ हैं। इस कारण राज्य सभा ब्रिटिश हाऊस ऑफ लाइज के समान गौण या निरर्थक सदन नहीं है।

(3) राज्य सभा की भूमिका (Rajya Sabha's Role): संविधान लागू करने के समय से लेकर अब तक राज्य सभा संघीय संसद के दूसरे सदन के रूप में उचित भूमिका निभाती है। 1977-79 के दौरान, इसने लोक सभा के द्वारा पास किए गए कुछ बिलों/प्रस्तावों पर रोक लगाने पर जाँच करने की भूमिका निभाई। इस समय के दौरान राज्य सभा एक सक्रिय सदस्य बना रहा क्योंकि उस समय राज्य सभा में तो कांग्रेस का बहुमत था, परन्तु लोक सभा में जनता पार्टी का बहुमत था। इसने 43 वें और 44 वे संशोधन बिलों की कुछ व्यवस्थाओं में संशोधन किया या काट दी जिनको लोक सभा के द्वारा पास कर दिया गया था। इसी प्रकार 1989-90 और 1996-2003 के दौरान ऐसे ही वातावरण के कारण ही राज्य सभा फिर सक्रिय बनी रही। परन्तु 1950-77 और 1980-89 के दौरान राज्य सभा के द्वारा निर्धारित और संवैधानिक रूप में निश्चित की गई भूमिका निभाने में इसकी असफलता का मुख्य कारण एक-दल के हावी होने की प्रणाली वाली भारतीय दल प्रणाली की प्रकृति रही थी और इसमें कोई संरचनात्मक या संवैधानिक त्रुटियाँ नहीं हैं। ज्यों-ज्यों कांग्रेस की अत्यन्त शक्तिशाली स्थिति कम होती गई और दूसरे राजनीतिक दलों की स्थिति अधिक सक्रिय और शक्तिशाली होती गई। राज्य सभा की भूमिका भी परिवर्तित होती गई। आजकल कई अलग-अलग राजनीतिक दलों को संघ के अलग-अलग राज्यों में बहुमत प्राप्त है, राज्य सभा सभी दलों का आनुपातिक क्रम में प्रतिनिधित्व करती है। इनमें से कोई भी दल दो-तिहाई सीटों का बहुमत प्राप्त करने के लिए आशावान नहीं हो सकता और इसके लिए राज्य सभा अपनी इच्छा के अनुसार अपनी संशोधन शक्ति और दो विशेष शक्तियों का प्रयोग अब कर सकती है। इससे इसकी स्थिति कुछ और दृढ़ हुई है। यह अवश्य स्मरण रखा जाना चाहिए कि संघीय संसद एक दो-सदनीय संस्था है और राज्य सभा को इसका अटूट अंग उपरि सदन बना ही रहना है। अब प्रधानमंत्री की नियुक्ति के लिए उम्मीदवार देने के लिए राज्य सभा पर भी निर्भर किया जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

- वर्ष 1997 में प्रधानमंत्री बने श्री इन्द्र कुमार गुजराल के सदस्य थे।
 - लोक सभा
 - राज्य सभा
 - न (a) न (b)
 - उपरोक्त में कोई नहीं
- संविधान के किस अनुच्छेद के द्वारा राज्य सभा 2/3 बहुमत से एक प्रस्ताव पास करके एक या अधिक नई अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना कर सकता है?
 - अनुच्छेद 356
 - अनुच्छेद 256
 - अनुच्छेद 312
 - अनुच्छेद 96

9. राजीव गांधी की हत्या कब हुई थी?

(a) 21 मई 1992

(b) 21 मई 1991

(c) 21 मई 1993

(d) 21 मई 1994

नोट

3.7 लोक सभा—लोगों का सदन (Lok Sabha—The House of the People)

लोगों का सदन (The House of the People), जिसको लोकप्रिय रूप में लोक सभा (Lok Sabha) के रूप में जाना जाता है, संघीय संसद का प्रथम और निम्न सदन है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है, यह भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। इसका चुनाव प्रत्यक्ष रूप में लोगों के द्वारा किया जाता है। यह संघीय संसद का शक्तिशाली, लोकतन्त्रीय और सम्पूर्ण प्रतिनिधि सदन है और इस सम्बन्ध में इनकी स्थिति ब्रिटिश हाऊस ऑफ कॉमन्स जैसी है। भारतीय लोक सभा को दी गई शक्तियाँ ब्रिटिश हाऊस ऑफ कॉमन्स की शक्तियों जैसी ही हैं। लोक सभा की स्थिति इतनी शक्तिशाली है कि कई विद्वान् तो इसको ही वास्तविक संसद कहना पसंद करते हैं। परन्तु यह उचित टिप्पणी नहीं। फिर भी, इससे लोक सभा को भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में प्राप्त महत्वपूर्ण और शक्तिशाली स्थिति प्रकट होती है।

1. रचना (Composition): 1950 में जब संविधान लागू हुआ, तब लोक सभा के सदस्यों की संख्या 500 निश्चित की गई थी। 1956 में सातवें संशोधन के द्वारा यह संख्या 520 तक बढ़ा दी गई। पुनः 1963 में, 14वें संशोधन के द्वारा सदस्यों की संख्या 525 तक बढ़ा दी गई। इनमें से 500 सीटें राज्यों में रहते लोगों और 25 सीटें केन्द्र शासित प्रदेशों की बाँटी गई थीं। 31 वें संशोधन नियम द्वारा, लोक सभा के सदस्यों की अधिक-से-अधिक संख्या 550 निश्चित की गई परन्तु आजकल इनकी संख्या 545 है। जिनमें से 525 राज्यों में से और 20 केन्द्र शासित प्रदेशों में से चुने जाते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 331 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि एंग्लो-इंडियन समुदाय को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला तो वह इस समुदाय के दो प्रतिनिधि लोक सभा में मनोनीत कर सकता है। लोक सभा के सदस्यों की संख्या 2010 सन् तक 545 निश्चित की गई है। (42वें संशोधन कानून 1976 द्वारा)। लोक सभा में भी संविधान के द्वारा निश्चित अनुपात में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के लिए सीटें आरक्षित रखी गई हैं।

**Table 3.2: लोक सभा: सीटों का विभाजन
(Lok Sabha : Allocation of Seats)**

<i>States/U.T.</i>	<i>Total seats</i>	<i>Reserved for the S.C.</i>	<i>Reserved for the S.T.</i>
STATES:			
Andhra Pradesh	5	34	3
Arunachal Pradesh	2	—	—
Assam	1	10	3
Bihar	13	22	2
Goa	1	1	—
Gujarat	14	12	—
Haryana	—	8	2
Himachal Pradesh	—	4	—
Jammu and Kashmir	—	4	2
Karnataka	18	8	2

नोट

Kerala	—	1	19
Madya Pradesh	24	4	1
Maharashtra	25	23	—
Manipur	—	1	—
Meghalaya	1	—	—
Mizoram	1	—	—
Nagaland	—	—	1
Orrisa	18	3	—
Punjab	11	2	—
Rajasthan	21	4	—
Sikkim	—	—	1
Tamil Nadu	0	35	4
Tripura	—	2	—
Uttar Pradesh	12	9	59
West Bengal	1	5	36
Chhattisgarh	10	1	—
Jharkhand	1	10	3
Uttaranchal	4	1	—
UNION TERRITORIES :			
Andaman and Nicobar	—	1	—
Chandigarh	—	1	—
Dadra & Nagar Haveli	—	1	—
Delhi	1	6	—
Daman and Diu	—	1	—
Lakshadweep	1	—	—
Pondicherry	—	1	—

II. लोक सभा के सदस्यों का चुनाव ढंग (Method of Election of the Members of Lok Sabha): लोक सभा के सदस्यों का चुनाव निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है:

(क) **सार्वभौमिक वयस्क वोट अधिकार (Universal Adult Franchise):** 18 वर्ष या उससे अधिक की आयु वाले व्यक्ति को लोक सभा चुनाव में वोट डालने का अधिकार होता है। पहले आयु की यह सीमा 21 वर्ष की थी। परन्तु वोट केवल वही मतदाता डाल सकता है जिसका नाम मतदाता सूची में दर्ज हुआ हो।

(ख) **संयुक्त निर्वाचन-मण्डल (Joint Electorate System):** मतदाता संयुक्त निर्वाचन-मण्डल के आधार पर वोट डालते हैं जिसका अर्थ है कि सभी मतदाता साझे उम्मीदवारों को ही वोट डालते हैं और अलग-अलग सम्प्रदायों से अपने गठबन्धन के आधार पर नहीं। समस्त देश को क्षेत्रीय चुनाव-क्षेत्रों में बाँटा जाता है और प्रत्येक चुनाव क्षेत्र के सभी मतदाता एक प्रतिनिधि निर्वाचित करते हैं। परन्तु कुछ चुनाव क्षेत्र अनुसूचित जातियों और कबीलों के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। उनको आरक्षित निर्वाचन-क्षेत्र कहा है और ऐसे चुनाव क्षेत्रों में केवल अनुसूचित जाति या कबीले से सम्बन्ध रखने वाले उम्मीदवार ही चुनाव लड़ सकते हैं। परन्तु आरक्षित चुनाव क्षेत्र में भी सभी मतदाता वोट डालते हैं।

(ग) **एक-सदस्यीय चुनाव क्षेत्र (Single Member Constituencies):** समस्त देश को उतने चुनाव क्षेत्रों में बाँटा जाता है जितने कि लोक सभा के सदस्य चुने जाने होते हैं और प्रत्येक चुनाव क्षेत्र में से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। चुनाव क्षेत्रों की निशानदेही एक सीमाबन्दी आयोग (Delimitation Commission) करता है जिसकी स्थापना प्रत्येक जनगणना (Census) के पश्चात् की जाती है।

नोट

(घ) **चुनाव-क्षेत्र क्षेत्रीय चुनाव क्षेत्र होते हैं। (The Constituencies are Territorial Constituencies):** चुनाव क्षेत्रों की सीमाबंदी सीमा-निर्धारण आयोग के द्वारा की जाती है। सामान्य रूप में प्रत्येक चुनाव क्षेत्र की जनसंख्या 5 लाख से 7.5 लाख के बीच होती है।

(ङ) **गुप्त वोट (Secret Ballot):** लोक सभा के सदस्यों का चुनाव गुप्त वोट के द्वारा होता है और कोई नहीं जनता कि किस मतदाता ने किसी उम्मीदवार के पक्ष में वोट डाली है।

(च) **प्रत्यक्ष चुनाव (Direct Election):** लोक सभा के सभी सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष ढंग से होता है। प्रत्येक मतदाता अपने चुनाव क्षेत्र में खड़े किसी भी उम्मीदवार को वोट डाल सकता है। वह उम्मीदवार जो उस क्षेत्र में खड़े प्रतियोगियों में से सबसे अधिक मत प्राप्त करता है, उसको उस क्षेत्र के लोगों का प्रतिनिधि निर्वाचित मान लिया जाता है।

III. सदस्यता के लिए योग्यताएँ (Qualifications for Membership): लोक सभा का चुनाव लड़ने के लिए व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए:

- (1) वह भारत का नागरिक हो।
- (2) उसकी आयु 25 वर्ष से कम न हो।
- (3) वह संघ या राज्य सरकार के अधीन किसी लाभप्रद पद पर कार्य न कर रहा हो।
- (4) वह पागल या दिवालिया न हो।
- (5) उसको कानून के द्वारा किसी न्यायालय के द्वारा किसी अपराध के लिए दोषी न ठहराया गया हो।
- (6) वह संसद के कानून के द्वारा निर्धारित की गई योग्यताएँ पूर्ण करता हो।

IV. कार्यकाल (Term): लोक सभा का साधारण कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। संकटकालीन समय के दौरान यह कार्यकाल एक वर्ष के लिए बढ़ाया भी जा सकता है परन्तु फिर संकटकालीन समय के समाप्त होने से छः महीने के भीतर-भीतर लोक सभा के ताज़ा चुनाव करवाए जाना आवश्यक होता है। 42वें संशोधन द्वारा, लोक सभा का कार्यकाल 6 वर्ष तक बढ़ा दिया गया था परन्तु 44वें संशोधन के द्वारा यह कार्यकाल पुनः 5 वर्ष का कर दिया गया। राष्ट्रपति लोक सभा का कार्यकाल पूरा होने से पहले भी इसको भंग कर सकता है जैसा कि 1977, 1979, 1991, 1997, 1998, 1999, और 2004 में किया गया था। यदि लोक सभा के चुनाव, पहली लोक सभा का कार्यकाल पूरा होने से पहले करवाए जाएं तो उनको मध्यवर्ती चुनाव कहा जाता है। परन्तु प्रत्येक नई लोक सभा 5 वर्ष के समय के लिए निर्वाचित की जाती है। लोक सभा को भंग करते समय राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श अनुसार कार्य करता है। प्रधानमन्त्री को जब तक लोक सभा में बहुमत प्राप्त हो, वह राष्ट्रपति को नया जनादेश प्राप्त करने के लिए लोक सभा भंग करने के लिए कभी भी सिफ़रिश कर सकता है। ऐसी प्रत्येक प्रार्थना राष्ट्रपति के द्वारा स्वीकार कर ली जाती है।

V. बैठकें (Sessions): भारतीय संविधान के अनुच्छेद 85 के अनुसार, राष्ट्रपति किसी भी समय संसद की बैठक बुला सकता है परन्तु संसद की दो बैठकों में छः महीनों से अधिक का अन्तर नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि एक वर्ष में लोक सभा की कम-से-कम दो बैठकें होनी आवश्यक होती हैं। राष्ट्रपति के पास लोक सभा के अधिवेशन बुलाने, दीर्घकालीन समय के लिए स्थगित करने या भंग करने की शक्ति होती है।

VI. गणपूर्ति (कोरम) (Quorum): लोक सभा की एक बैठक के लिए कम-से-कम 1/10 सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य होती है। यदि लोक सभा के 1/10 सदस्य बैठक में उपस्थित न हों तो सदन का स्पीकर गणपूर्ति संख्या के कम होने के कारण बैठक को उठा सकता है।

VII. लोक सभा के अधिकारी, स्पीकर और डिप्टी स्पीकर (Presiding Officers of Lok Sabha, Speaker and Deputy Speaker): स्पीकर ही लोक सभा का अध्यक्ष और अध्यक्षता करने वाला अधिकारी होता है। स्पीकर का चुनाव लोक सभा के सदस्यों के द्वारा अपने में से ही किया जाता है। प्रत्येक नई लोक सभा अपनी पहली बैठक में अपने में से ही एक सदस्य को स्पीकर और दूसरे को डिप्टी स्पीकर के रूप

नोट

में निर्वाचित करती है। स्पीकर लोक सभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है, सदन की कार्यवाही संचालित करता है और सदन में अनुशासन और मर्यादा स्थापित रखता है। सदन में उसकी सत्ता सर्वोच्च होती है। वह सदन में राजनीतिक रूप में निष्पक्ष व्यक्ति के रूप में व्यवहार करता है। स्पीकर की अनुपस्थिति में उसके कर्तव्य डिप्टी स्पीकर के द्वारा निभाए जाते हैं। स्पीकर और डिप्टी स्पीकर दोनों के संसद में से अनुपस्थित होने की परिस्थिति में अध्यक्ष व्यक्तियों की सूची में से कोई व्यक्ति बैठक की अध्यक्षता करता है। 14वीं लोक सभा ने श्री सोमनाथ चटर्जी को अपना स्पीकर और श्री सी. एस. अटवाल को उप-स्पीकर निर्वाचित किया।

VIII. लोक सभा के सदस्यों का वेतन, भत्ते और पेंशन (Salary, Allowances and Pension of Members): लोक सभा के सदस्यों को संसद के द्वारा निश्चित मासिक वेतन और भत्ते मिलते हैं और यदि एक सदस्य कम-से-कम 5 वर्ष तक लोक सभा का सदस्य रहता है तो उसको पेंशन भी मिलती है।

IX. विशेष अधिकार (Special Privileges): लोक सभा के सदस्यों को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं। उनको सदन में अपने विचार प्रस्तुत करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। उनके द्वारा सदन में कही गई किसी भी बात पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। बैठक के दौरान, इससे 40 दिन पहले और बाद में उनको किसी दीवानी दोष के अधीन बंदी नहीं बन या जा सकता। फौजदारी मामलों में उनको केवल तभी गिरफ्तार किया जा सकता है यदि स्पीकर को इसके बारे में सूचना दी गई हो। पार्टी अनुशासन के कारण लोक सभा के सदस्य को अपने दल की नीति के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है। अपने दल के द्वारा जारी किए गए व्हिप (Whip) के अनुसार मतदान में भाग लेना पड़ता है नहीं तो उनके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जा सकती है।

X. विरोधी पक्ष के नेता को सरकारी मान्यता (Official Recognition to the Leader of Opposition): इंग्लैंड में विरोधी पक्ष के नेता को विशेष सरकारी मान्यता प्राप्त होती है। भारत में भी, ब्रिटेन के समान 18 अगस्त 1977 को संसद से सम्बन्धित कानून पास किया गया और इसके अनुसार सदन में विरोधी दल के नेता को सरकारी मान्यता दिए जाने की व्यवस्था की गई। विरोधी दल के नेता को वे सभी सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। जो कैबिनेट के मन्त्रियों को प्राप्त होती हैं। बी. जे. पी. नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी 11वीं लोक सभा में विरोधी पक्ष के सरकारी मान्यता प्राप्त नेता थे और 12वीं लोक सभा में कांग्रेस (आई) के श्री शरद पवार विरोधी पक्ष की नेता के रूप में मान्यता मिली। 14वीं लोक सभा में भाजपा के सांसद और नेता श्री एल.के. आडवाणी विरोधी दल के नेता के पद पर आसीन होकर उभरे। 15वीं लोकसभा में भी यू.पी.ए का वर्चस्व रहा।

Table 3.3: 15वीं लोकसभा आम चुनाव 2009 क्षेत्रवार परिणाम

राज्य एवं सीटें	राजनीतिक दल	जीती गई सीटों की संख्या
Andhra Pradesh (42)	Indian National Congress	33
	Telugu Desam Party	6
	Telangana Rashtra Samithi	2
	All India Majlis-e-Ittehadul Muslimeen	1
Arunachal Pradesh (2)	Indian National Congress	2
Assam (14)	Indian National Congress	7
	Bharatiya Janata Party	4
	Assam United Democratic Front	1
	Asom Gana Parishad	1
	Bodaland Peoples Front	1

नोट

	Janata Dal (United)	20
	Bharatiya Janata Party	12
Bihar (40)	Rashtriya Janata Dal	4
	Indian National Congress	2
	Independent	2
Chhattisgarh (11)	Bharatiya Janata Party	10
	Indian National Congress	1
Goa (2)	Bharatiya Janata Party	1
	Indian National Congress	1
Gujarat (26)	Bharatiya Janata Party	15
	Indian National Congress	11
Haryana (10)	Indian National Congress	9
	Haryana Janhit Congress	1
Himachal Pradesh (4)	Bharatiya Janata Party	3
	Indian National Congress	1
Jammu and Kashmir (6)	Jammu and Kashmir National Conference	3
	Indian National Congress	2
	Independent	1
	Bharatiya Janata Party	8
	Jharkhand Mukti Morcha	2
Jharkhand (14)	Indian National Congress	1
	Jharkhand Vikas Morcha (Prajantrik)	1
	Independent	2
	Bharatiya Janata Party	19
Karnataka (28)	Indian National Congress	6
	Janata Dal (Secular)	3
	Indian National Congress	13
	Left Democratic Front	4
Kerala (20)	Indian Union Muslim League	2
	Kerala Congress (Mani)	1
	Bharatiya Janata Party	16
	Independent	2
Madhya Pradesh (29)	Indian National Congress	12
	Bahujan Samaj Party	1

नोट

	Indian National Congress	17
Maharashtra (48)	Shiv Sena	11
	Bharatiya Janata Party	9
	Nationalist Congress Party	8
	Bahujan Vikas Aaghadi	1
	Swabhimani Paksha	1
	Independent	1
Manipur (2)	Indian National Congress	2
Meghalaya (2)	Indian National Congress	1
	Nationalist Congress Party	1
Mizoram (1)	Indian National Congress	1
Nagaland (1)	Nagaland People's Front	1
Orissa (21)	Biju Janata Dal	14
	Indian National Congress	6
	Communist Party of India	1
Punjab (13)	Indian National Congress	8
	Shiromani Akali Dal	4
	Bharatiya Janata Party	1
Rajasthan (25)	Indian National Congress	20
	Bharatiya Janata Party	4
	Independent	1
Sikkim (1)	Sikkim Democratic Front	1
	Dravida Munnetra Kazhagam	18
	All India Anna Dravida Munnetra Kazhagam	9
	India National Congress	8
Tamil Nadu (39)	Communist Party of India	1
	Communist Party of India (Marxist)	1
	Marumalarchi Dravida Munnetra Kazhagam	1
	Viduthalai Chiruthaigal Katchi	1
Tripura (2)	Communist Party of India (Marxist)	2
Uttar Pradesh (80)	Samajwadi Party	23
	Indian National Congress	21
	Bahujan Samaj Party	20
	Bharatiya Janata Party	10
	Rashtriya Lok Dal	5
	Independent	1

नोट

Uttarakhand (5)	Indian National Congress	5
West Bengal (42)	All India Trinamool Congress	19
	Left Front	15
	Indian National Congress	6
	Bharatiya Janata Party	1
	Socialist Unity Centre of India	1
Territory (≠ of seats)	Party	Seats won
Andaman and Nicobar Island (1)	Bharatiya Janata Party	1
Chandigarh (1)	Indian National Congress	1
Daman and Diu (1)	Bharatiya Janata Party	1
Delhi (7)	Indian National Congress	7
Lakshadweep (1)	Indian National Congress	1
Puducherry (1)	Indian National Congress	1

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

10. लोक सभा संसद का सदन है।
11. वर्तमान समय में लोक सभा के सदस्यों की संख्या है।
12. लोक सभा के सदस्यों का चुनाव प्रणाली द्वारा होता है।
13. लोक सभा का सदस्य बनने के लिए न्यूनतम आयु सीमा हो।

3.8 लोक सभा की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of Lok Sabha)

लोकसभा की शक्तियाँ और कार्यो को निम्नलिखित शीषकों के अधीन वर्णन किया जा सकता है:

1. वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers): एक साधारण बिल केवल तभी कानून बन सकता है यदि इसको संसद के दोनों सदनों के द्वारा पास किया गया हो। इसको लोक सभा या राज्य सभा किसी में भी पेश किया जा सकता है। जब यह एक सदन के द्वारा पास हो जाता है तो इसको दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। दोनों सदनों द्वारा पास किए जाने के पश्चात्, राष्ट्रपति के हस्ताक्षर से यह कानून बन जाता है। चाहे कि साधारण बिल संसद के दोनों सदनों में से किसी सदन में भी पेश किए जा सकते हैं परन्तु लगभग 90% बिल लोक सभा में ही पेश किए जाते हैं। पहले लोक सभा इनको पास करती है और बाद में राज्य सभा। यदि राज्य सभा ऐसे किसी बिल को रद्द कर देती है या संशोधन सहित लोक सभा के पास वापस भेजा देती है तो लोक सभा पुनः बिल पर विचार करती है। यदि कोई बिल लोक सभा के द्वारा पुनः पास कर दिया जाए परन्तु राज्य सभा अभी भी इसको पास करने के लिए तैयार न हो तो गतिरोध (Deadlock) पैदा हो जाता है। यदि ऐसे गतिरोध का छः महीने तक समाधान न हो सके तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की साझी बैठक बुलाता है और ऐसी बैठक में जो निर्णय हो जाता है उसके अनुसार बिल के भाग्य का निर्णय हो जाता है। दोनों के साझे अधिवेशन के ढंग के द्वारा विरोध दूर करने का ढंग लोक सभा के पक्ष में रहता है क्योंकि लोक सभा के सदस्यों की संख्या राज्य सभा के सदस्यों की संख्या

से अधिक लगभग दुगनी होती है और साझे अधिवेशन में, लोक सभा, अधिक सदस्यों के कारण हावी ही रहती है। दोनों सदनों की साझे बैठक की अध्यक्षता लोक सभा का स्पीकर करता है। इसके लिए साधारण कानून बनाने के सम्बन्ध में भी लोक सभा की स्थिति अच्छी और शक्तिशाली होती है।

2. कार्यकारी शक्तियाँ (Executive Powers): भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75 (3) के अनुसार, “मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप में लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है।” (Council of Ministers shall be collectively responsible to the House of the people): मन्त्रि-परिषद् अपनी प्रत्येक त्रुटि, उपेक्षा और अवहेलना के सभी कार्यों के लिए लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। मन्त्री तब तक अपने पद पर रह सकते हैं जब तक कि उनको लोक सभा में बहुमत का विश्वास प्राप्त रहता है। प्रधानमंत्री सामान्य रूप में लोक सभा का ही सदस्य होता है परन्तु अब यह आवश्यक नहीं। लोक सभा कभी भी मन्त्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास करके उनको पद से हटा सकती है। इस तरह मन्त्रि-परिषद् के जीवन और मृत्यु का निर्णय लोक सभा के हाथ में होता है। लोक सभा कई ढंगों के द्वारा मन्त्रि-परिषद् को अपने प्रति उत्तरदायी बनाती है जैसा कि प्रशासन के सभी मामलों से सम्बन्धित प्रश्न पूछ कर, उनके द्वारा अपनाई गई नीतियों की आलोचना करके, कटौती प्रस्ताव, निंदा प्रस्ताव और अविश्वास प्रस्ताव पास करके और सरकार के साधारण बिल और धन से सम्बन्धित बिल रद्द करके। यदि लोक सभा (i) कैबिनेट की किसी नीति या निर्णय को रद्द कर दे या सरकार का कोई बजट या बिल स्वीकार न करे, या (ii) प्रधानमंत्री वे विरुद्ध अविश्वास का वोट पास कर दे तो इसको समस्त मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव मान लिया जाता है और समस्त मन्त्रि-परिषद् को ही त्याग-पत्र देना पड़ता है। 12 अप्रैल, 1997 को प्रधानमंत्री एच.डी. देवेगौड़ा के द्वारा पेश किए गए विश्वास के प्रस्ताव को लोक सभा का समर्थन न मिलने पर जून, 1996 में बनी साझे मोर्चे की पहली सरकार गिर गई थी। अप्रैल, 1999 में बी.जे.पी. गठबंधन सरकार भी लोक सभा में से एक विश्वास का प्रस्ताव प्राप्त करने में असफल रही और 17 अप्रैल, 1999 को प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी सरकार का त्याग-पत्र राष्ट्रपति को पेश कर दिया। इस प्रकार लोक सभा के पास सरकार को पद से हटाने की शक्ति होती है।

3. वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)—वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में लोक सभा को उत्तम स्थिति प्राप्त है क्योंकि वित्त से सम्बन्धित सभी बिल लोक सभा में ही पेश किए जाते हैं। लोक सभा के द्वारा पास किए जाने पर ऐसे बिल राज्य सभा में भेजे जाते हैं। लोक सभा के द्वारा पास किया गया कोई वित्तीय बिल राज्य सभा के द्वारा अधिक-से-अधिक 14 दिन के समय के लिए ही रोका जा सकता है। यदि राज्य सभा किसी वित्तीय बिल को पास करने में असमर्थ रहता है या राज्य सभा में वित्तीय बिल भेजे जाने की तिथि से 14 दिन व्यतीत हो जाएं तो यह मान लिया जाता है कि इसको संसद के दोनों सदनों ने पास कर दिया है और इसको स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है। कोई विशेष बिल वित्तीय बिल है या नहीं, इसका निर्णय लोक सभा का स्पीकर करता है। उसका निर्णय अंतिम होता है और इसको लोक सभा के पास कर लगाने या कोई कर समाप्त करने और राष्ट्र की वित्तीय नीतियों पर नियन्त्रण करने से सम्बन्धित मामलों पर अंतिम अधिकार होता है। लोक सभा राष्ट्र के वित्त की वास्तविक स्वामी और संरक्षिका होती है।

4. न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)—लोक सभा कई न्यायिक शक्तियाँ भी निभाती है। राष्ट्रपति के विरुद्ध दोष लगाने की कार्यवाही संसद के बहुमत से प्रस्ताव पास करके राष्ट्रपति को उसके पद से हटाया जा सकता है। इसके द्वारा भारत के उप-राष्ट्रपति के विरुद्ध राज्य सभा के द्वारा लगाए गए दोषों की भी जाँच की जाती है। यह राज्य सभा के सदस्यों से मिलकर सर्वोच्च न्यायालय या किसी राज्य के उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने का प्रस्ताव भी पास कर सकती है। यह संयुक्त रूप में राष्ट्रपति को विशेष प्रस्ताव के द्वारा राज्य के कुछ विशेष उच्च अधिकारियों जैसा कि अटार्नी जनरल, मुख्य चुनाव आयुक्त, भारतीय कम्पट्रोलर और आडीटर जनरल को हटाने के लिए भी प्रस्ताव पास कर सकती है। यह किसी सदस्य या किसी व्यक्ति के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही कर सकती है जो सदन की मानहानि करने का दोषी हो।

नोट

5. निर्वाचन कार्य (Electoral Functions)—लोक सभा कुछ निर्वाचन कार्य भी निपटाती है। लोक सभा राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भारत के उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं। लोक सभा के सदस्य अपने में से ही दो सदस्यों को क्रमशः स्पीकर और उप-स्पीकर का निर्वाचन भी करते हैं।

6. संशोधन शक्तियाँ (Amendment Powers)—संविधान में संशोधन बिल किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। परन्तु इसको तब ही पास समझा जाता है जब दोनों सदन इसको समान रूप में और संविधान के अनुच्छेद 368 की व्यवस्थाओं के अनुसार पास कर देते हैं। लोक सभा और राज्य सभा, दोनों ही एक समान संविधान संशोधन की शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

7. संकटकाल की स्थिति की घोषणा की स्वीकृति (Approval of the declaration of Emergency)—भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति तीन प्रकार की संकटकाल स्थिति की घोषणा कर सकता है—राष्ट्रीय संकटकाल स्थिति (अनुच्छेद 352), राज/राज्यों में संवैधानिक संकटकाल स्थिति (अनुच्छेद 356) और वित्तीय संकटकाल स्थिति (अनुच्छेद 360)। परन्तु संकटकाल स्थिति की ऐसी प्रत्येक घोषणा को करते समय लोक सभा और राज्य सभा दोनों की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक होती है। यदि संकटकाल स्थिति की घोषणा के समय लोक सभा भंग हो गई हो तो इसकी स्वीकृति राज्य सभा से करवा ली जाती है, परन्तु नई लोक सभा के अस्तित्व में आने के पश्चात् संकटकाल स्थिति के घोषणा को 30 दिनों के भीतर इससे भी स्वीकार करवाना आवश्यक होता है, नहीं तो घोषणा को रद्द समझा जाता है।

8. लोक सभा की कुछ अन्य शक्तियाँ (Some other Powers of Lok Sabha)—उपर्युक्त शक्तियाँ रखने के साथ-साथ लोक सभा कुछ अन्य कार्य भी करती है: (क) राष्ट्रपति के द्वारा जारी किए गए अध्यादेशों को स्वीकार या रद्द करना, (ख) राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करना, नए राज्यों को बनाना और किसी राज्य का नाम बदल देना, (ग) सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र परिवर्तित करना, (घ) संसद और राज्य विधानपालिकाओं के सदस्य की योग्यताओं में परिवर्तन करना, (ङ) संसद के सदस्यों के वेतन और भत्तों में संशोधन करना, और (च) दो या दो से अधिक राज्यों के लिए संयुक्त लोक सेवा आयोग स्थापित करना। यह राज्य विधानसभा के उपरि सदन को भंग करने या पुनः स्थापित करने के लिए भी प्रस्ताव पास कर सकती है।

लोक सभा की स्थिति (Position of the Lok Sabha)—लोक सभा की शक्तियों और कार्यों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोक सभा अर्थात् संसद, बहुत ही शक्तिशाली सदन है। मन्त्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होती है, राज्य सभा के प्रति नहीं। मन्त्रि-परिषद् के सदस्य लोक सभा का राष्ट्र के वित्त पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। साधारण कानून बनाने के मामलों में भी लोक सभा की ही स्थिति प्रभावी है क्योंकि लगभग 90% बिल लोक सभा में ही पेश किए जाते हैं और दोनों सदनों में किसी झगड़े के समाधान के समय संयुक्त बैठक की विधि लोक सभा के ही पक्ष में है। लोक सभा कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है। सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री सामान्य रूप में लोक सभा से ही होता था। लोक सभा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके या सरकार की नीति या कानून को रद्द करके मन्त्रि-परिषद् को भंग कर सकती है।

क्योंकि लोक सभा का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप में किया जाता है, इसके लिए यह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन होता है और वास्तव में ही लोक सभा भारतीय जनता की प्रभुसत्ता को प्रकट करती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्न में सत्य/असत्य बताएँ

14. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75 (1) के अनुसार मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है।
15. लगभग 90 प्रतिशत बिल राज्य सभा में ही पेश किये जाते हैं।

3.9 लोक सभा का स्पीकर (Speaker of the Lok Sabha)

नोट

लोक सभा में स्पीकर बहुत शक्तिशाली व्यक्ति होता है। वह सदन के अन्दर सर्वोच्च सत्ताधारी होता है। देश के सर्वोच्च व्यक्तियों में उसका 7वां स्थान है और उसको भारत के मुख्य न्यायाधीश के समान स्तर प्राप्त होता है। स्पीकर लोक सभा की सर्वोच्चता का प्रतिनिधित्व करता है, उसका पद बहुत गौरव वाला होता है जिसका सभी सदस्यों के द्वारा इस सीमा तक स्वीकार किया जाता है कि जब स्पीकर सदन में खड़ा होता है तो अन्य कोई भी सदस्य सदन में खड़ा नहीं होता और जब वह बोलता है तो अन्य कोई भी नहीं बोलता, सभी उसको सुनते हैं। पंडित जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, “स्पीकर सदन का प्रतिनिधित्व करता है। वह सदन के गौरव का प्रतिनिधित्व करता है और क्योंकि सदन एक विशेष ढंग से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है इस प्रकार स्पीकर देश की स्वतन्त्रता का प्रतीक बन जाता है।” (The Speaker represents the House. He represents the dignity of the House and because the House represents the nation, in a particular way, the Speaker becomes the symbol of Nation's freedom and liberty.) लोक सभा के भूतपूर्व स्पीकर हुकम सिंह ने एक बार कहा था, “स्पीकर देश के सबसे उच्च पदों में से एक पद संभालता है।” (The Speaker holds one of the highest offices of the land.)

(i) **स्पीकर का चुनाव** (Election of the Speaker)—लोक सभा की बैठकों की अध्यक्षता करने के लिए इसके सभी सदस्यों के द्वारा एक व्यक्ति को अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया जाता है उसको लोक सभा का स्पीकर कहा जाता है। संविधान के अनुच्छेद 93 के अनुसार, “लोगों के सदन (लोक सभा) के द्वारा जितनी जल्दी हो सके, सदन के दो सदस्यों का निर्वाचन स्पीकर और उप-स्पीकर के रूप में किया जाएगा।”

आम चुनावों के पश्चात् नई सरकार बनने पर स्पीकर का चुनाव सदन के द्वारा अपनी प्रथम बैठक में किया जाता है। सामान्य रूप में स्पीकर का निर्वाचन सर्वसम्मति से किया जाता है। विरोधी दलों के नेताओं से परामर्श के पश्चात् बहु-संख्या वाले दल के नेता के द्वारा स्पीकर का नाम प्रस्तावित किया जाता है। इस प्रस्ताव का विरोधी दल के नेता के द्वारा समर्थन किया जाता है। स्पीकर का चुनाव तभी होता है यदि सदन में बहुमत वाले दल और अन्य दल इस मुद्दे पर असहमत हों। 1976 में स्पीकर के पद के लिए कांग्रेस (आई) के उम्मीदवार श्री बाली राम भगत की विजय हुई थी। 9वीं लोक सभा के स्पीकर श्री रवि रे थे। श्री शिव राज पाटिल 10वीं लोक सभा और श्री पी. ए. संगमा 11वीं लोक सभा के स्पीकर श्री रवि रे थे। इसी प्रकार 12वीं लोक सभा में श्री बालयोगी स्पीकर और श्री पी.एस. सईद चुने गए थे। परन्तु बाद में जब एक हवाई हादसे में श्री बालयोगी की मृत्यु हो गई तो लोक सभा ने अपने लिए नया स्वीकर निर्वाचित किया। श्री मनोहर जोशी लोक सभा के स्पीकर निर्वाचित किए गए। श्री पी. एम. सईद पहले के समान ही उप-स्पीकर बने रहे। (श्री जी.वी. मावलंकर पहली लोक सभा के पहले स्पीकर थे)।

14वीं लोक सभा ने श्री सोमनाथ चटर्जी को स्पीकर तथा श्री चरणजीत सिंह अटवाल को उप-स्पीकर सर्वसहमति से निर्वाचित किया तथा वर्तमान में चल रही 15वीं लोक सभा की अध्यक्ष श्रीमती मीरा कुमार हैं।

(ii) **योग्यताएँ** (Qualifications)—स्पीकर के पद के लिए औपचारिक योग्यताएँ निश्चित नहीं की गईं। सदन के द्वारा लोक सभा के किसी भी विद्यमान सदस्य को स्पीकर चुना जा सकता है। हम कह सकते हैं कि लोक सभा के सदस्य बनने के लिए जो योग्यताएँ आवश्यक हैं, वही योग्यताएँ स्पीकर के पद के लिए भी आवश्यक हैं, परन्तु वास्तव में केवल एक अनुभवी और लोकप्रिय लोक सभा का सदस्य ही इस महान् पद के लिए निर्वाचित किया जाता है।

(iii) **कार्यकाल** (Tenure)—स्पीकर का कार्यकाल लोक सभा जितना अर्थात् 5 वर्ष होता है, परन्तु लोक सभा भंग हो जाने के पश्चात् भी वह अपने पद पर बना रहता है। वह तब तक पद पर बना रहता है जब तक नई लोक सभा अपना स्पीकर नहीं निर्वाचित कर लेती। स्पीकर अपना कार्यकाल पूरा होने से पहले किसी भी समय अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है।

(iv) **पद से हटाने का ढंग** (Method of Removal)—भारतीय संविधान के अनुच्छेद 94 में कहा गया है कि यदि स्पीकर सदन का सदस्य नहीं रहता तो उसकी स्पीकर के रूप में सेवाएँ समाप्त हो जाती हैं। स्पीकर स्वयं

नोट

भी अपने पद से कभी भी त्याग-पत्र दे सकता है। लोक सभा स्पीकर को पद से हटा भी सकती है। इस सम्बन्ध में यदि सदन की बहुसंख्या उसको पद से हटाने के बारे में प्रस्ताव पास कर देती है। तो स्पीकर को पद छोड़ना पड़ता है। परन्तु स्पीकर के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने से 14 दिन पहले ऐसा प्रस्ताव लाने वालों को सदन को एक नोटिस देना पड़ता है।

(v) **वेतन और भत्ते (Salary and Allowances)**—स्पीकर के वेतन और भत्ते संसद के द्वारा निश्चित किए जाते हैं। वेतन और भत्तों के अतिरिक्त उसको मुफ्त निवास, मुफ्त डॉक्टरी सहायता, यात्रा भत्ता और अन्य बहुत-सी सुविधाएँ मिलती हैं। उसका वेतन संघित निधि (Consolidated Fund) में से दिया जाता है।

स्पीकर की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of the Speaker)

लोक सभा का स्पीकर निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य करता है:

1. **सदन की बैठकों की अध्यक्षता (To Preside Over the meetings of the House)**—स्पीकर सदन की बैठकों की अध्यक्षता करता है और इसकी कार्यवाही चलाता है। वह दोनों सदनों की साझी बैठक की भी अध्यक्षता करता है।

2. **सदन में अनुशासन स्थापित रखना (To Maintain Discipline in the House)**—स्पीकर सदन में अनुशासन स्थापित रखता है। यदि कोई सदस्य सदन की कार्यवाही में विघ्न डालना है या विघ्न डालने का प्रयास करता है तो स्पीकर उसको चेतावनी दे सकता है या उसको सदन से बाहर जाने के लिए कह सकता है। यदि स्पीकर किसी सदस्य को अनुशासन और मर्यादा का उल्लंघन करने का दोषी पाता है तो वह सम्बन्धित सदस्य की सदस्यता को एक निश्चित समय के लिए स्थगित कर सकता है।

3. **सदन की कार्य-सूची निश्चित करना (To Fix Agenda of the House)**—स्पीकर सदन के अन्य सदस्यों, समितियों और प्रधानमन्त्री के परामर्श से सदन के अधिवेशन की कार्य-सूची निश्चित करता है। वह सदन के अलग-अलग प्रकार के कार्यों के लिए समय निर्धारित करता है।

4. **प्रश्न पूछे जाने के बारे में आज्ञा देना (To give Permission to ask Questions)**—सदन का प्रत्येक सदस्य अलग-अलग मामलों के बारे में जानकारी लेने के लिए मन्त्रियों से अलग-अलग प्रकार के प्रश्न पूछ सकता है, परन्तु इस अधिकार का प्रयोग करने से पहले उसको स्पीकर से आज्ञा लेनी पड़ती है। इससे सम्बन्धित स्पीकर अन्तिम रूप में निर्णय लेता है और सदस्यों को सदन में प्रश्न पूछने की आज्ञा देता है।

5. **सदन की कार्यवाही चलाना (To Conduct the Business of the House)**—स्पीकर सदन की कार्यवाही चलाता है। सदस्यों को बिल पेश करने, ध्यान दिलाओ प्रस्ताव और कार्य रोकें प्रस्ताव रखने की आज्ञा देता है। वह सदन में सदस्यों को मान्यता देता है, सदन में बोलने की आज्ञा देता है, सदन में बहस के लिए समय निश्चित करता है। मामलों पर वोट डलवाता है और मतदान के परिणामों की घोषणा करता है। गैर-संसदीय भाषा प्रयोग करने के लिए वह सदस्यों को चेतावनी दे सकता है और ऐसी टिप्पणी को रिकार्ड में से निकालने का आदेश दे सकता है।

6. **नियमों की व्याख्या (Interpretation of Rules)**—सदन का कार्य कार्यवाही के निश्चित नियमों के अनुसार चलाया जाता है। यदि सदन के नियमों के बारे में कोई विवाद हो जाए तो स्पीकर व्याख्या करता है और इन नियमों को लागू करता है। स्पीकर के द्वारा नियमों की, की गई व्याख्या अंतिम होती है और उसको किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

7. **सदन की कार्यवाही स्थगित करना (To Adjourn the House)**—यदि सदन का कोरम पूरा न हो या यदि सदस्यों के अनुचित व्यवहार के कारण सदन का कार्य चला सकना संभव न हो या अन्य किसी उद्देश्य या कुछ गम्भीर मामले पर स्पीकर सदन की बैठक स्थगित कर सकता है।

8. **वित्त बिल के बारे में निर्णय (Decision about a Money Bill)**—यदि किसी बिल के वित्त बिल होने या न होने के बारे में विवाद पैदा हो जाए तो इसके सम्बन्ध में स्पीकर के द्वारा निर्णय लिया जाता है। उसका निर्णय अंतिम होता है और इसको सदन में या उससे बाहर चुनौती नहीं दी जा सकती।

नोट

9. **बिल पेश करने की आज्ञा देना (To give Permission for the introduction of Bills)**—यदि सदन में बिल पेश करना हो तो स्पीकर की आज्ञा लेना आवश्यक होती है। स्पीकर की आज्ञा से ही कोई सदस्य या एक मन्त्री सदन में बिल पेश कर सकता है।

10. **निर्णायक वोट डालना (To Exercise a Casting Vote)**—स्पीकर सदन की बहस और विचार-विमर्श में भाग नहीं लेता। वह बिलों पर वोट डालते समय भी वोट नहीं डालता, परन्तु यदि किसी बिल पर मत बराबर हो जाए तो वह अपनी निर्णायक वोट डाल सकता है।

11. **सदन के सदस्यों के विशेष अधिकारों की रक्षा (Protection of the Privileges of the Members of the House)**—सदन के सदस्यों के कुछ विशेष अधिकार हैं जिनकी रक्षा स्पीकर के द्वारा की जाती है। स्पीकर के द्वारा सदस्यों के अधिकारों से सम्बन्धित सभी झगड़ों के मामले विशेष अधिकारों के बारे समिति को भेजे जाते हैं। इस समिति के सुझाव या इच्छा के अनुसार स्पीकर इनसे सम्बन्धित निर्णय लेता है। इस प्रकार स्पीकर सदस्यों के विशेष अधिकारों का रखवाला होता है। वह विश्वसनीय बनाता है कि सदस्यों के द्वारा मन्त्रियों के द्वारा मन्त्रियों को पूछे गए प्रश्नों के उत्तर ठीक और समय पर मिलें।

12. **राष्ट्रपति और संसद के बीच सम्पर्क सूत्र (Link between the President and the Parliament)**—लोक सभा के सदस्य स्पीकर के माध्यम से ही राष्ट्रपति तक पहुँच कर सकते हैं। इस प्रकार स्पीकर राष्ट्रपति और संसद के बीच सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करता है।

13. **दर्शक गैलरी पर नियन्त्रण (Control Over Visitors' Gallery)**—स्पीकर दर्शकों की गैलरी पर नियन्त्रण रखता है। वह दर्शकों को सदन की गैलरी में बैठने की आज्ञा दे सकता है और अनुचित व्यवहार या शोर-शराबे के कारण उनको गैलरी से बाहर जाने का आदेश दे सकता है।

14. **सदन की समितियों से सम्बन्धित भूमिका (Role regarding the Committees of the House)**—सदन के कार्य का पर्याप्त भाग सदन की समितियों द्वारा किया जाता है। स्पीकर इन समितियों के गठन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह कुछ महत्वपूर्ण समितियों जैसे कारोबार परामर्शदाता समिति (Business Advisory Committee), नियम समिति आदि का अध्यक्ष भी होता है।

15. **प्रशासकीय कार्य (Administrative Functions)**—स्पीकर के बहुत-से प्रशासनिक उत्तरदायित्व होते हैं। लोक सभा के सचिवालय पर उसका अंतिम रूप में नियन्त्रण होता है। वह सचिवालय के कर्मचारी नियुक्त करता है, उनकी सेवा के नियम निश्चित करता है और उनके कार्य की निगरानी करता है। सदन की कार्यवाही के रिकार्ड से सम्बन्धित संभाल का उत्तरदायित्व स्पीकर का होता है।

टास्क: लोकसभा के अध्यक्ष को प्राप्त शक्तियों पर अपने मत प्रस्तुत कीजिए।

स्पीकर की स्थिति (Position of the Speaker)

स्पीकर की शक्तियों और कार्यों का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्पीकर की सम्मानजनक स्थिति है। स्पीकर का यह प्रमुख उत्तरदायित्व है कि वह सदन की कार्यवाही इस ढंग से चलाए ताकि लोक सभा में कार्य नियमित ढंग से हो सके। वह सदन के एक प्रतिनिधि और नेता के रूप में कार्य करता है। वह इसके निष्पक्ष अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है। स्पीकर इस ऊँचे पद पर निर्वाचित हो जाने के पश्चात् अपने दल की सदस्यता से त्याग-पत्र तो नहीं देता, परन्तु वह अपनी शक्तियों का प्रयोग निरपेक्षता से करता है। सदन में वह न ही बहुसंख्य और न ही विरोधी पक्ष के व्यक्ति के रूप में व्यवहार करता है। वह सदन के व्यक्ति के रूप में व्यवहार करता है जो सदन की मान-मर्यादा स्थापित रखने के लिए वचनबद्ध होता है।

लोक सभा के पहले स्पीकर जी.पी. मावलंकर ने एक बार कहा था, “चाहे मैं कांग्रेस का सदस्य हूँ परन्तु यह मेरा कर्तव्य और प्रयास होगा कि मैं सदन के सभी सदस्यों और वर्गों से न्याय और समानता वाला व्यवहार करूँ।” (Though a Congressman, it would be my duty and effort to deal with all the members and sections of the House with justice and equality.) स्पीकर सदन के सदस्यों के

नोट

विशेष अधिकारों की रक्षा करता है जैसा कि एक परिवार का मुखिया परिवार के अन्य सदस्यों के हितों की देखभाल करता है। एम.वी. पायली के शब्दों में “स्पीकर सदस्यों के व्यक्तिगत सामर्थ्य में या समूह या दल के आधार पर अधिकारों और विशेष अधिकारों का रक्षक और संरक्षक होता है। थोड़े शब्दों में स्पीकर अपनी शक्तियों, कार्यवाही चलाने पर अपने पद के सम्मान के रूप में सदन का प्रतिनिधित्व करता है।” (The Speaker is thus the guardian and custodian of the rights and privileges of the members in their individual capacity or on the group or party basis. The Speaker, in short, is the representative of House itself in its powers, proceedings and dignity.)

सभी स्पीकरों जी.वी. मावलंकर, अन्नाथासयनाम आयंगर, संजीवा रेड्डी, गुरुदयाल सिंह दिल्ली, हुकम सिंह, के.एम. हेगड़े, बी.आर. भगत, बलराम और सोमाथ चैटर्जी जाखड़, रवि रे, श्री शिवराज पाटिल, श्री पी.ए. संगमा, श्री बालयोगी, श्री मनोहर जोशी ने बिना पक्षपात किए निरपेक्षता से कार्य किया है। वर्तमान स्पीकर श्रीमती मीरा कुमार भी अपने पद के कर्तव्य और कार्य निपुणता और वस्तुनिष्ठता से निभा रहे हैं।

लेकिन भारतीय लोक सभा के स्पीकर की राजनीतिक निरपेक्षता केवल सदन के अंदर ही होती है। वह स्पीकर बनने के पश्चात् भी अपनी राजनीतिक पार्टी का सदस्य बना रहता है और अपना कार्यकाल पूर्ण करने के पश्चात् या लोक सभा भंग होने के पश्चात् वह भी चुनाव लड़ता है भारतीय लोक सभा का स्पीकर ब्रिटिश कॉमन सदन के स्पीकर की तरह राजनीति से संन्यास नहीं लेता परन्तु वह सदन की कार्यवाही चलाने के समय एक निष्पक्ष दृष्टिकोण के अनुसार ही कार्य करता है। जी.वी. मावलंकर के द्वारा स्थापित रेखाओं और परम्पराओं के अनुसार ही आज तक लोक सभा के सभी स्पीकरों ने लोक सभा की कार्यवाही चलाने में सदैव निरपेक्षता अपनाए रखी है और इस प्रकार स्पीकर के पद का पूर्ण सम्मान आज भी विद्यमान है।

लोक सभा का स्पीकर अमरीकी प्रतिनिधि सदन के स्पीकर के समान ही राजनीतिवान होता है और न ही बर्तानिया के हाऊस ऑफ कॉमन के स्पीकर के समान राजनीतिक संन्यासी होता है। सदन से बाहर अपने राजनीतिक सम्बन्धों को कायम रखते हुए, यहाँ तक कि सुदृढ़ बनाते हुए भी, भारतीय स्पीकर सदन में निष्पक्ष चयरमैन के रूप में कार्य करता है। वह अपने दल का सदस्य बने रहने के बावजूद दल राजनीति में पड़ने से दूर रहता है। 1967 में श्री संजीवा रेड्डी ने अपने दल से अपने आप को अलग कर लिया और 1969 में गुरुदयाल सिंह दिल्ली ने भी ऐसा ही किया।

“स्थायी निष्पक्ष स्पीकर” के ब्रिटिश मॉडल की अपनी सीमाएँ हैं और पूर्ण रूप से राजनीति में रंगे हुए स्पीकर के अमरीकी मॉडल के पद की भी अपनी सीमाएँ हैं। भारतीय मॉडल मध्य मार्ग है और आज तक इस प्रबन्ध ने पूर्ण रूप से अच्छी प्रकार से कार्य किया है। भारतीय राजनीतिक प्रणाली में स्पीकर के पद को एक उच्च और सम्मानजनक पद के रूप में स्पीकार किया गया है। प्रधानमन्त्री पंडित नेहरू के निम्नलिखित शब्द सदैव इस पद और भारतीय लोक सभा में स्पीकर की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में लोकप्रिय विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं—“स्पीकर सदन (लोक सभा) का प्रतिनिधित्व करता है। वह सदन की शान, सदन की स्वतन्त्रता का प्रतिनिधित्व करता है और क्योंकि सदन एक विशेष ढंग से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए स्पीकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और स्वतन्त्रता का प्रतीक बन जाता है। यह कहना ठीक है कि उसके पद की सम्मानित स्थिति है। एक स्वतन्त्र अस्तित्व और इस पद पर विलक्षण सामर्थ्य और निष्पक्ष व्यक्तित्व वाला व्यक्ति ही विराजमान होना चाहिए।” श्री नेहरू के परामर्श पर चलते हुए लोक सभा के सदस्यों को चाहिए कि वे सदैव स्पीकर का चुनाव करते समय दल की राजनीति से ऊपर उठ कर एक योग्य और अनुभवी सदस्य को ही स्पीकर के रूप में निर्वाचित करें।

6.10 लोक सभा और राज्य सभा में संबंध (Relation between Lok Sabha and Rajya Sabha)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में कहा गया है कि “संघ की एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों, जिनको क्रमवार राज्यों की कौंसिल (राज्य सभा) और लोगों का सदन (लोक सभा) कहा जाएगा, पर आधारित

नोट

होगी।” इसके अनुसार लोक सभा और राज्य सभा संघीय संसद के दो सदन हैं। लोक सभा निम्न सदन और राज्य सभा उपरि सदन है। लोक सभा के सदस्य प्रत्यक्ष रूप में लोगों के द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। इसकी सीटों का विभाजन जनसंख्या के आधार पर होता है। यह राष्ट्र का समुचित रूप में प्रतिनिधित्व करती है और इसके सदस्यों की संख्या 545 है। राज्य सभा भारतीय संघ के राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। इसके सदस्यों की संख्या 250 है जिस में से 238 राज्यों की विधानसभाओं के द्वारा चुने जाते हैं और 12 राष्ट्रपति के द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। राज्यों में राज्य सभा की सीटों का विभाजन संविधान के अनुसार किया जाता है और ऐसा करते समय जनसंख्या के तथ्य को भी ध्यान में रखा गया है।

एक दो-सदनीय संसद सदैव दोनों सदनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों की स्थापना करने की समस्याएँ पैदा करती है। परन्तु भारत के संविधान निर्माताओं ने इस समस्या को समझदारी से निपटाया। उन्होंने राज्य सभा को अमरीका सीनेट के समान न तो अधिक शक्तिशाली बनाया और न ही बर्तानिया के हाऊस ऑफ लार्ड की तरह शक्तिहीन बनाया। उन्होंने मध्यमार्ग अपनाया। उन्होंने राज्य सभा को दूसरा सदन बनाया परन्तु दूसरे दर्जे का सदन नहीं। उन्होंने लोक सभा को शक्तिशाली सदन बनाया परन्तु सर्वशक्तिमान सदन नहीं। लोक सभा और राज्य सभा के बीच सम्बन्ध निश्चित करते समय संविधान निर्माता दो सदनों को सक्रिय भागीदार बनाने के उद्देश्य से प्रेरित हुए। उन्होंने बहुत सूझ-बूझ से लोक सभा और राज्य सभा में शक्तियों और उत्तरदायित्वों का विभाजन किया और लोकसभा को राज्य सभा की तुलना में अधिक शक्तिशाली सदन बनाया।

जब हम संवैधानिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करते हैं तो पता लगता है कि बहुत-से क्षेत्रों में लोक सभा अधिक शक्तिशाली है जबकि कुछ क्षेत्रों में राज्य सभा को निश्चित रूप में विशेष शक्तियाँ प्राप्त हैं। संसद के दोनों सदनों के सम्बन्धों का 3 बड़े शीर्षकों के अधीन विश्लेषण किया जा सकता है:

(क) लोक सभा और राज्य सभा की एक-समान शक्तियाँ।

(ख) राज्य सभा पर लोक सभा की श्रेष्ठता।

(ग) राज्य सभा की लोक सभा पर कुछ विशेष शक्ति।

(क) लोक सभा और राज्य सभा की समान शक्तियाँ (Equal Powers of the Lok Sabha and the Rajya Sabha):

1. **साधारण बिलों के सम्बन्ध में (Regarding Ordinary Bills)**—जहाँ तक साधारण बिलों का सम्बन्ध है दोनों सदनों की शक्तियाँ समान हैं। एक साधारण बिल दोनों सदनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है और इसको दोनों सदनों के द्वारा पास किए बिना पास नहीं समझा जा सकता। यदि दोनों सदनों के बीच किसी बिल के सम्बन्ध में गतिरोध पैदा हो जाता है और यह गतिरोध 6 महीने से अधिक समय स्थापित रहता है तो राष्ट्रपति इसका समाधान करने के लिए दोनों सदनों का साझे अधिवेशन बुलाता है। यदि इस अधिवेशन में बिल बहुमत के द्वारा पास कर दिया जाता है तो यह अन्तिम रूप में पास हो जाता है। साझे अधिवेशन का निर्णय दोनों सदन मानने के लिए पाबंद होते हैं, परन्तु लोक सभा के सदस्यों की अधिक संख्या श्रेष्ठता उनको साझे सदन की बैठक जिसकी अध्यक्षता स्पीकर करता है, कि कार्यवाही पर हावी होने के समर्थ बनाती है। फिर साझे अधिवेशन की अध्यक्षता भी लोक सभा का स्पीकर ही करता है। यह ढंग राज्य सभा की तुलना में लोक सभा के पक्ष में है। इसके अतिरिक्त कानूनी और सैद्धान्तिक रूप में कोई भी बिल संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है, परन्तु वास्तव में लगभग सभी महत्वपूर्ण बिल सदैव लोक सभा में ही पेश किए जाते हैं। ऐसा मुख्य रूप में लोक सभा के अधिक प्रतिनिधि चरित्र के कारण किया जाता है और इस तथ्य के कारण भी कि सरकार के अधिकतर मन्त्री लोक सभा से ही होते हैं। इससे राज्य सभा की तुलना में लोक सभा का महत्त्व अधिक रहता है।

2. **संवैधानिक संशोधन से सम्बन्धित (Regarding Constitutional Amendments)**—संवैधानिक संशोधन के क्षेत्र में दोनों सदनों की शक्तियाँ समान हैं। एक संवैधानिक संशोधन बिल संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है और उसको तब तक पास हुआ नहीं समझा जाता जब तक उसको दोनों सदनों के द्वारा एक समान विशेषताओं के साथ संविधान के अनुच्छेद 368 के द्वारा निर्धारित कार्यवाही के अनुसार नहीं कर लिया जाता।

नोट

संविधान में दोनों सदनों के बीच संवैधानिक संशोधन से सम्बन्धित गतिरोध समाधान करने से सम्बन्धित कोई व्यवस्था नहीं है। शंकर प्रसाद बनाम भारतीय संघ के केस में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि संवैधानिक गतिरोध के समाधान के लिए दोनों सदनों का साझा अधिवेशन बुलाया जा सकता है। परन्तु 6वीं लोक सभा के स्पीकर श्री हेगड़े ने एक बार निर्णय दिया था कि संवैधानिक संशोधन से सम्बन्धित दोनों सदनों की शक्तियाँ एक समान हैं। राज्य सभा किसी भी संशोधन प्रस्ताव को रोक सकती है या लोक सभा को इसमें आवश्यक संशोधन करने के लिए विवश कर सकती है।

3. महाभियोग से सम्बन्धित शक्तियाँ (Regarding Impeachment Powers)—महाभियोग के सम्बन्ध में दोनों सदनों की शक्तियाँ समान हैं। दोनों सदन व्यक्तिगत रूप में राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही आरम्भ कर सकते हैं। एक सदन दो-तिहाई बहुत से दोष लगाता है और दूसरा सदन दोषों की जाँच करता है। यदि जाँच के पश्चात् दूसरा सदन भी दो-तिहाई बहुमत से महाभियोग प्रस्ताव पास कर देता है तो सम्बन्धित अधिकारी को महाभियोगी करार दे दिया जाता है। उप-राष्ट्रपति को हटाने के बारे में प्रस्ताव केवल राज्य सभा में ही रखा जा सकता है। यदि राज्य सभा पास कर देती है तो इसको लोक सभा की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है लोक सभा इससे सम्बन्धित अन्तिम निर्णय लेती है। इस प्रकार महाभियोग से सम्बन्धित लोक सभा की एक समान शक्तियाँ हैं। परन्तु अभी तक ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया।

4. समान निर्वाचन शक्तियाँ (Co-equal Electoral Powers)—दोनों सदनों के पास समान निर्वाचन शक्तियाँ हैं। लोक सभा और राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। दोनों सदनों के सदस्य उप-राष्ट्रपति के चुनाव में भी भाग लेते हैं।

5. संकटकाल की घोषणा को स्वीकृति देने का अधिकार (Power to Approve Emergency Proclamation)—जब कभी भी राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 या 356 या 360 के अधीन संकटकाल घोषित करता है तो इस पर संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति आवश्यक होती है। यह तभी जारी रहती है यदि दोनों सदन इसको स्वीकृति दे देते हैं। इससे सम्बन्धित दोनों सदनों की शक्तियाँ समान हैं। यदि लोक सभा भंग हो और संकटकाल लागू किए जाने की स्वीकृति लेनी हो तो राष्ट्रपति इसको स्वीकृति के लिए राज्य सभा में रखता है। यदि राज्य सभा स्वीकृति दे देती है तो संकटकाल लागू रहता है नहीं तो 30 दिनों बाद समाप्त हो जाता है, परन्तु राज्य सभा के द्वारा स्वीकार करने के पश्चात् नई लोक सभा से भी स्वीकृति देनी आवश्यक होती है। संकटकाल तभी लागू रह सकता है यदि इससे सम्बन्धित 30 दिनों के अंदर नई लोक सभा स्वीकृति दे देती है।

6. रिपोर्टों पर विचार-विमर्श का समान अधिकार (Equal Power to Consider Reports)—अलग-अलग रिपोर्टों पर विचार करने के सम्बन्ध में दोनों सदनों की समान शक्तियाँ हैं। संसद के दोनों सदन संघ लोक सेवा आयोग, कम्पट्रोलर एंड आडीटर जनरल और अनुसूचित जातियों और कबीलों के बारे में आयोग की रिपोर्टों पर विचार करते हैं।

(ख) राज्य सभा पर लोक सभा की श्रेष्ठता (Superiority of the Lok Sabha over the Rajya Sabha)

कुछ क्षेत्रों में राज्य सभा की तुलना में श्रेष्ठता हासिल है। संविधान के अनुसार लोक सभा को अनेक विशेष शक्तियाँ देते समय अनेकों क्षेत्रों में राज्य सभा की दूसरे दर्जे की भूमिका भी दी गई है। इस तथ्य के बारे में निम्नलिखित विशेषताओं से पता लगता है:

1. वित्तीय मामलों में लोक सभा की श्रेष्ठता (Superiority of the Lok Sabha in Financial Matters)—वित्तीय क्षेत्र में राज्य सभा की तुलना में लोक सभा अधिक शक्तिशाली है। वित्तीय बिल केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं। बिल के वित्त बिल होने या न होने से सम्बन्धित पैदा हुए झगड़े के मामले में लोक सभा के स्पीकर का निर्माण अंतिम होता है। प्रत्येक वित्त बिल केवल लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है और इसके द्वारा पास होने के उपरान्त ही यह राज्य सभा में जाता है। राज्य सभा वित्त बिल को केवल 14 दिन तक रोक सकती है। राज्य सभा में बिल भेजने के 14 दिनों बाद बिल को संसद के दोनों सदनों के द्वारा पास समझा जाता

नोट

है। यदि राज्य सभा 14 दिनों के अन्दर वित्त बिल लोक सभा को कुछ संशोधन सहित वापस भेज देती है तो लोक सभा इस बिल को राज्य सभा के संशोधन को स्वीकार किए बिना पास कर सकती है। इस प्रकार वित्त बिल से सम्बन्धित राज्य सभा के पास केवल 14 दिन रोक कर रखने का अधिकार है। वित्तीय कानून-निर्माण के सम्बन्ध में लोक सभा के पास सर्वोच्च अधिकार है।

2. कार्यपालिका पर नियन्त्रण करने का अधिकार लोक सभा का है न कि राज्य सभा का (The Lok Sabha and not the Rajya Sabha has the Power to Control the Executive)—कार्यपालिका शक्तियों के क्षेत्र में भी राज्य सभा का स्थान कम महत्त्व वाला है। संविधान के अनुच्छेद 75 (3) के अनुसार मंत्रि-परिषद् लोक सभा के समक्ष उत्तरदायी होती है। लोक सभा अविश्वास प्रस्ताव पास करके मंत्रि-परिषद् को पद से हटा सकती है। प्रधानमंत्री लोक सभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है चाहे अब प्रधानमंत्री राज्य सभा का सदस्य भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त मंत्रि-परिषद् के अधिकतर मंत्री भी लोक सभा से ही लिए जाते हैं। प्रशासन से सम्बन्धित जानकारी लेने के लिए प्रश्न पूछने के बारे में राज्य सभा के सदस्यों का मंत्रियों पर बहुत सीमित नियंत्रण होता है। सरकार की नीतियों को आलोचना करने के सम्बन्ध में भी उनके सीमित अधिकार हैं। वे किसी भी स्थिति में कैबिनेट के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास नहीं कर सकते।

3. महत्त्वपूर्ण बिल प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में (Regarding the introduction of Important Bills)—यह प्रायः ही कहा जाता है कि अधिक महत्त्व वाले बिल पहले लोक सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। अधिकतर मन्त्री लोक सभा के सदस्य होते हैं। महत्त्वपूर्ण नीतियों के बारे में चर्चा भी लोक सभा में ही आरम्भ होती है। लोक सभा प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित, लोकतान्त्रिक, लोकप्रिय और पूर्ण रूप से प्रतिनिधि और राष्ट्रीय सदन है जिसको अप्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित अर्ध-स्थायी और कम शक्तिशाली राज्य सभा की तुलना में लोगों और मन्त्रि-परिषद् का व्यापक विश्वास प्राप्त होता है। अधिक महत्त्व वाले बिल पहले सामान्य रूप में लोक सभा में ही पेश किए जाते हैं।

(ग) राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ (Special Powers of the Rajya Sabha)

1. किसी राज्य-सूची के विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित करने की शक्ति (Regarding declaration of a State Subject as a Subject of National Importance)—राज्य सभा के सदस्य दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास करके (अनुच्छेद 249 अधीन) राज्य-सूची के किसी भी विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में संघीय संसद को एक वर्ष के लिए राज्य-सूची के उस विषय पर कानून-निर्माण का अधिकार मिल जाता है। राज्य सभा ऐसा प्रस्ताव बार-बार पास कर सकती है और संघीय संसद को राज्य-सूची के विषय के बारे में कानून बनाने के योग्य बनाती है। ऐसा अधिकार केवल राज्य सभा के पास है, लोक सभा के पास नहीं।

2. नई अखिल भारतीय सेवाओं का गठन करने से सम्बन्धित (Regarding the Creation of New All India Services): राज्य सभा के सदस्य अनुच्छेद 312 के अधीन दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास करके किसी भी सार्वजनिक सेवा को अखिल भारतीय सेवा करार दे सकते हैं। इस प्रकार यह एक नई अखिल भारतीय सेवा गठित करने के लिए प्रस्ताव पास कर सकती है या किसी विद्यमान अखिल भारतीय सेवा को समाप्त कर सकती है। इस प्रकार संविधान के अनुसार ऐसा अधिकार केवल राज्य सभा का है और इस क्षेत्र में लोक सभा को कोई ऐसा अधिकार नहीं दिया गया।

3. लोक सभा की अनुपस्थिति में संकटकाल स्थिति को स्वीकृति देना (Regarding the Approval of Emergency in the absence of Lok Sabha): यदि लोक सभा भंग हुई हो या किसी कारण इसका अधिवेशन न हो सकता हो तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति संकटकाल की घोषणा कर दे तो इससे सम्बन्धित स्वीकृति केवल राज्य सभा से लेनी होती है। यद्यपि नई लोक सभा के गठन के पश्चात् इससे सम्बन्धित उससे स्वीकृति लेनी भी आवश्यक होती है।

लोक सभा और राज्य सभा की स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis of Positions of the Lok Sabha and Rajya Sabha)

नोट

संसद के दोनों सदनों की शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह तथ्य सामने आता है कि राज्य सभा की तुलना में निस्संदेह लोक सभा अधिक शक्तिशाली है परन्तु इसी समय यह मान लेना गलत होगा कि राज्य सभा दूसरे दर्जे का या प्रतिक्रियावादी सदन है। इसको भी कुछ क्षेत्रों में विशेष और लोक सभा के समान अधिकार प्राप्त हैं जिनसे इसकी स्थिति काफी सीमा तक शक्तिशाली बन जाती है। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इस सम्बन्ध में एक बार कहा था, “हमारे संविधान में राज्य सभा और लोक सभा के कार्यों को स्पष्ट रूप में निश्चित किया गया है। दोनों सदनों में से किसी को भी उपरि सदन या निम्न सदन कहना उचित नहीं है। प्रत्येक सदन को संवैधानिक सीमाओं के भीतर अपनी कार्यवाही करने का पूर्ण अधिकार है। कुछ विशेष वित्तीय मामलों, जिस पर केवल लोक सभा का अधिकार है, को छोड़ कर संविधान के अनुसार दोनों सदन समान हैं।” संवैधानिक रूप में दोनों सदनों में कोई अन्तर नहीं है और संविधान अपने आप में अंतिम सत्ता है। संविधान दोनों सदनों से एक समान व्यवहार करता है।

फिर भी इस वास्तविकता को ध्यान में रखना आवश्यक है कि व्यावहारिक रूप में राज्य सभा की स्थिति लोक सभा के बाद आती है। राज्य सभा एक दूसरा सदन है। परन्तु इसके बावजूद यह दूसरे दर्जे या ब्रिटिश हाऊस ऑफ लार्ड्स के समान शक्तिहीन सदन नहीं है। भारतीय संवैधानिक प्रणाली में राज्य सभा का सम्मानजनक स्थान है और वह उचित ढंग से अपनी निर्धारित शक्तियों का प्रयोग करने के समर्थ है। चाहे राज्य सभा को राज्यों की कौंसिल कहा जाता है परन्तु इसका गठन वास्तव में एक संघात्मक सदन के समान नहीं किया गया है। फिर भी यह सदन भारतीय संघ की इकाइयों के हितों का प्रतिनिधित्व करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्न में सत्य/असत्य बताएँ:

16. लोक सभा के स्पीकर का देश के सर्वोच्च व्यक्तियों में 17वाँ स्थान है।
17. 15वीं लोक सभा की स्पीकर श्रीमती मीरा कुमार हैं।
18. लोक सभा के अध्यक्ष को महाभियोग लगाकर हटाया जा सकता है।
19. राज्य सभा के सदस्य दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव करके (अनुच्छेद 249 के अधीन) राज्य-सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित कर सकते।
20. संविधान के अनुसार लोक सभा को अनेक विशेष शक्तियाँ देते समय अनेक क्षेत्रों में राज्य सभा की दूसरे दर्जे की भूमिका दी गई है।

सारांश (Summary)

- भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में संघ की और संघीय सरकार में संसद की स्थिति बहुत शक्तिशाली और प्रभावशाली है।
- धन बिल केवल लोक सभा में ही पेश किए जा सकते हैं और इस सम्बन्ध में राज्य सभा किसी भी धन बिल को पास होने में केवल 14 दिन की देर ही कर सकती है।
- राज्य सभा अर्थात् संसद के उपरि सदन में अधिक-से-अधिक 250 सदस्य होते हैं जिनमें से 238 राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं और शेष 12 सदस्यों की नामजदगी राष्ट्रपति के द्वारा उन व्यक्तियों में से की जाती है जिन्होंने कला, साहित्य, विज्ञान या समाज सेवाओं के क्षेत्रों में विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त की हों।
- राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव राज्य विधान सभाओं के सदस्यों के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व एकहरी हस्तांतरित वोट प्रणाली के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में किया जाता है।

नोट

- राष्ट्रपति राज्य सभा में 12 सदस्य मनोनीत करता है। यह वास्तव में लोकतन्त्रीय और संघीय भावना के विरुद्ध है। यह संभावना सदैव स्थापित रहती है कि मनोनीत किए यह 12 सदस्य अपना पूर्ण समर्थन राज्यों को देने की अपेक्षा केन्द्र को देंगे।
- यदि राज्य सभा किसी वित्तीय बिल को पास करने में असमर्थ रहता है या राज्य सभा में वित्तीय बिल भेजे जाने की तिथि से 14 दिन व्यतीत हो जाएं तो यह मान लिया जाता है कि इसको संसद के दोनों सदनों ने पास कर दिया है और इसको स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है।
- एक साधारण बिल दोनों सदनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है और इसको दोनों सदनों के द्वारा पास किए बिना पास नहीं समझा जा सकता। यदि दोनों सदनों के बीच किसी बिल के सम्बन्ध में गतिरोध पैदा हो जाता है और यह गतिरोध 6 महीने से अधिक समय स्थापित रहता है तो राष्ट्रपति इसका समाधान करने के लिए दोनों सदनों का साझा अधिवेशन बुलाता है।
- संसद के दोनों सदनों की शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह तथ्य सामने आता है कि राज्य सभा की तुलना में निस्संदेह लोक सभा अधिक शक्तिशाली है परन्तु इसी समय यह मान लेना गलत होगा कि राज्य सभा दूसरे दर्जे का या प्रतिक्रियावादी सदन है।

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. संघीय संसद से क्या अभिप्राय है?
2. संघीय संसद की विशेषताएँ बताइएँ।
3. राज्य सभा की शक्तियों और कार्यों का उल्लेख कीजिए।
4. लोक सभा के सदस्यों का चुनाव कैसे होता है?
5. लोक सभा की शक्तियों और कार्यों का उल्लेख कीजिए।
6. लोक सभा के स्पीकर की स्थिति का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

- | | |
|------------------|----------------------|
| 1. राष्ट्रपति | 2. सर्वोच्च न्यायालय |
| 3. धन विधेयक, 14 | 4. (a) |
| 5. (c) | 6. (a) |
| 7. (b) | 8. (c) |
| 9. (b) | 10. निम्न |
| 11. 545 | 12. वयस्क मताधिकार |
| 13. 25 वर्ष | 14. सत्य |
| 15. असत्य | 16. असत्य |
| 17. सत्य | 18. असत्य |
| 19. सत्य | 20. सत्य |

संदर्भ पुस्तकें (Further Reading)

1. भारतीय राजनीतिक प्रणाली—यू.आर. घई।
2. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था—डॉ. एम. पी. राय।

अध्याय 4: संघीय संसद की समितियाँ (Committees of Union Parliament)

संरचना (Structure)

- 4.1 उद्देश्य (Objectives)
- 4.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 4.3 संघीय संसद की समितियाँ (Committees of the Union Parliament)
- 4.4 संसदीय समितियों का संगठन (Organisation of the Parliamentary Committees)
- 4.5 लोक सभा की विभिन्न समितियों के कार्य (Functions of Various Committees of the Lok Sabha)
- 4.6 वैधानिक समितियों के कार्य (Functions of the Legislative Committees)
- 4.7 वित्तीय समितियाँ (Financial Committees)
- 4.8 संयुक्त समितियाँ (Joint Committees)
- 4.9 कानून बनाने की प्रक्रिया (Procedure of Law-making)
- 4.10 बजट पास करने की प्रक्रिया (Procedure of Passing the Budget)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

4.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- संघीय संसद की समितियों के बारे में बताने में।
- लोक सभा की विभिन्न समितियों के नाम बताने में।
- वित्तीय एवं संयुक्त समितियों की व्याख्या करने में।
- बजट पास करने की प्रक्रिया बताने में।

4.2 प्रस्तावना (Introduction)

जैसा कि एक संसद अपनी समिति प्रणाली से जानी जाती है। एक आधुनिक राज्य एक पुलिस राज्य नहीं है। यह एक कल्याणकारी राज्य है और गुणों और कार्यों में इस परिवर्तन के कारण संसद पर कार्यों का बहुत विस्तार हुआ है और परिणामस्वरूप इस पर कार्य-बोझ बहुत अधिक हो गया है। संसद के सदस्य समय की कमी के कारण कार्यों के निपटारे के लिए प्रत्येक बिल पर विचार-विमर्श नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में प्रत्येक

बिल का आकार बहुत बढ़ गया है क्योंकि इसने सामूहिक और गतिशील औद्योगिक समाज की मांगों को पूर्ण करना होता है। अपनी समस्याओं के समाधान के लिए एक आधुनिक संसद समितियों की सहायता लेती है। वास्तव में संसद को प्रत्येक सदन अनेकों समितियाँ बनाता है जो कानून बनाने और अन्य मामलों की प्रक्रिया में इसकी सहायता करती हैं। सामूहिक रूप में समितियाँ संसद की समिति प्रणाली बनाती हैं। समिति प्रणाली भारतीय संघीय संसद के कुशल कार्य-व्यवहार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है और यह वैधानिक ढांचे का एक अटूट भाग बन चुकी है। थामस रीड के शब्दों में, “समितियाँ विधानपालिका की आख, कान और हाथ हैं और कई बार यह विधानपालिका के मस्तिष्क का भी कार्य करती हैं।” समितियों के महत्व को मान्यता देते हुए अनेकों विद्वान इन समितियों को छोटे विधान मण्डल कहने की सीमा तक चले जाते हैं। मोरिस जोनज़ का यह विचार उचित है कि “विधान मण्डल अपनी समितियों से जाना जाता है।” (Legislative is known by the committees it keeps.)

4.3 संघीय संसद की समितियाँ (Committees of the Union Parliament)

भारत के संविधान के किसी भी अनुच्छेद में समिति प्रणाली के गठन और कार्यों से सम्बन्धित ब्यौरा नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 118 में सामान्य तौर पर कहा गया है कि संसद के दोनों सदन वैधानिक कार्य सुविधा से चलाने के लिए अपनी समितियों का गठन कर सकते हैं। निष्कर्ष के रूप में दोनों सदनों की समितियों का गठन संसद के द्वारा बनाए गए कार्यवाही के नियमों के आधार पर किया गया है। भारतीय संसद की समितियों को 5 निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

1. **साधारण समितियाँ (General Committees)**—इस श्रेणी में ऐसी समितियों को शामिल किया गया है। जिनका सम्बन्ध सदन का कार्य चलाने से है। इसमें (1) नियम समिति, (2) कारोबार परामर्शदाता समिति, (3) विशेष अधिकारों की समिति (4) सदन की बैठकों में से सदस्यों की अनुपस्थिति के बारे में समिति (5) सरकारी वायदों की समिति (6) पटीशनों के बारे में समिति, और (7) सामान्य उद्देश्यीय समिति शामिल हैं।

2. **वैधानिक समितियाँ (Legislative Committees)**—इस श्रेणी में ऐसी समितियाँ शामिल हैं जिनका सम्बन्ध कानून-निर्माण की प्रक्रिया से है। इनमें यह समितियाँ शामिल हैं: (1) निजी सदस्यों के बिलों और प्रस्तावों के बारे में समिति, (2) उप-विधान समिति या प्रदत्त-व्यवस्थापन की समिति (3) प्रवर-समिति, और (4) विशेष सार्वजनिक बिल के बारे में विशेष समिति।

3. **वित्तीय समितियाँ (Financial Committees)**—इस श्रेणी में वे समितियाँ शामिल हैं जो वित्तीय मामलों से निपटती हैं। इनमें शामिल हैं: (1) अनुमान समिति (2) लोक-लेखा समिति (3) सार्वजनिक उद्यमों की समिति।

4. **संयुक्त समितियाँ (Joint Committees)**—इस श्रेणी में वे समितियाँ शामिल हैं जो साझी क्रिया या दोनों सदनों से सम्बन्धित कोई कार्य करने के लिए संसद के दोनों सदनों के द्वारा साझे रूप में स्थापित की जाती हैं। इनमें शामिल हैं: (1) संसद के सदस्यों के वेतन और भत्तों के बारे में संयुक्त समिति (2) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के कल्याण के बारे में समिति, और (3) लाभकारी पदों के बारे में साझी समिति।

5. **फुटकर समितियाँ (Miscellaneous Committees)**: उपर्युक्त 4 श्रेणियों की समितियों के अतिरिक्त संसद की कुछ और भी समितियाँ हैं। उदाहरणस्वरूप: (1) घर समिति, और (2) लाइब्रेरी समिति।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त-स्थान भरें (Fill in the Blanks)

1. प्रवर समिति समिति है।
2. लोक-लेखा समिति समिति है।
3. कारोबार परामर्श समिति एक समिति है।

4.4 संसदीय समितियों का संगठन (Organisation of the Parliamentary Committees)

नोट

अलग-अलग समितियों के संगठन पर विचार-विमर्श के लिए दोनों सदनों में से किसी भी एक सदन की समितियों के मामले पर विचार करते हैं। आइए लोक सभा की समितियों के मामले पर विचार करें—

1. स्पीकर के द्वारा नामज़दगी (Nomination by the Speaker): लोक सभा की समितियों का गठन सदन के सदस्यों में से स्पीकर के द्वारा किया जाता है। अलग-अलग समितियों के सदस्य मनोनीत करते समय स्पीकर इस बात को विश्वसनीय बनाता है कि अलग-अलग राजनीतिक दलों के सदस्यों की समितियों में उपयुक्त प्रतिनिधित्व मिले। स्पीकर स्वयं कुछ समितियों का सदस्य तथा चेयरमैन होता है। नियम यह है कि पद के आधार पर स्पीकर ऐसी उस प्रत्येक समिति का अध्यक्ष होता है जिसका कि वह सदस्य होता है। विभिन्न समितियों के प्रधानों की नियुक्ति स्पीकर के द्वारा समितियों के सदस्यों में से की जाती है। यदि उप-स्पीकर किसी समिति का सदस्य होता है तो उसको उस समिति का चेयरमैन बनाया जाता है। संयुक्त समितियों के सदस्यों की नियुक्ति दोनों सदनों के अध्यक्षों के द्वारा की जाती है।

2. चुनाव सदन के द्वारा पास प्रस्ताव के आधार पर (Election on the Basis of Resolution Passed by the House): वित्तीय समितियों का चुनाव सदन के द्वारा किया जाता है। वित्तीय समितियों के सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की एकल हस्तांतरण वोट प्रणाली के आधार पर किया जाता है।

3. समितियों का आकार (Size of Committees): प्रत्येक समिति के सदस्यों की संख्या से सम्बन्धित कोई निश्चित नियम नहीं है। अपने आप में सभी समितियों का आकार एक ही जैसा नहीं है। सामान्य रूप में एक समिति के सदस्यों की संख्या 15 से 30 के बीच रखी जाती है। अधिकतर एक समिति के 15 सदस्य होते हैं। प्रवर समितियों के सदस्यों की संख्या 20 से 30 के बीच होती है। अनुमान समिति में 30 और लोक लेखा समिति के सदस्यों की संख्या 22 है।

4. समितियों की कार्य-प्रणाली (Working of Committees): संसद की प्रत्येक समिति का निर्धारित कार्य होता है। इनमें से कुछ कार्य केवल संसद के अधिवेशन के दौरान होते हैं जबकि कुछ समितियाँ तब भी कार्य करती रहती हैं जब संसद का अधिवेशन नहीं चल रहा होता। एक समिति किसी भी समय अपनी बैठक कर सकती है। समितियों के अधिकतर निर्णय सहमत के द्वारा या समिति के चेयरमैन के द्वारा लिए जाते हैं। सामान्य रूप में समितियों की बैठकें संसद भवन के अंदर ही होती हैं परन्तु स्पीकर की पूर्व स्वीकृति लेकर यह बैठकें संसद भवन के बाहर भी हो सकती हैं।

समितियों की बैठक के लिए आवश्यक कोरम कुल सदस्यों का एक-तिहाई होता है। समितियों में अधिकतर निर्णय साधारण बहुमत के द्वारा लिए जाते हैं। किसी निर्णय के विरोध और पक्ष में सदस्यों की संख्या बराबर हो जाने की स्थिति में समिति का चेयरमैन अपने निर्णायक वोट का प्रयोग करता है। समितियों को सरकार के रिकार्ड की जाँच-पड़ताल करने का अधिकार होता है और वह सरकारी विभागों से आवश्यक जानकारी लेने का अधिकार रखती हैं। समितियाँ अपनी रिपोर्टें तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की सहायता ले सकती हैं। परन्तु विशेषज्ञ सामान्य तौर पर परामर्श ही दे सकते हैं। उनको समितियों में वोट डालने का अधिकार नहीं होता। समितियाँ किसी विशेष महत्त्व या हित वाले विशेष विषय के विस्तारित अध्ययन के लिए आगे अन्य उप-समितियों का गठन कर सकती हैं। समितियों को निर्धारित तिथि पर अपन कार्य पूर्ण करके सदन को अपनी रिपोर्टें देनी पड़ती हैं। स्पीकर वह समय निश्चित करता है जिसके अंदर समितियों को अपनी रिपोर्ट देनी पड़ती है। समितियों को उन सभी मामलों पर रिपोर्टें तैयार करनी पड़ती हैं और देनी पड़ती हैं जो उनको भेजे जाते हैं। वह रिपोर्ट न देने जैसा कदम नहीं उठा सकती।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

4. सामान्य रूप से लोक सभा की किसी भी समिति में कितने सदस्य हो सकते हैं—
 (a) 15 से 30 (b) 20 से 40
 (c) 10 से 20 (d) उपरोक्त में कोई नहीं।
5. लोक लेखा समिति के सदस्यों की संख्या कितनी है?
 (a) 20 (b) 22
 (c) 24 (d) 18
6. समितियों की बैठक के लिए आवश्यक कोरम कुल सदस्यों का कितना होता है?
 (a) $\frac{1}{3}$ (b) $\frac{2}{3}$
 (c) न (a) और न (b) (d) उपरोक्त में कोई नहीं

नोट

4.5 लोक सभा की विभिन्न समितियों के कार्य (Functions of Various Committees of the Lok Sabha)

साधारण समितियाँ वे समितियाँ होती हैं, जो सदन के कार्य-व्यवहार से सम्बन्धित होती हैं—

1. **नियम समिति (Rules Committee):** नियम समिति 15 सदस्यों पर आधारित होती है जिनको स्पीकर मनोनीत करता है। स्पीकर स्वयं इस समिति का चेयरमैन होता है यह समिति सदन की कार्यवाही के बारे में नियमों पर चर्चा करती है और प्रस्तावित परिवर्तन और संशोधन से सम्बन्धित अपने निर्णय देती है। 1954 से पूर्व स्पीकर स्वयं इस शक्ति का प्रयोग करता था और ऐसा करते समय नियमों के बारे में समिति की सिफारिशों के द्वारा उसका नेतृत्व किया जाता था। अब समिति के सुझाव सदन में आगे रखे जाते हैं और इनको तब ही लागू किया जाता है जब इनके बारे में सदन अपनी सहमति दे दे।

2. **कारोबार परामर्शदाता समिति (Business Advisory Committee):** यह एक स्थायी समिति है जिसको लोक सभा में कार्य चलाने में सहायता करने के लिए बनाया जाता है। यह 15 सदस्यों पर आधारित होती है जिनकी नियुक्ति स्पीकर के द्वारा की जाती है। स्पीकर स्वयं इस समिति का चेयरमैन होता है। स्पीकर इस समिति के सदस्यों की नियुक्ति सदन के नेता, सदन में विरोधी पक्ष के नेता और अन्य विरोधी दलों के नेताओं के परामर्श से करता है। इस समिति का मुख्य कार्य उन सभी बिलों, मुद्दों और प्रस्तावों से सम्बन्धित समय और कार्यक्रम सूची निश्चित करना होता है जो सदन में पेश किए जाने होते हैं। यह समिति निश्चित करती है कि कब बिल पेश किया जाना है और इस पर चर्चा के लिए कितना समय दिया जाना है। सामान्य शब्दों में यह समिति सदन के द्वारा किए जाने वाले कार्यों से सम्बन्धित समय सूची तैयार करती है।

3. **विशेष अधिकारों की समिति (Committee on Privileges):** संसद के सदस्यों को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। यदि इन अधिकारों में से किसी का किसी व्यक्ति के द्वारा उल्लंघन किया जाता है तो मामला विशेषाधिकारों की समिति को सौंपा जाता है। इस समिति को सदन के सदस्यों में से एक वर्ष के लिए मनोनीत किया जाता है। इसके 15 सदस्य होते हैं। सदन में प्रतिनिधित्व प्राप्त सभी दलों के सदस्यों को इस समिति में आवश्यक प्रतिनिधित्व दिया जाता है। सामान्य रूप में सदन का नेता और कानून मंत्री इस समिति के सदस्य होते हैं। यदि डिप्टी स्पीकर इस समिति का सदस्य हो तो वह इसका अध्यक्ष भी होता है नहीं तो अध्यक्ष की नियुक्ति स्पीकर के द्वारा की जाती है।

नोट

4. सदन में से सदस्यों की अनुपस्थिति के बारे में समिति (Committee on the Absence of Members from the House): संविधान के अनुसार कोई सदस्य सदन की स्वीकृति के बिना सदन की बैठकों से 60 दिनों से अधिक समय अनुपस्थित रहता है तो उसकी सीट खाली घोषित की जा सकती है। सदस्यों की सदन से अनुपस्थिति से सम्बन्धित सभी मामलों की जाँच-पड़ताल करने, अनुपस्थिति के कारणों की जाँच करने और सदन से अवकाश के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए सदन की एक समिति बनाई जाती है। इस समिति को सदस्यों की अनुपस्थिति के बारे में समिति कहा जाता है। यह समिति 15 सदस्यों पर आधारित होती है। इनकी नियुक्ति स्पीकर के द्वारा एक वर्ष के लिए की जाती है।

5. सरकारी वायदों के बारे में समिति (Committee on Governmental Assurances): प्रायः मंत्री सदन में जवाब देने या सदन को संबोधन करते समय कुछ विशेष वायदे कर देते हैं या सदन को कुछ विश्वास दिला देते हैं। सदन यह जानना चाहता है कि क्या मंत्रियों के द्वारा किए गए वायदे ठीक तरह पूर्ण किए गए हैं या नहीं? यह कार्य सरकारी वायदों के बारे में समिति के द्वारा किया जाता है। इस समिति का कार्य यह भी देखना होता है कि क्या सरकार के द्वारा किए गए वायदे निर्धारित समय में पूर्ण किए गए हैं या नहीं। यदि किसी मंत्री के द्वारा कोई वायदा पूरा नहीं किया जाता तो समिति इसको सदन के ध्यान में लाती है। इस समिति के भी 15 से अधिक सदस्य नहीं होते जिनकी नियुक्ति स्पीकर के द्वारा एक वर्ष के लिए की जाती है। कोई भी मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं बन सकता, यदि इस समिति का कोई सदस्य बाद में मंत्री बन जाता है तो उसको इस समिति की सदस्यता छोड़नी पड़ती है।

6. पिटीशनों के बारे में समिति (Committee on Petitions): इस समिति का कार्य यह देखना होता है कि क्या लोगों के द्वारा लोक सभा को प्रस्तुत की गई पिटीशनों से ठीक ढंग से निपटा गया है। यह सभी पिटीशनों की छान-बीन करती है और अपनी सिफारिशों सहित या सिफारिशों के बिना सम्बन्धित विभागों को भेजती है। यह समिति भी 15 सदस्यों पर आधारित होती है जिनकी नियुक्ति स्पीकर के द्वारा अलग-अलग राजनीतिक दलों से सम्बन्धित सदस्यों में से की जाती है। इस समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष का होता है।

7. सामान्य उद्देश्य समिति (General Purpose Committee): इस समिति का अस्तित्व 1954 से है। यह समिति किसी विशेष से नहीं निपटती। इस समिति के 20 सदस्य होते हैं। स्पीकर, डिप्टी स्पीकर, चेयरमैन के पैनल के सदस्य और सदन में अलग-अलग मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के नेता इसके सदस्य होते हैं। शेष सदस्यों की नियुक्ति स्पीकर के द्वारा की जाती है। वह स्वयं इस समिति का चेयरमैन भी होता है। यह सदन से सम्बन्धित किसी मुद्दे पर विचार-विमर्श करती है।

4.6 वैधानिक समितियों के कार्य (Functions of the Legislative Committees)

1. प्रवर समितियाँ (Select Committees): ये समितियाँ बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इन समितियों का गठन अलग-अलग सार्वजनिक सरकारी बिलों पर विचार-विमर्श करने के लिए किया जाता है जिनको कानून में बदलने के लिए सदन में प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु यह समितियाँ स्थायी नहीं होतीं। निश्चित कार्य पूरा करने के पश्चात् प्रत्येक प्रवर समिति भंग हो जाती है। जब लोक सभा निर्णय लेती है कि कोई विशेष बिल किसी विशेष समिति को भेजा जाएगा तो स्पीकर ऐसी एक समिति मनोनीत करता है।

क्या आप जानते हैं: प्रत्येक प्रवर समिति के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं होती। आम तौर पर इस प्रवर समिति के 10 से 30 सदस्य होते हैं। जो सदस्य कोई बिल प्रस्तुत करता है वह सदैव बिल पर विचार-विमर्श के लिए मनोनीत प्रवर समिति का सदस्य होता है।

नोट

समिति के चेयरमैन और अन्य सदस्यों की नियुक्ति स्पीकर के द्वारा अलग-अलग राजनीतिक दलों से सम्बन्धित सदस्यों में की जाती है। एक बिल की जाँच में प्रवर समिति जब आवश्यक समझे, विशेषज्ञों की सहायता ले सकती है। वह व्यक्ति भी, जो इस समिति के सदस्य नहीं होते, समिति के समक्ष प्रस्तुत हो सकते हैं और अपने सुझाव दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने सुझाव लिखित रूप में भी इस समिति के पास भेज सकते हैं। प्रायः किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण सार्वजनिक बिल की समीक्षा के लिए संसद के दोनों सदनों के द्वारा एक साझी प्रवर समिति बना ली जाती है। लोक सभा और राज्य सभा दोनों सदन 2:1 के अनुपात में एक संयुक्त प्रवर समिति के सदस्य मनोनीत करते हैं।

2. निजी सदस्य बिलों और प्रस्तावों के बारे में समिति (Committee on Private Members' Bills and Resolutions): 1953 से पहले निजी सदस्य बिलों, जो सदन के साधारण सदस्यों अर्थात् ऐसे सदस्य जो मंत्री नहीं थे, के द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, के भाग्य का फैसला एक लाटरी के द्वारा किया जाता था। केवल उन बिलों को विचार-विमर्श के लिए लिया जाता था जो लाटरी में विजयी रहते थे। इस परम्परा के परिणाम के रूप में अनेकों महत्वपूर्ण बिल और प्रस्ताव सदन में पेश नहीं किए जा सकते थे और कुछ कम महत्वपूर्ण बिलों को पास होने का अवसर मिल जाता था। इस समस्या के समाधान के लिए 1953 में सभी गैर-सरकारी अर्थात् निजी सदस्य बिलों पर विचार के लिए एक समिति का गठन किया गया। यह समिति अब सभी प्राइवेट सदस्य बिलों के भाग्य का निर्णय करती है। ऐसा करते समय यह समिति आवश्यकता और बिल के महत्व को ध्यान में रखती है। यह समिति बिलों को दो मुख्य श्रेणियों में बाँटती है—(क) वे बिल जो उच्च महत्व वाले होते हैं (ख) वे बिल जो कम महत्व वाले होते हैं। यह समिति सदन के सदस्यों के द्वारा प्रस्तुत किए गए बिलों की छान-बीन करती है और सदन को सिफारिश करती है कि किन बिलों पर विचार किया जाएगा। इस समिति के 15 सदस्य होते हैं और सामान्य रूप में लोक सभा का डिप्टी स्पीकर इसका चेयरमैन होता है। इस समिति के अन्य सदस्य स्पीकर के द्वारा एक वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते हैं।

3. प्रदत्त व्यवस्थापन के बारे में समिति (Committee on Subordinate or Direct Legislation): समय और प्रशिक्षित ज्ञान की कमी के कारण एक आधुनिक संसद सामान्य रूप में बिल को मसौदे के रूप में पास करती है और कार्यपालिका को अधिकार सौंप देती है कि वह नियम बनाकर इसे पूर्ण कर ले। कई बार विधानपालिका प्रत्यक्ष रूप में कानून बनाने से सम्बन्धित अपनी कुछ शक्तियाँ कार्यपालिका को सौंप देती है। इस प्रणाली के अधीन कार्यपालिका संसद के द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर कानून बनाती है। कानून बनाने की इस प्रणाली को प्रदत्त अथवा अधीनस्थ व्यवस्थापन प्रणाली कहा जाता है। इस प्रणाली अधीन सौंपी गई शक्तियों का कार्यपालिका के द्वारा संभावित गलत प्रयोग का खतरा बना रहता है। इसलिए संसद सदैव प्रदत्त व्यवस्थापन अधीन निर्मित कानूनों पर नियंत्रण रखना चाहती है। इस उद्देश्य के लिए वह एक समिति प्रदत्त व्यवस्थापन की समिति नियुक्त करती है और इसको उत्तरदायित्व सौंपती है कि वह कार्यपालिका के द्वारा बनाए गए कानूनों की छान-बीन करे। भारतीय संसद के द्वारा भी ऐसा किया जा चुका है। इसकी ऐसी समिति को प्रदत्त व्यवस्थापन समिति कहा जाता है। इस समिति के 15 सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति स्पीकर के द्वारा एक वर्ष के लिए की जाती है। यह समिति कार्यपालिका के द्वारा प्रदत्त व्यवस्थापन के अधीन बने कानूनों और नियमों की छान-बीन करती है।

4.7 वित्तीय समितियाँ (Financial Committees)

1. अनुमान समिति (Estimates Committee):

अनुमान समिति के चेयरमैन की नियुक्ति स्पीकर के द्वारा निर्वाचित सदस्यों में से की जाती है। जब डिप्टी स्पीकर इस समिति का सदस्य चुना जाता है तो वह समिति का अध्यक्ष बन जाता है। समिति का अध्यक्ष वह सभी कार्य करता है जो अन्य संसदीय समितियों के अध्यक्ष करते हैं। परन्तु इसके साथ ही उसको कुछ विशेष कार्य भी

करने पड़ते हैं। उदाहरण के रूप में वह सरकार की वित्तीय गतिविधियों की जाँच की प्रकृति और क्षेत्र के बारे में निर्णय करता है।

नोट

नोट: भारत में अनुमान समिति 1950 में स्थापित की गई थी। यह ब्रिटिश प्रणाली के अनुरूप बनाई गई थी। इस समिति के 30 सदस्य होते हैं जिनका चुनाव लोक सभा के सदस्यों के द्वारा अपने में से किया जाता है।

वह आनुपातिक प्रतिनिधित्व और इकहरी परिवर्तनीय वोट प्रणाली के द्वारा चुने जाते हैं। इस ढंग से अलग-अलग राजनीतिक दलों में सीटों का आनुपातिक विभाजन विश्वसनीय बनाया जाता है।

अनुमान समिति के कार्य (Functions of the Estimate Committee): लोक सभा के नियम नंबर 310 के अनुसार समिति का मुख्य कार्य सरकार के द्वारा लगाए गए उन अनुमानों का अध्ययन करना होता है जो अनुमान बजट के द्वारा सदन के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। इस समिति को सौंपे गए 4 विशेष कार्य इस प्रकार हैं—

(क) नीति के अनुकूल संगठन, कुशलता या प्रशासन के सम्बन्ध में वित्तीय सुधारों के बारे में रिपोर्ट देनी ताकि अनुमान ठीक तरह पेश किए जा सकें;

(ख) प्रशासन में कुशलता और बचत लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों के बारे में सुझाव देना;

(ग) यह परीक्षण करना कि क्या धन अनुमानों के बारे में नीति के अनुसार ही विवरण दिया गया है या नहीं; और

(घ) उस विधि के बारे में सुझाव देना जिस के अनुसार संसद के समक्ष रखे जाने चाहिए।

इस प्रकार अनुमान समिति को न केवल वार्षिक सरकारी अनुमानों की जाँच करने का अधिकार है बल्कि वह प्रशासन में कुशलता और सरलता लाने से सम्बन्धित वैकल्पिक नीतियों और कदमों के बारे में भी सुझाव देती है।

अपने अस्तित्व में आने से लेकर अब तक अनुमानों की समिति ने अनेकों सरकारी विभागों और एजेंसियों से सम्बन्धित सैकड़ों रिपोर्टें दी हैं। अपने कार्य को प्रभावशाली ढंग से करने के लिए समिति अपने आप को समूह या उप-समितियों में विभाजित कर लेती है और इनमें से प्रत्येक समूह को दिए गए अनुमानों की छानबीन के लिए अनेकों विभाग सौंपे जाते हैं। इनका कार्य बजट प्रस्तुत करने के पश्चात् आरंभ होता है परन्तु यह बजट पास होने पर समाप्त नहीं होता। इसका कार्य वर्ष भर जारी रहता है। यह अनुमानों की छानबीन के उद्देश्य के लिए अपनी इच्छा के अनुसार किसी विभाग या एजेंसी का चुनाव करती है। यह पिछले वर्ष के अनुमानों की तुलना वास्तव में किए गए व्ययों और नए वर्ष के वित्तीय अनुमानों से भी करती है। यह सरकार पर विधानपालिका के नियंत्रण के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करती है।

2. लोक लेखा समिति (Public Account Committee): यह वास्तव में अनुमान समिति की जुड़वाँ बहन ही है। यदि अनुमान समिति (Estimates Committees) का सम्बन्ध अनुमानों की छानबीन करना है तो लोक लेखा समिति का सम्बन्ध अलग-अलग सरकारी विभागों के द्वारा किए गए खर्च के ढंग और परिणामों से होता है। यह 22 सदस्यों पर आधारित होती है जिनमें 7 राज्य सभा और 15 लोक सभा के सदस्य होते हैं। सदस्यों का चुनाव प्रत्येक सदन के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के द्वारा एक वर्ष के लिए किया जाता है। कोई मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं बन सकता।

समिति का मुख्य कार्य समस्त वित्तीय लेन-देन से सम्बन्धित सरकार के खातों का परीक्षण और उनकी पुष्टि करना होता है। यह विनियोग खातों (Appropriation Account) और भारत के कम्पट्रोलर और आडीटर जनरल की रिपोर्टों की छान-बीन करती है। समिति यह निर्धारित करती है कि—

1. क्या खातों में दर्ज राशि जिस प्रकार की गई है, वह कानूनी रूप में उपलब्ध थी और उस सेवा का उद्देश्य के लिए उचित थी जिस के लिए यह वसूल या खर्च की गई थी?
2. क्या खर्च की आज्ञा उस सत्ता ने दी है जो इसको चलाती है?

3. क्या पुनर्विनियोग (Pre-Appropriation) व्यवस्था समर्थ अधिकारी के द्वारा इससे सम्बन्धित बनाई गई व्यवस्थाओं के अनुसार है?

इस समिति का यह भी कर्तव्य है कि वह सार्वजनिक निगमों, निर्माण इकाइयों, स्वायत्त और अर्ध-स्वायत्त संस्थाओं की बैलेंस शीटों और लाभ और हानि खातों की जाँच करने के साथ-साथ उनके लेखे-जोखे जिसमें आया और गया खर्च दर्ज होता है, की छान-बीन भी करे।

नोट

यदि वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर किया गया खर्च इस उद्देश्य के लिए संसद के द्वारा स्वीकार राशि से अधिक किया गया हो तो समिति प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की रिपोर्ट हवाले सहित छानबीन करती है, जिस के कारण अधिक खर्च करना पड़ा था। यह मामले पर इस दृष्टिकोण से पुनर्विचार करती है कि क्या सम्बन्धित विभाग ने खर्च करते समय आवश्यक उचित और न्यायपूर्ण ध्यान दिया है या नहीं। यह समिति त्रुटियों को सामने ला सकती है और इनके सम्बन्ध में उचित कार्यवाही के लिए संसद को सिफारिश कर सकती है।

अनुमान समिति के विपरीत लोक लेखा समिति के पास एक प्रशिक्षित एजेंसी, भारत के कम्प्ट्रोलर और आडीटर जनरल की सेवाएँ होती हैं जो सभी खातों की जाँच करती है और आडिट करती है। समिति के पास यह अधिकार है कि वह विभागों के द्वारा किए गए वित्तीय लेन-देन से सम्बन्धित जानकारी के लिए सम्बन्धित विभाग के अधिकारियों से सूचनाएँ प्राप्त कर सकती है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि लोक लेखा समिति संसद की सबसे अधिक शक्तिशाली और सक्रिय समिति है। इसकी कार्यवाहियाँ अर्ध-अदालती ढंग से चलाई जाती हैं। यह समिति दलीय हितों से ऊपर उठ कर एक न्यायाधीशों की समिति के समान कार्य करती है। इसके द्वारा की गई सिफारिशों और निर्णयों का सरकार के द्वारा भविष्य में किए जाने वाले व्ययों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। कुशल और बढ़िया वित्तीय प्रबंधन के लिए सरकारी मशीनरी को पूर्ण रूप से चौकस करने में यह समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह समिति प्रशासनिक विभागों पर प्रभावशाली और निरन्तर नियंत्रण रखने में संसद की सहायता करती है।

कई बार यह दोष लगाया जाता है कि लोक लेखा समिति का कार्य गढ़े मुँदे उखाड़ने जैसा होता है। यह उन वित्तीय अनियमितताओं को नंगा करती है जो पहले कहीं की गई हों इस प्रकार इसके लिए जिम्मेवार प्रबंधक के विरुद्ध प्रभावशाली कार्यवाही करना यदि असंभव नहीं है तो कठिन अवश्य होता है। इस कमजोरी के होते हुए भी हम इंकार नहीं कर सकते कि लोक लेखा समिति संसद का वह शक्तिशाली उपकरण है जो राष्ट्र के धन पर नियंत्रण करता है। इसकी वास्तविक शक्ति मुख्य रूप में इससे सम्बन्धित इसकी सामर्थ्य पर निर्भर है कि यह अपने ध्यान में आई किसी सरकारी विभाग के द्वारा की गई किसी अनियमितता से सम्बन्धित आवश्यक कार्यवाही किए जाने के लिए किस प्रकार सार्वजनिक निर्णय लिए जाने का वातावरण तैयार करती है।

3. सार्वजनिक उपक्रमों के बारे में समिति (The Committee on Public Undertakings): यह समिति 1964 में बनाई गई थी और इसके 15 सदस्य होते हैं। 10 सदस्य लोक सभा से और 5 सदस्य राज्य सभा से होते हैं। यह समिति निम्नलिखित कार्यवाही करती है—

- (क) सार्वजनिक उपक्रमों की रिपोर्टों और उनके खातों का परीक्षण।
- (ख) सार्वजनिक उपक्रमों के बारे में यदि भारत के कम्प्ट्रोलर और आडीटर जनरल की कोई भी रिपोर्ट हो, तो उसके सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल और सिफारिश करना।
- (ग) सार्वजनिक इकाइयों की स्वायत्तता और कुशलता के संदर्भ में कि क्या उनका कार्य-व्यवहार बढ़िया व्यावसायिक सिद्धांतों और दूर दृष्टि वाले व्यावसायिक व्यवहार के अनुसार था अथवा नहीं। यह सार्वजनिक उपक्रमों से सम्बन्धित ऐसे कार्यों की छानबीन भी करती है जो सामान्य रूप में लोक-लेखा समिति और अनुमान समिति करती हैं। यह स्पीकर के द्वारा सौंपे गए सभी अन्य कार्य करती है।

टास्क: लोक लेखा समिति से आप क्या समझते हैं?

4.8 संयुक्त समितियाँ (Joint Committees)

नोट

1. **सदस्यों की वेतन और भत्तों की संयुक्त समिति (Joint Committee on Salaries and Allowances of Members):** इस समिति की स्थापना 1954 में की गई थी। यह एक साझी समिति है जिसमें संसद के दोनों सदनों के सदस्य होते हैं और यह सदस्यों के वेतन, यात्रा भत्तों, प्रतिदिन के भत्तों, निवास, डाक्टरी सहायता और डाक सुविधाओं से निपटती है। इस समिति के 15 सदस्य होते हैं जिनमें से 10 लोक सभा में से और शेष 5 राज्य सभा में से होते हैं। लोक सभा से सदस्य स्पीकर के द्वारा मनोनीत किए जाते हैं और राज्य सभा से सदस्य राज्य सभा के अध्यक्ष के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। संसदीय मामलों का मंत्री इस समिति का अध्यक्ष होता है।

2. **लाभ कमाने वाले पदों के बारे में संयुक्त समिति (Joint Committee on Offices of Profit):** यह एक स्थायी समिति है जिसके 15 सदस्य होते हैं जिनमें से 10 सदस्य लोक सभा में से लिए जाते हैं और शेष पाँच राज्य सभा में से लिए जाते हैं। इस समिति की स्थापना 1959 में की गई थी। यह समिति नियमित रूप में संसदीय एक्ट, 1959 की व्यवस्थाओं की छानबीन करती रहती है और इससे सम्बन्धित संशोधन के बारे में सुझाव देती है।

3. **अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के कल्याण से सम्बन्धित समिति (Joint Committee on the Welfare of Scheduled Castes and Scheduled Tribes):** यह समिति भी संयुक्त समिति है जिसमें संसद के दोनों सदनों के सदस्य होते हैं। यह समिति अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के बारे में आयोग की रिपोर्टों की छानबीन करती है और अनुसूचित जातियों और कबीलों से सम्बन्धित लोगों की भलाई से सम्बन्धित सरकार के द्वारा समय-समय पर उठाए गए कदमों के बारे में रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों को देती है।

संघीय संसद की समिति प्रणाली के कार्यों में परिवर्तन (Changes in the Working of Committee System of the Union Parliament): 1 अप्रैल, 1993 से वैधानिक कार्य अधिकतर प्रभावशाली ढंग से करने के लिए अनेकों स्थायी समितियाँ बनाई गई हैं। 17 स्थायी समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। प्रत्येक समिति के 45 सदस्य हैं जिनमें से 30 लोक सभा और 15 सदस्य राज्य सभा में से होते हैं। 11 समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति लोक सभा के स्पीकर के द्वारा की जाती है। शेष 6 समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति राज्य सभा के अध्यक्ष के द्वारा की जाती है। प्रत्येक समिति का कार्यकाल 1 वर्ष का होता है। यह समितियाँ अलग-अलग मंत्रालयों की ग्रांटों की माँगों पर विचार करती हैं। यह अलग-अलग मंत्रालयों और उनकी वार्षिक रिपोर्टों और लंबी अवधि वाली राष्ट्रीय नीतियों से सम्बन्धित कानून बनाने के लिए उठाए जाने वाले कदमों पर भी विचार करती हैं। इन स्थायी समितियों के पास यह अधिकार है कि वे अलग-अलग मुद्दों और बिलों से सम्बन्धित विशेषज्ञों और अन्य प्रसिद्ध लोगों से परामर्श ले सकती हैं। संसद इन समितियों की रिपोर्टों के आधार पर उठाए जाने वाले कदमों से सम्बन्धित विचार करती है।

इस प्रकार संघीय संसद पूर्ण रूप से संगठित, सक्रिय और कुशल समिति प्रणाली की सहायता से अपना कार्य चलाती है।

निम्नलिखित में सत्य/असत्य बताइए

7. कारोबार परामर्श समिति एक स्थायी है, जिसको लोक सभा में कार्य चलाने में सहायता के लिए बनाया जाता है।
8. 1953 से पहले निजी बिलों, जो सदन के साधारण सदस्यों अर्थात् ऐसे सदस्य जो मंत्री नहीं थे, के द्वारा प्रस्तुत किये जाते थे, के भाग्य का फैसला एक लाटरी के द्वारा किया जाता था।
9. लोक सभा और राज्य सभा दोनों सदन 2:1 के अनुपात में संयुक्त प्रवर समिति के सदस्य मनोनीत करते हैं।
10. लोक सभा समिति जिसमें 22 सदस्य होते हैं, उनमें से 7 लोक सभा और 15 राज्य सभा से होते हैं।
11. संसद सदस्यों के वेतन और भत्तों की संयुक्त समिति की स्थापना 1954 में की गई थी।

4.9 कानून बनाने की प्रक्रिया (Procedure of Law-making)

नोट

समस्त विश्व में कानून-निर्माण को प्रत्येक आधुनिक संसद के मुख्य कार्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। कानून-निर्माण के लिए संसद एक विशेष ढंग अपनाती है। संसद में कानून बनाने के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले दस्तावेजों को बिल या “ड्राफ्ट एक्ट्स” कहा जाता है। एक बिल संसद में प्रस्तुत किया जाता है और अलग-अलग चरणों में चर्चा के पश्चात् संसद या तो बिल पास कर देती है और ऐसा होने पर वह इसको राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के लिए भेज देती है और इसके पश्चात् यह बिल कानून बन जाता है, या फिर संसद बिल को रद्द कर देती है। संघीय संसद संघीय सूची और साझी सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार रखती है और इसका अवशेष विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार है विशेष स्थिति, जैसा कि संविधान में लिखा गया है, संसद यह अधिकार राज्य की सूची वाले विषयों के बारे में प्रयोग कर सकती है। परन्तु प्रत्येक मामले में कानून बनाने के लिए इसको विशेष प्रक्रिया अपनानी पड़ती है।

केन्द्रीय संसद के द्वारा अलग-अलग प्रकार के बिलों को पास करने की प्रक्रिया के बारे में भारतीय संविधान के अनुच्छेदों 107-111 के अधीन चर्चा होती है। इसके बारे में विचार करने से पहले आइए अलग-अलग प्रकार के बिलों के बारे में चर्चा कर लें जो संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं—

बिलों के प्रकार (Kinds of Bills): बिलों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—

- 1. सार्वजनिक बिल (Public Bill):** सार्वजनिक बिल की विशेषता सर्वव्यापकता होती है और यह सभी या देश की बहुसंख्या से सम्बन्धित होते हैं।
- 2. निजी बिल (Private Bill):** निजी बिलों का सम्बन्ध समाज के विशेष वर्गों या कुछ निजी कम्पनियों से होता है।
- 3. सरकारी बिल (Government Bill):** मंत्रि-परिषद् के किसी सदस्य के द्वारा पेश किए गए बिल को सरकारी बिल कहा जाता है।
- 4. निजी सदस्य बिल (Private Member Bill):** एक बिल जो कि संसद के किसी ऐसे सदस्य के द्वारा प्रस्तुत किया गया हो जोकि मंत्री न हो, को निजी सदस्य बिल कहा जाता है।
- 5. वित्तीय बिल (Money Bill):** एक वित्तीय बिल का सम्बन्ध करों को लगाने, घटाने या समाप्त करने या खर्च या आय से होता है।

संघीय संसद के द्वारा कानून-निर्माण की प्रक्रिया की सामान्य विशेषताएँ

(General Features of Law-making by the Union Parliament)

1. संघीय संसद संघीय सूची और साझी सूची में दिए गए विषयों पर कानून बना सकती है। अवशेष विषयों पर कानून बनाने का अधिकार भी संसद के पास है। विशेष स्थिति में जैसा कि संविधान में वर्णित है, यह राज्य सूची वाले विषयों पर भी कानून बना सकती है।
2. संघीय संसद प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद नहीं है—
 - (क) संघीय संसद कानून बनाने में केवल उन शक्तियों का प्रयोग करती है जो संविधान के अनुसार इसको मिली हुई है।
 - (ख) राष्ट्रपति के द्वारा हस्ताक्षर करने के पश्चात् ही संसद के द्वारा पास किए गए बिल कानून बनते हैं।
 - (ग) संसद के द्वारा बनाए गए कानूनों पर भारत की सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति लागू होती है, जो किसी भी कानून को रद्द कर सकती है यदि वह उसको गैर-संवैधानिक पाकर संविधान विरोधी घोषित कर दे।
 - (घ) केन्द्रीय संसद एक संघीय विधानपालिका है और भारतीय संविधान के द्वारा कानून बनाने की शक्तियाँ एक ओर संघीय संसद और दूसरी ओर राज्यों की अनेकों विधानपालिकाओं में विभाजित हुई हैं।

नोट

3. कानून बनने से पहले एक बिल को अनेकों चरणों से गुजरना पड़ता है।
4. संसद के द्वारा अंतिम रूप में पास करने से पहले प्रत्येक बिल का एक योग्य समिति के द्वारा अध्ययन किया जाता है।
5. साधारण कानून-निर्माण के सम्बन्ध में लोक सभा और राज्य सभा के पास कानून बनाने के एक समान अधिकार हैं परन्तु किसी बिल पर दोनों सदनों के बीच पैदा हुए गतिरोध के समाधान के लिए साझे अधिवेशन बुलाने का ढंग ऐसे किसी भी बिल के बारे में राज्य सभा की तुलना में लोक सभा को अधिक शक्तिशाली बना देता है।
6. वित्तीय कानून-निर्माण के सम्बन्ध में लोक सभा अधिक शक्तिशाली स्थिति में है। इस वित्तीय बिल केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है और ऐसा केवल एक मंत्री प्रस्तुत कर सकता है। यदि किसी बिल के वित्तीय बिल होने या न होने के बारे में कोई विवाद हो तो इसका निर्णय लोक सभा का स्पीकर करता है और उसका निर्णय अन्तिम होता है। एक वित्तीय बिल लोक सभा के द्वारा पास किया जाता है तो भी इसको राज्य सभा में भेजा जाता है, परन्तु वह इस क्षेत्र में सीमित शक्ति ही रखता है। राज्य सभा 14 दिनों के भीतर बिल को पास कर सकती है या अपने संशोधन प्रस्ताव सहित इसको लोक सभा को वापस भेज सकती है। दूसरी स्थिति में लोक सभा की यह इच्छा पर निर्भर होता है कि वह प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार कर ले या रद्द कर दे। यदि राज्य सभा कोई निर्णय लेने में असफल रहती है और 14 दिनों का समय समाप्त हो जाता है तो वित्तीय बिल को इसके द्वारा पास समझ लिया जाता है और यह कानून बन जाता है। इस प्रकार राज्य सभा वित्तीय कानून-निर्माण क्षेत्र में केवल देरी करने की भूमिका ही निभाती है।
7. लोक सभा में किसी बिल के पास न होने को मंत्रि-परिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव के रूप में लिया जाता है परन्तु यदि कोई सरकारी बिल राज्य सभा में पास नहीं होता तो इसका मंत्रि-परिषद् पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
8. ब्रिटेन के समान जहाँ कानून बनाने का कार्य राज्य सहित संसद (King-in-Parliament) के द्वारा किया जाता है, भारत में भी कानूनी रूप में कानून-निर्माण का कार्य राष्ट्रपति सहित संसद के द्वारा किया जाता है।

एक साधारण बिल को पास करने का ढंग (Procedure of Passing an Ordinary Bill)

एक साधारण बिल को कानून बनने से पहले निम्नलिखित चरणों में से गुजरना पड़ता है—

1. प्रथम चरण: पेश करना और बिल की प्रथम पढ़त (First Stage: Introduction and First Reading of the Bill): एक साधारण बिल संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु यह देखा गया है कि लगभग 90% बिल पहले लोक सभा में ही प्रस्तुत किए जाते हैं। एक निजी सदस्य को बिल प्रस्तुत करने से एक महीना पहले स्पीकर को नोटिस देना पड़ता है। इस नोटिस के साथ बिल की कापी, बिल के उद्देश्यों का ब्यौरा और संभावी खर्च का ब्यौरा देना पड़ता है। फिर बिल पेश करने वाले से विचार-विमर्श के उपरांत बिल प्रस्तुत करने की तिथि निश्चित की जाती है। निश्चित तिथि पर सदस्य अपनी सीट पर खड़ा होकर सदन से बिल प्रस्तुत करने की आज्ञा मांगता है। फिर सम्बन्धित व्यक्ति बिल का शीर्षक पढ़ता है और बिल की कापी सदन में रखता है। यदि सदस्य बिल को अपना समर्थन दे देते हैं तो यह समझ लिया जाता है कि सदन के द्वारा पहले चरण पर बिल पास कर दिया गया है। यदि समर्थन नहीं मिलता तो यह बिल इसी चरण पर ही समाप्त हो जाता है। इस चरण पर बिल को स्वीकार करने के पश्चात् स्पीकर बिल को प्रकाशित किए जाने की आज्ञा देता है।

जहाँ तक सरकारी बिलों का सम्बन्ध है वे मंत्रि-परिषद् के एक सदस्य के द्वारा सदन में रखे जाते हैं। इस सम्बन्ध में सदन से आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं होती। बिल का गजट में छपा जाना ही काफी होता है। इसकी बिल की पहली पढ़त समझा जाता है। यदि आवश्यकता हो तो मंत्री मौके पर आज्ञा ले सकता है और सदन में बिल प्रस्तुत कर सकता है।

2. दूसरा चरण (Second Stage): सामान्य रूप से बिल की छपाई और इसको सदन के सदस्यों में बाँटने के लिए प्रथम और दूसरे चरणों के बीच काफी समय दिया जाता है। इससे सदस्यों को बिल का अध्ययन करने और इसके बारे में विचार तैयार करने के लिए समय मिल जाता है। निश्चित दिन पर सम्बन्धित व्यक्ति अपनी सीट पर खड़ा होकर आज्ञा मांगता है कि बिल की दूसरी पढ़त की जाएगी। लोक सभा का अध्यक्ष द्वारा यह आज्ञा मिलने के पश्चात् बिल प्रस्तुत करने वाला निम्नलिखित में से कोई प्रस्ताव पेश करता है—

- (i) कि बिल पर तुरंत विचार किया जाए।
- (ii) कि बिल एक समिति के पास भेज दिया जाए।
- (iii) कि बिल दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति को भेजा जाए।
- (iv) कि बिल जनमत जानने के लिए लोगों में बाँट दिया जाए।

उपर्युक्त प्रस्तावों में से किसी को भी स्वीकार करना बिल के महत्त्व और आवश्यकता पर निर्भर करता है और फिर बिल पर चर्चा आरंभ होती है। बिल प्रस्तुत करने वाला एक पायलट के समान व्यवहार करता है और वह सदन को बिल के उद्देश्यों और सिद्धांतों से अवगत करवाता है। विरोधी पक्ष के सदस्यों को बिल के बारे में अपने विचार प्रकट करने के लिए पूर्ण अवसर दिया जाता है। यदि इस चरण पर बिल पास हो जाता है तो इसको सदन की एक समिति को भेज दिया जाता है। यदि बिल पास नहीं होता तो इसको समाप्त हुआ समझ लिया जाता है। यदि सरकारी बिल इस चरण पर पास न हो तो इसको सरकार की पराजय समझा जाता है। यदि लोगों के विचार जानने के लिए बिल को लोगों में बाँटने का निर्णय लिया जाता है तो यह शर्त पूर्ण करने के उपरांत बिल एक समिति को भेज दिया जाता है। यदि सदन बिल पर तुरंत विचार करने का निर्णय लेता है तो बिल पर उसी समय चर्चा आरंभ हो जाती है।

3. समिति चरण (Committee Stage): बिल पेश करने वाले व्यक्ति को उस समिति में मनोनीत कर दिया जाता है जिसको इस चरण पर बिल भेजा जाता है। इस समिति में विरोधी पक्ष के सदस्य भी नियुक्त किए जाते हैं। सामान्य रूप में ऐसे सदस्य नियुक्त किए जाते हैं जिनका बिल के विषय में जानकारी होती है। ऐसी समिति में सदस्यों की संख्या 25 से 30 तक होती है। समिति में बिल की सभी धाराओं पर विस्तृत बहस होती है यदि समिति उचित समझे तो वह उन सभी व्यक्तियों को बुला सकती है जिनको बिल के द्वारा प्रभावित किए जाने की संभावना हो तो ऐसे व्यक्ति को बुला सकती है जो समिति का सदस्य न हो परन्तु वह बिल से सम्बन्धित एक विशेष ज्ञान रखता हो। समिति की कार्यवाही गुप्त होती है इसके लिए सभी दलों के सदस्य बिल के बारे में अपने विचार प्रकट करने में स्वतंत्र होते हैं। सरकार के सदस्य विरोधी पक्ष के सदस्यों के विचारों से सहमति प्रकट करने में हिचकिचाहट नहीं दिखाते। इस चरण पर बिल का गहन और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया जाता है। बिल की प्रत्येक धारा पर विचार होता है और चर्चा होती है। समिति निम्नलिखित में से कोई भी एक सिफारिश कर सकती है—

- (i) कि बिल प्रस्तावों के अनुसार संशोधित किया जाए।
- (ii) कि बिल पास नहीं होना चाहिए।
- (iii) कि बिल बिना किसी संशोधन के पास किया जाए।

समिति बिल पर रिपोर्ट तैयार करती है और इसको सदन को भेज देती है। समिति को प्रत्येक अवस्था में, चाहे इसकी रिपोर्ट कुछ भी हो, वास्तविक बिल को सदन को वापस करना पड़ता है क्योंकि बिल का समिति द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। अमरीका में स्थिति इसके विपरीत है। वहाँ समितियाँ बहुत शक्तिशाली होती हैं और वे सम्बन्धित बिल को सदन को इसके संबंध में रिपोर्ट दिए बिना समाप्त कर सकती हैं। भारत में समिति को बिल के बारे में सम्बन्धित सदन को रिपोर्ट देनी ही पड़ती है चाहे वह रिपोर्ट बिल के पक्ष में हो या विरुद्ध।

4. रिपोर्ट चरण (Report Stage): जब बिल समिति की रिपोर्ट सहित सदन में विचार-विमर्श के लिए आता है तो इस चरण को रिपोर्ट चरण कहा जाता है। समिति की रिपोर्ट के आधार पर बिल पर विचार करने के लिए निर्धारित तिथि पर बिल पेश करने वाला सदन को समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए प्रार्थना करता है। बिल की प्रतिमाँ समिति द्वारा सुझाए गए संशोधन और सिफारिशों सहित सदस्यों में बाँटी जाती हैं। बिल के सभी

नोट

पहलुओं पर चर्चा होती है। प्रस्तावित संशोधनों पर भी विचार-विमर्श होता है, बहस होती है और प्रत्येक धारा पर वोट पड़ती है या धाराओं पर सामूहिक रूप में भी मतदान कर लिया जाता है। इस ढंग से सम्पूर्ण बिल पर विचार-विमर्श होता है और बिल पास किया जाता है। सदन के अध्यक्ष के द्वारा विचार-विमर्श के लिए समय-सीमा निश्चित की जा सकती है। यह बिल का निर्णायक चरण होता है। यदि बिल इस चरण को पार कर जाता है तो इसको सदन के द्वारा पूर्ण रूप से पास ही समझा जाता है क्योंकि तीसरे और अंतिम चरण में कोई भी बिल रद्द नहीं होता।

5. तीसरी पढ़त (Third Reading): बिल की तीसरी पढ़त सदन में बिल को पास किए जाने का अंतिम चरण होता है। रिपोर्ट चरण के पश्चात् बिल की तीसरी पढ़त के लिए तिथि निश्चित की जाती है। इस चरण पर बिल की प्रत्येक धारा पर विचार नहीं होता। बिल को समुचित रूप में पढ़ा जाता है और पास कर दिया जाता है। केवल बिल की भाषा से सम्बन्धित संशोधनों पर विचार-विमर्श होता है। तर्क-वितर्क बिल के समर्थन या रद्द करने तक सीमित रहता है। बिल का यह चरण औपचारिक होता है और इस चरण पर अधिकतर बिल रद्द नहीं होते। बिल पर वोट डाले जाते हैं और यदि बहुसंख्या इसका समर्थन कर देती है तो इसको दूसरे सदन के पास भेज दिया जाता है।

6. बिल दूसरे सदन में (Bill in the other House): दूसरे सदन में बिल को उन सभी चरणों में से गुजरना पड़ता है जिनमें से वह प्रथम सदन में से गुजरा था। दूसरा सदन ऐसा कर सकता है—

- (a) बिल को बिना कोई संशोधन के पास कर सकता है।
- (b) बिल को संशोधन सहित प्रथम सदन को वापस कर देता है।
- (c) बिल को रद्द कर सकता है।

यदि दूसरा सदन बिल पर 6 महीने तक विचार नहीं करता तो बिल को दूसरे सदन के द्वारा रद्द किया गया समझ लिया जाता है। यदि दूसरा सदन बिल को रद्द कर देता है या बिल को सिफारिशों सहित वापस कर देता है तो दोनों सदनों में टकराव पैदा हो जाता है और 6 महीने का समय गुजरने पर राष्ट्रपति टकराव समाप्त करने के लिए दोनों सदनों की साझी बैठक आमंत्रित कर सकता है। यदि साझी बैठक में बिल को बहुमत के द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो इसको राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है परन्तु यदि बिल को बहुमत का समर्थन नहीं मिलता तो यह समाप्त हो जाता है। साझी बैठक में लोक सभा अपनी अधिक सदस्यता होने के कारण राज्य सभा की तुलना में श्रेष्ठ स्थिति में रहती है।

7. राष्ट्रपति की स्वीकृति (Approval of President): संसद के द्वारा बिल पास करने के पश्चात् राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यदि राष्ट्रपति बिल को अपनी सहमति दे देता है तो यह कानून बन जाता है और कानून की पुस्तक में दर्ज हो जाता है। राष्ट्रपति बिना सिफारिश या सिफारिशों सहित पुनर्विचार के लिए संसद को कोई बिल वापस भी भेज सकता है। परन्तु संसद राष्ट्रपति की सिफारिशें मानने के लिए पाबंद नहीं होती। यदि संसद दूसरी बार सिफारिशों सहित या सिफारिश के बिना बिल पास कर देती है तो राष्ट्रपति दूसरी बार अपनी स्वीकृति देने से इंकार नहीं कर सकता और बिल कानून बन जाता है, परन्तु राष्ट्रपति किसी बिल को पुनः विचार के लिए वापस भेजने का महत्वपूर्ण कदम बहुत कम ही उठाता है। प्रत्येक बिल जो संसद के द्वारा पास किया होता है, को बहुमत और मंत्रि-परिषद् का समर्थन प्राप्त होता है। राष्ट्रपति सदैव मंत्रि-परिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करता है और मंत्रि-परिषद् के द्वारा संसद की इच्छा के विरुद्ध परामर्श दिए जाने की आशा नहीं की जा सकती। इस प्रकार मंत्रि-परिषद् सदैव राष्ट्रपति को परामर्श देती है कि वह ऐसे बिल, जिसको संसद के द्वारा उपयुक्त ढंग से पास किया गया है, पर हस्ताक्षर कर दे।

इस प्रकार साधारण बिल का कानून बनने के लिए संसद के दोनों सदनों में अनेकों चरणों में से गुजरना पड़ता है। यह राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के पश्चात् ही कानून बनता है।

टास्क: एक साधारण बिल को पास करने की प्रक्रिया को समझाइए।

4.10 बजट पास करने की प्रक्रिया (Procedure of Passing the Budget)

संघ की अगले वित्तीय वर्ष के लिए कुल आय और खर्च से सम्बन्धित ब्यौरे को वार्षिक वित्तीय स्टेटमेंट या बजट कहा जाता है। प्रत्येक वित्तीय वर्ष आरंभ होने से पहले सरकार को संसद से बजट पास करवाना पड़ता है। क्योंकि संसद की स्वीकृति के बिना राज्य कोष में से धन नहीं निकलवाया जा सकता और सरकार के द्वारा कोई भी पैसा खर्च नहीं किया जा सकता। हमारे देश में वित्तीय वर्ष एक अप्रैल से आरंभ होता है और अगले वर्ष 31 मार्च को समाप्त होता है। वार्षिक बजट प्रत्येक वर्ष पहली अप्रैल से पहले पास करना पड़ता है। अनुच्छेद 112 (1) के अनुसार, “राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष से सम्बन्धित भारत सरकार की अनुमानित आय और व्यय की स्टेटमेंट जिसको ‘वार्षिक वित्तीय स्टेटमेंट’ कहा जाता है, सदन के दोनों सदनों में रखेगा।” उपर्युक्त अनुच्छेदों से स्पष्ट हो जाता है कि यह राष्ट्रपति का उत्तरदायित्व है कि वह संसद के समक्ष वार्षिक बजट प्रस्तुत करवाए। परन्तु वास्तव में यह उत्तरदायित्व संघीय मंत्रि-परिषद् का होता है जो बजट तैयार करती है, इसको संसद के समक्ष रखती है, इससे पास करवाती है और इसके पश्चात् मंत्रि परिषद् खर्च करती है तथा बजट की व्यवस्थाओं के अनुसार आय एकत्रित करती है। बजट में आय और खर्च के खाते का ब्यौरा देते समय आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सरकार की वित्तीय नीतियाँ भी तय की जाती हैं।

बजट पास करने की प्रक्रिया में उठाए जाने वाले मुख्य कदम इस प्रकार हैं। भारत में बजट संसद में दो भागों में प्रस्तुत किया जाता है—

1. **रेलवे बजट (Railway Budget):** इस बजट में रेलवे से सम्बन्धित कुल आय और खर्च शामिल किया जाता है और यह बजट संसद में रेलवे मंत्री के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह बजट आम बजट प्रस्तुत करने से कुछ दिन पहले प्रस्तुत किया जाता है।

2. **आम बजट (General Budget):** आम बजट में रेलवे विभाग के बिना सभी विभागों से सम्बन्धित कुल आय और व्यय का ब्यौरा शामिल होता है। यह बजट वित्त मंत्री के द्वारा संसद अर्थात् लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। रेलवे बजट और साधारण बजट पास करने की प्रक्रिया लगभग एक समान है।

(a) **बजट की तैयारी (Preparation of the Budget):** बजट को तैयार करना एक तकनीकी और जटिल कार्य है क्योंकि वह विशेष रूप में आने वाले वित्तीय वर्ष से सम्बन्धित देश की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का आधार होता है। वित्तीय और औद्योगिक-तकनीकी विकास की आवश्यकता, उद्देश्य और उन्नति सरकार की वित्त नीति पर निर्भर करती है जोकि बजट में निर्धारित की जाती है। यह वित्तीय नीति और अल्पकालिक विशेष वित्तीय नीतियाँ, कर प्रस्ताव और अन्य आर्थिक कदमों की प्रक्रिया निश्चित करती है जिनके अनुसार देश के सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया न चलना होता है। रेलवे बजट रेल मंत्री के द्वारा तैयार किया जाता है और साधारण बजट वित्त मंत्री के द्वारा तैयार किया जाता है। दोनों ही मामलों में समुचित रूप में नीतियों के बारे में निर्णय कैबिनेट करती है। व्ययों के बारे में अनुपात तैयार किए जाते हैं और अलग-अलग सरकारी विभागों के द्वारा अर्जित आय के बारे में अनुपात बजट तैयार करने से लगभग 4 से 6 महीने पहले वित्त मंत्री के पास पहुँचने होते हैं। इन अनुमानों और कैबिनेट के नीतिगत निर्णयों के आधार पर वित्त मंत्री आने वाले वर्ष के लिए आय और व्ययों के बारे में अनुमान लाता है। इसके पश्चात् वित्त मंत्री अलग-अलग साधनों के द्वारा आय एकत्रित करने के बारे में निर्णय लेता है और कर प्रस्ताव तैयार करता है। इस प्रकार वित्त मंत्री नए कर लगाने और पुरानों के नवीनीकरण से सम्बन्धित योजना तैयार करता है। इस प्रकार वास्तव में बजट वित्त मंत्री के द्वारा तैयार किया जाता है और वह अन्तिम विचार के लिए इसको कैबिनेट में रखता है और इसके पश्चात् बजट संसद में प्रस्तुत करने के लिए तैयार हो जाता है।

(b) **साधारण बजट के मुख्य भाग (Main Parts of the General Budget):** भारत में बजट के दो मुख्य भाग हैं—

(i) **आय की स्टेटमेंट (Statement of Income):** इस भाग में केन्द्र-सरकार अर्थात् इसके सभी विभागों का पिछले वित्तीय वर्ष की आय का रिकार्ड होता है।

नोट

(ii) **व्यय की स्टेटमेंट (Statement of Expenditure):** इस भाग में सरकार के अलग-अलग विभागों का पिछले वित्तीय वर्ष के खर्च का ब्यौरा होता है।

(iii) आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए केन्द्र सरकार की अनुमानित आय और खर्च के बारे में विवरण।

(iv) विद्यमान कर प्रणाली में परिवर्तनों से सम्बन्धित प्रस्ताव और नए करों से सम्बन्धित प्रस्ताव।

(v) आने वाले वित्तीय वर्ष में केन्द्र सरकार की वित्तीय नीतियों के बारे में स्टेटमेंट।

सरकार के कुल व्यय को दो भागों में विभाजित किया जाता है—

(a) भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) पर किए जाने वाला व्यय (Charged Expenditure)।

(b) साधारण अथवा गैर-वसूली व्यय (Non-charged Expenditure)

(a) भारत की संचित निधि से लिया जाने वाला व्यय (Expenditure charged on the Consolidated Fund of India): संविधान के अनुच्छेद 113 के अनुसार संसद के सदस्य भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) पर वसूल किए जाने वाले अलग-अलग व्ययों पर बहस कर सकते हैं परन्तु वे इन पर वोट का अधिकार नहीं प्रयोग कर सकते। वसूले व्ययों को संसद के द्वारा पास किया जाता है जिनको प्रत्येक स्थिति में सरकार ने खर्च करना ही होता है। निम्नलिखित खर्च इस श्रेणी में आते हैं—

1. राष्ट्रपति के वेतन तथा अन्य भत्तों से सम्बन्धित व्यय।
2. संसद के दोनों सदनों के अध्यक्षों का व्यय।
3. सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के अन्य भत्तों से सम्बन्धित व्यय।
4. कम्पट्रोलर एंड आडीटर जनरल के अन्य भत्तों के बारे में व्यय।
5. संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों की पेंशन से सम्बन्धित व्यय।
6. उप-राष्ट्रपति के अन्य भत्तों से सम्बन्धित व्यय।

(b) गैर-वसूली खर्च (Non-charged Expenditure): ऊपरवर्णित व्ययों के अतिरिक्त शेष सभी व्ययों को गैर-वसूले खर्च कहा जाता है और उनको अनुदानों के भागों के स्वरूप में संसद के सामने प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे व्यय संसद के द्वारा स्वीकार या अस्वीकार या घटाए जा सकते हैं। संसद अपने रूप में इन व्ययों को बढ़ा नहीं सकती।

1. बजट प्रस्तुत करना और बजट पर भाषण (Introduction of the Budget Speech): संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार राष्ट्रपति वित्त मंत्री के द्वारा तैयार किए गए बजट को संसद में पेश करवाता है। सामान्य रूप में बजट फरवरी के अन्तिम सप्ताह में पेश किया जाता है ताकि पास करने से पहले संसद को लगभग एक महीने के लिए बजट पर समुचित रूप में विचार करने का समय मिल जाता है। सामान्य रूप में बजट चालू वित्तीय वर्ष समाप्त होने से पहले अर्थात् 31 मार्च से पहले पास करना होता है। लोक सभा में बजट वित्त मंत्री के द्वारा निर्धारित तिथि और समय पर प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रस्तुत करते समय वित्त मंत्री बजट पर भाषण देता है जिसमें बजट के मुख्य भागों और विशेषताओं का ब्यौरा होता है। बजट सदैव लोक सभा में पेश किया जाता है तथा यह एक वित्त बिल ही होता है।

2. बजट भाषण (Budget Speech): बजट की कापियाँ संसद सदस्यों में बाँटी जाती हैं ताकि वह बजट प्रस्तावों से सम्बन्धित ब्यौरों का अध्ययन करने के समर्थ हो सकें। इसी समय बजट प्रस्तावों को साधारण जनता के लाभ के लिए टी.वी. और रेडियो पर प्रसारित किया जाता है। बजट पर भाषण से बजट प्रस्तावों पर बहस के लिए मार्ग तैयार हो जाता है और संसद के सदस्य संसद में बजट पर बहस में भाग लेने के लिए तैयार हो जाते हैं।

3. बजट पर सामान्य बहस (General Discussion on the Budget): बजट प्रस्तुत करने के तीन या चार दिनों बाद बजट की मुख्य विशेषताओं पर सामान्य बहस होती है जिसके दौरान वित्त मंत्री सरकार की आर्थिक नीतियों को उचित ठहराता है। इस चरण पर वसूली व्यय पर भी बहस होती है। विरोधी दल या दलों के सदस्य इस चरण को सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना करने के लिए प्रयोग करते हैं। परन्तु वह बहस राजनीतिक होती

है और इसका आर्थिक विश्लेषण या पुनर्विचार से सम्बन्ध बहुत कम होता है। श्री मोरिस जोनज के शब्दों में, “यह एक ऐसा अवसर होता है जिसमें प्रत्येक सदन अपनी मनोदशा को प्रकट करने के समर्थ होता है और सरकार इससे जान सकती है कि एक विशेष प्रस्ताव अगले चरण पर किस प्रकार जाएगा।”

4. स्थायी समितियों के द्वारा बजट पर विचार (Consideration of Budget Proposals by the Standing Committees): अप्रैल, 1993 में समिति प्रणाली में अनेकों परिवर्तन किए गए थे। 17 स्थायी समितियाँ बनाई गईं। 1994 से लेकर यह समितियाँ बजट पास करने के समय सक्रिय भूमिका निभाती आ रही हैं। बजट पेश होने के पश्चात् इन समितियों के पास चला जाता है। ये समितियाँ बजट प्रस्तावों के सम्बन्ध में छानबीन करती हैं और अपनी रिपोर्टें/सुझाव देती हैं। समितियों की यह रिपोर्टें लोक सभा के द्वारा बजट पर बहस का आधार बनती हैं।

5. ग्रांटों के बारे में माँगों पर मतदान (Voting on Demand for Grants): आम विचार-विमर्श के पश्चात् सरकारी विभागों की माँगों पर चर्चा होती है। इस चरण पर अलग-अलग सरकारी विभागों के द्वारा आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए व्यय से सम्बन्धित की गई माँगों विचार-विमर्श कर विषय होती हैं। संसद किसी भी माँग को स्वीकार, रद्द या घटा सकती है परन्तु वृद्धि नहीं कर सकती। प्रत्येक विभाग की ग्रांटों की माँगों पर ही अलग-अलग विचार किया जाता है परन्तु सामान्य रूप में प्रमुख विभागों की माँगों पर ही अलग-अलग विचार किया जाता है और समय की कमी के कारण प्रायः शेष विभागों के द्वारा पेश की गई माँगों पर संसद साझे रूप में विचार करने के लिए विवश होती है। प्रत्येक माँग संबंधित मंत्री के द्वारा राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेकर संसद में रखी जाती है। स्पीकर बहस की समय-सीमा निश्चित करता है और प्रत्येक बहस समाप्त होने के पश्चात् माँगों पर वोट डाले जाते हैं। यदि लोक सभा के द्वारा कोई भी माँग रद्द कर दी जाती है या घटा दी जाती है तो इसको मंत्रि-परिषद् की पराजय के रूप में लिया जाता है और उसको त्याग-पत्र देना पड़ता है। यह कार्यवाही संसद में सरकार के बहुमत के परीक्षण का अवसर प्रदान करती है। यही कारण है कि सरकार को बहुत सावधान होकर चलना पड़ता है और उसको प्रत्येक परिणाम के लिए तैयार रहना पड़ता है।

6. विनियोग बिल को प्रस्तुत और पास करना (Introduction and Passing of the Appropriation Bill): लोक सभा के द्वारा ग्रांटों से सम्बन्धित सभी माँगों पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् लोक सभा के द्वारा पास की गई माँगों और संचित निधि (Consolidated Fund of India) से किए जाने वाले व्यय को एकत्रित करके विनियोग बिल तैयार किया जाता है। यह बिल लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है और सदन में से पास होने से पहले इसको उन सभी चरणों में से गुजरना पड़ता है जिसमें से अन्य कोई बिल गुजरता है। लोक सभा के द्वारा पास करने के पश्चात् इसको राज्य सभा के पास भेजा जाता है। राज्य सभा इसको पास कर सकती है या इसको 14 दिनों के अंदर सिफारिशों सहित या सिफारिशों के बिना लोक सभा को वापस कर सकती है, लोक सभा इन सिफारिशों को मानने के लिए पाबंद नहीं होती। इस प्रकार राज्य सभा विनियोग बिल के पास होने में अधिक-से-अधिक 14 दिनों के समय के लिए देरी ही कर सकती है। इसके पश्चात् इसको संसद के दोनों सदनों के द्वारा पास हुआ समझ लिया जाता है और इसको राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के लिए भेज दिया जाता है। विनियोग बिल के पास होने का अर्थ अलग-अलग सरकारी विभागों के खर्च से सम्बन्धित माँगों की स्वीकृति होता है।

7. वित्तीय बिल को पास करना (Passing of the Finance Bill): बजट में दिए गए सभी कर प्रस्तावों को वित्तीय बिल का रूप और शीर्षक दिया जाता है जो विनियोग बिल के पास/पेश होने के पश्चात् लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। इस बिल को उसी प्रक्रिया में से गुजरना पड़ता है जो एक धन बिल को पास करने के लिए अपनाई जाती है। विरोधी पक्ष के सदस्य करों को घटाने से सम्बन्धित संशोधन प्रस्तुत कर सकते हैं जिनको सरकार के द्वारा स्वीकार या रद्द किया जा सकता है। यदि वित्तीय बिल में ऐसा संशोधन मंत्रि-परिषद् की सहमति के बिना पास कर दिया जाता है तो इसको सरकार के विरुद्ध अविश्वास मत के रूप में लिया जाता है और जिसका निष्कर्ष सरकार के त्याग-पत्र के रूप में निकलता है। परन्तु एक बहुमत के समर्थन वाली सरकार को वित्तीय बिल पास करवाने में बाधा का सामना नहीं करना पड़ता। वित्तीय बिल को लोक सभा के द्वारा पास करने के पश्चात् राज्य सभा को भेजा जाता है। राज्य सभा इस बिल के पास करने के सम्बन्ध में अधिक-से-अधिक 14 दिनों की देरी

नोट

नोट

कर सकती है। राज्य सभा 14 दिनों के अंदर कुछ संशोधन सहित या संशोधन के बिना वित्तीय बिल को लोक सभा के पास वापस भेज सकती है। परन्तु यह केवल लोक सभा पर निर्भर करता है कि वह इन संशोधनों को स्वीकार करे या न करे। राज्य सभा को बिल भेजे जाने से लेकर 14 दिन समाप्त होने के पश्चात् इसको संसद के दोनों सदनों के द्वारा पास हुआ समझ लिया जाता है। फिर इसको राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। उनके हस्ताक्षर होने से यह बिल कानून बन जाता है। राष्ट्रपति के पास वित्तीय बिल को पुनः विचार-विमर्श और पुनः पास करने के लिए संसद को वापस भेजने का अधिकार नहीं है। वित्तीय बिल के पास होने से वास्तव में बजट पास होने की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।

8. लेखा वोट (Vote on Account): हमारे देश में वित्तीय वर्ष 31 मार्च को समाप्त होता है परन्तु यदि पहले अप्रैल तक बजट पास करवाना कठिन हो तो सरकार बजट के पास होने तक अन्तरिम आधार पर आवश्यक व्यय करने के लिए आज्ञा ले सकती है। इस कार्यवाही को सरकार के द्वारा संसद से लेखा वोट (Vote on Account) लेना कहा जाता है। सामान्य रूप में सरकार की ऐसी प्रार्थना सदैव ही संसद के द्वारा स्वीकार कर ली जाती है।

9. पूरक बजट (Supplementary Budget): सामान्य रूप में वित्तीय वर्ष के आरंभ में सरकार अनुमानों पर आधारित समस्त बजट तैयार कर लेती है परन्तु कुछ महीने बीतने के पश्चात् यदि वित्त मंत्री अनुभव करे कि व्यय स्वीकृत किए व्यय से अधिक है या साधनों की प्राप्ति निर्धारित से कम हो रही है तो वह सितम्बर, अक्टूबर या जनवरी में संसद की स्वीकृति के लिए पूरक बजट प्रस्तुत कर सकता है। इसको पूरक बजट या सरकार के द्वारा माँगे गए पूरक अनुदान कहा जाता है।

10. आकस्मिक (दुर्घटना) निधि (The Contingency Fund of India): भारतीय संविधान के अनुच्छेद 267 (1) के अनुसार संसद एक कानून पास करके आकस्मिक निधि स्थापित कर सकती है जिस में से आवश्यकता पड़ने पर व्यय किया जा सकता है। यह निधि राष्ट्रपति के नियंत्रण अधीन होती है। जो राशि इस निधि में से प्रयोग की जाती है, उसके सम्बन्ध में बाद में संसद के दोनों सदनों से स्वीकृति लेनी पड़ती है।

क्या आप जानते हैं: लोक सभा में प्रस्तुत होने के पश्चात् बजट 75 दिनों के अंदर-अंदर पास करना होता है।

इस प्रकार बजट पास करना एक सुसंगठित और जटिल कार्यवाही है। यह एक समयबद्ध कार्यवाही है। इसके पास होने में कठिनाइयों पर नियंत्रण पाने की व्यवस्था है जो कठिनाइयाँ पास किए जाने में देरी करके खड़ी की जा सकती हैं। बजट की प्रक्रिया से पता लगता है कि इस क्षेत्र में लोक सभा की राज्य सभा की तुलना में उच्च भूमिका और स्थिति है। वित्तीय कानून-निर्माण के सम्बन्ध में यह लोक सभा ही है जो प्रमुख भूमिका निभाते हैं जबकि राज्य सभा की केवल देरी करने की भूमिका ही रहती है। फिर भी जब लोक सभा और राज्य सभा में दलीय स्थिति अलग हो (जब इन दोनों सदनों में दो अलग-अलग दलों या समूहों का बहुमत हो) तो राज्य सभा भी इस क्षेत्र में कुछ सक्रिय भूमिका निभा सकती है। ऐसा 1977-79 और 1989-95 के दौरान हुआ था। यदि राजनीतिक अस्थिरता या किसी अन्य संकट के कारण बजट संसद के द्वारा पेश करने के मार्ग में कोई समस्या आ रही हो तो राष्ट्रपति उचित आदेश जारी करके संसद को बजट पास करने के लिए कह सकता है। ऐसा मार्च 1998 में किया गया था।

सरकार के द्वारा बजट तैयार करना और संसद से पास करवाना एक सचमुच ही बहुत जटिल और लंबी कार्यवाही है जो मंत्रि-परिषद् को विवश करती है कि वह इस कार्यवाही को चलाने से सम्बन्धित बहुत अधिक सावधान और कुशल रहा। संसद का बजट अधिवेशन सामान्य रूप में सरकार के लिए बहुत दबाव वाला समय होता है। कोई भी त्रुटि या उपेक्षा सरकार के गिरने का कारण बन सकती है और इससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बड़ा धक्का लग सकता है। भारत में साझी सरकारों के युग की स्थिति पैदा होने से बजट पास करने की प्रक्रिया और भी जटिल हो गई है। परन्तु भारतीय राजनीतिक प्रणाली में और भारतीय संविधान में बजट पास करने के सम्बन्ध में आने वाली संभावित कठिनाइयों पर नियंत्रण पाने की योग्यता है। अप्रैल, 1999 में बी.जे.पी. गठबंधन सरकार की लोक सभा

में पराजय के पश्चात् राष्ट्रपति ने संसद से बजट पास करवाने के लिए एक विशेष प्रयास किया जिसके फलस्वरूप 1999-2000 का बजट जोकि बी.जे.पी. गठबंधन सरकार ने तैयार किया था, कुछ घंटों में ही संसद के द्वारा पास कर दिया गया। वास्तव में भारतीय संविधान अधीन निर्धारित कानून-निर्माण तथा बजट पास करने की प्रक्रिया अच्छी तरह से परिभाषित तथा सुसंगठित प्रक्रियाएँ हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त-स्थान भरें (Fill in the blanks)

12. के किसी सदस्य के द्वारा पेश किए गए बिल को सरकारी बिल कहते हैं।
13. के द्वारा हस्ताक्षर करने के पश्चात् ही संसद के द्वारा पास किए गए बिल कानून बनते हैं।
14. बिल की तीसरी पढ़त सदन में बिल को पास करने का चरण होता है।

सारांश (Summary)

- समिति प्रणाली भारतीय संघीय संसद के कुशल कार्य-व्यवहार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है और यह वैधानिक ढांचे का एक अटूट भाग बन चुकी है।
- संविधान के अनुच्छेद 118 में सामान्य तौर पर कहा गया है कि संसद के दोनों सदन वैधानिक कार्य सुविधा से चलाने के लिए अपनी समितियों का गठन कर सकते हैं।
- 1953 से पहले निजी सदस्य बिलों, जो सदन के साधारण सदस्यों अर्थात् ऐसे सदस्य जो मंत्री नहीं थे, के द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, के भाग्य का फैसला एक लाटरी के द्वारा किया जाता था। केवल उन बिलों को विचार-विमर्श के लिए लिया जाता था जो लाटरी में विजयी रहते थे।
- रेलवे बजट रेल मंत्री के द्वारा तैयार किया जाता है और साधारण बजट वित्त मंत्री के द्वारा तैयार किया जाता है। दोनों ही मामलों में समुचित रूप में नीतियों के बारे में निर्णय कैबिनेट करती है।
- संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार राष्ट्रपति वित्त मंत्री के द्वारा तैयार किए गए बजट को संसद में पेश करवाता है। सामान्य रूप में बजट फरवरी के अन्तिम सप्ताह में पेश किया जाता है ताकि पास करने से पहले संसद को लगभग एक महीने के लिए बजट पर समुचित रूप में विचार करने का समय मिल जाता है। सामान्य रूप में बजट चालू वित्तीय वर्ष समाप्त होने से पहले अर्थात् 31 मार्च से पहले पास करना होता है।
- लोक सभा के द्वारा ग्रांटों से सम्बन्धित सभी माँगों पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् लोक सभा के द्वारा पास की गई माँगों और संचित निधि (Consolidated Fund of India) से किए जाने वाले व्यय को एकत्रित करके विनियोग बिल तैयार किया जाता है।
- यदि वित्तीय बिल में ऐसा संशोधन मंत्रि-परिषद् की सहमति के बिना पास कर दिया जाता है तो इसको सरकार के विरुद्ध अविश्वास मत के रूप में लिया जाता है और जिसका निष्कर्ष सरकार के त्याग-पत्र के रूप में निकलता है।
- संसद का बजट अधिवेशन सामान्य रूप में सरकार के लिए बहुत दबाव वाला समय होता है। कोई भी त्रुटि या उपेक्षा सरकार के गिरने का कारण बन सकती है और इससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बड़ा धक्का लग सकता है।

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. संघीय संसद की विभिन्न समितियों का वर्णन कीजिए।
2. ससदीय समितियों का संगठन कैसे होता है?

नोट

3. लोक सभा की विभिन्न समितियों के कार्य लिखें।
4. प्रवर समिति से आप क्या समझते हैं?
5. लोक सभा समिति क्या है?
6. बजट पास करने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

- | | | | | |
|------------|-------------------|----------------|-----------|----------|
| 1. वैधानिक | 2. वित्तीय | 3. साधारण | 4. (a) | 5. (b) |
| 6. (a) | 7. सत्य | 8. सत्य | 9. सत्य | 10. सत्य |
| 11. सत्य | 12. मंत्रि-परिषद् | 13. राष्ट्रपति | 14. अंतिम | |

संदर्भ पुस्तकें (Further Reading)

1. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था— डा. एम.पी.राय।
2. भारतीय राजनीतिक प्रणाली— यू.आर. घई।

अध्याय 5: संघीय सरकार: राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति (Union Government: President, Vice-President)

नोट

संरचना (Structure)

- 5.1 उद्देश्य (Objectives)
- 5.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 5.3 राष्ट्रपति के निर्वाचन का ढंग (Method of President's Election)
- 5.4 राष्ट्रपति के चुनाव के ढंग की आलोचना (Criticism of the Method for Election of the President)
- 5.5 राष्ट्रपति की शक्तियाँ और स्थिति (President's Power and Position)
- 5.6 राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers of the President)
- 5.7 संकटकालीन व्यवस्थाओं का औचित्य (Justification of Emergency Provisions)
- 5.8 भारत के उप-राष्ट्रपति (Vice-President of India)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

5.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- राष्ट्रपति के निर्वाचन को समझने हेतु।
- राष्ट्रपति के कार्यों और शक्तियों को समझने में।
- भारत के उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के बारे में।

5.2 प्रस्तावना (Introduction)

भारत के संविधान में कहा गया है कि भारत का एक राष्ट्रपति होगा। संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार स्वयं अथवा अधीनस्थ पदाधिकारियों के द्वारा करेगा। इस प्रकार संघीय कार्यपालिका राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद् होंगे। राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान होगा और मंत्रिपरिषद् कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान।

भारतीय संघ में राष्ट्रपति की स्थिति का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था, “भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को वही स्थिति प्राप्त है जो ब्रिटिश संविधान में सम्राट को। वह राज्य का प्रधान है कार्यपालिका का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, राष्ट्र पर शासन नहीं करता। वह राष्ट्र का प्रतीक है। प्रशासन में उसका स्थान औपचारिक प्रधान का है।”

5.3 राष्ट्रपति के निर्वाचन का ढंग (Method of President's Election)

संविधान के अनुसार भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष और लोकतंत्रीय गणतंत्र है। भारत को गणतंत्र बनाने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संविधान के द्वारा देश के राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। परन्तु सरकार का संसदीय स्वरूप अपनाए जाने के कारण संविधान के निर्माताओं के लिए यह आवश्यक हो गया कि राष्ट्रपति को एक नाममात्र और संवैधानिक मुखिया बनाया जाए। इसके लिए राष्ट्रपति के चुनाव के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली अपनाई गई। यह निर्णय किया गया कि वास्तविक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के द्वारा किया जाना है और राष्ट्रपति केवल संवैधानिक मुखिया के रूप में राज्य के अध्यक्ष के पद पर आसीन होगा। ऐसी सोच के आधार पर यह निर्णय स्वाभाविक रूप में लिया गया कि राष्ट्रपति को जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में नहीं निर्वाचित किया जाना चाहिए। पंडित जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, यह अनुभव किया गया कि जबकि राष्ट्रपति केवल संवैधानिक मुखिया होगा इसके लिए साधारण लोगों के द्वारा वोटों के द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव एक व्यर्थ प्रयत्न होगा। यह भी अनुभव किया गया कि लोगों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के द्वारा सरकार के नेतृत्व को चुनौती दे सकता था और इस प्रकार वह संसदीय प्रणाली के लिए खतरा खड़ा कर सकता था। इसलिए संविधान निर्माताओं ने यह निर्णय किया कि राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष ढंग से होगा।

नोट: भारतीय संघ की कार्यपालिका के प्रधान को राष्ट्रपति कहा जाएगा। यद्यपि कार्यपालिका के प्रधान का वह नामकरण अमरीकी संविधान के समान है; लेकिन भारतीय राष्ट्रपति के कार्य और शक्तियाँ अमरीकी राष्ट्रपति के समान नहीं हैं।

संविधान के अनुच्छेद 54 के अनुसार संघीय संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों और राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों के द्वारा राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष चुनाव के ढंग की व्यवस्था की गई है—

(क) राष्ट्रपति के पद के लिए योग्यताएँ (Qualifications for the office of the President): संविधान के द्वारा राष्ट्रपति के पद के उम्मीदवार के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं—

1. वह भारत का नागरिक होना चाहिए। परन्तु यह नहीं लिखा गया कि वह भारत का जन्मजात नागरिक ही होना चाहिए।
2. उसकी आयु 35 वर्ष से ऊपर हो।
3. वह लोगों के सदन (लोकसभा) के एक सदस्य के रूप में निर्वाचित होने की योग्यताएँ पूर्ण करता हो।
4. वह किसी सरकारी लाभप्रद पद पर नियुक्त न हो, तथा
5. वह संसद के किसी भी सदन या किसी राज्य विधानपालिका का सदस्य नहीं नहीं चाहिए “यदि कोई संसद का सदस्य या राज्य विधानपालिका का सदस्य राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होता है तो उसको उस तिथि में संसद या विधानसभा की सदस्यता से त्याग-पत्र देना होता है जिस दिन से वह राष्ट्रपति के रूप में पद संभाल लेता है।”
6. इन योग्यताओं के अतिरिक्त राष्ट्रपति के निर्वाचन के बारे में एक्ट 1974 के अधीन व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति के पद के लिए चुनाव लड़ने वाला प्रत्येक उम्मीदवार अपने नामांकन पत्र के साथ 2500 रुपए जमानत रकम जमा करवाएगा और उसके नामजदगी पत्र पर कम-से-कम 10 मतदाता उसके नाम का

नोट

प्रस्ताव करेंगे और 10 अन्य मतदाता उसके नाम का समर्थन करेंगे। 1997 में एक आदेश के द्वारा जमानत की राशि 2,500 से बढ़ाकर 15,000 रुपए कर दी गई और उम्मीदवार के नाम को प्रस्तावित करने के लिए अब 50 मतदाताओं का होना आवश्यक कर दिया गया और इसके साथ ही 50 अन्य मतदाताओं ने किसी ऐसे उम्मीदवार के नाम का समर्थन करना था। ऐसा इस कारण किया गया ताकि राष्ट्रपति के निर्वाचन में उम्मीदवारों की संख्या कम से कम रखी जा सके और गैर-जिम्मेवार उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने का अवसर न मिल सके। यह भी नियम लागू है कि कोई उम्मीदवार राष्ट्रपति के निर्वाचन में डाले वोटों में से कम-से-कम 1/6 भाग प्राप्त नहीं करता तो उसकी जमानत राशि जब्त हो जाएगी। ऐसे परिवर्तन के पश्चात् 1997 के राष्ट्रपति चुनाव में केवल 2 उम्मीदवार ही मैदान में उतरे—श्री के.आर. नारायणन और श्री टी.आर. सेशन और इसके पश्चात् भी राष्ट्रपति के चुनाव में उम्मीदवारों की संख्या बहुत कम हो रही है। सामान्यतः दो प्रमुख उम्मीदवार ही राष्ट्रपति का चुनाव लड़ते रहे हैं।

(ख) राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए निर्वाचन-मंडल की रचना (Composition of the Electoral College for the Election of the President): संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। वह एक चुनाव मंडल के द्वारा निर्वाचित किया जाता है जो संसद के दोनों सदनों और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों पर आधारित होता है। संसद और राज्य विधान सभाओं के मनोनीत सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग नहीं ले सकते ताकि विद्यमान राष्ट्रपति के द्वारा ऐसे सदस्यों पर पाए जाने वाले संभावित प्रभाव से बचा जा सके, यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि चुनाव मंडल में खाली सीटों के आधार पर राष्ट्रपति के निर्वाचन को रोका नहीं जा सकता, जोकि प्रत्येक पाँच वर्ष बाद होना आवश्यक होता है। 1957 में राष्ट्रपति का निर्वाचन करवाए जाने को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि निर्वाचन मंडल में बहुत-सी सीटें खाली पड़ी थीं। इस त्रुटि को दूर करने के लिए 1961 में संविधान में 11वाँ संशोधन किया गया। इस संशोधन ने अनुच्छेद 71 में दर्ज किया कि निर्वाचन मंडल में खाली सीटों के आधार पर राष्ट्रपति के चुनाव पर आपत्ति नहीं की जा सकती। परन्तु केन्द्र सरकार के द्वारा विरोधी दल के बहुमत वाली राज्य विधानसभा के सदस्यों को राष्ट्रपति के निर्वाचन में वोट डालने से रोकने के लिए इस व्यवस्था का गलत प्रयोग किया जा सकता है, ऐसी कुचेष्टा को स्वस्थ लोकतंत्रीय नीति के द्वारा ही रोका जा सकता है। परन्तु राष्ट्रपति के निर्वाचन को निश्चित अवधि के बाद संगठित करने की आवश्यकता ने ऐसी व्यवस्था को संविधान में शामिल किए जाने को उचित ठहराया है। यहाँ यह भी बतलाना आवश्यक है कि नजरबंदी के अधीन संसद सदस्यों और विधायकों तथा निलम्बित राज्य विधान सभाओं के विधायकों को भी राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने का अधिकार होता है।

1987 में 9वें राष्ट्रपति के चुनाव के समय निर्वाचन मंडल की संख्या 4350 थी इसमें 702 संसद सदस्य और 3648 विधायक थे। जुलाई 1992 में राष्ट्रपति के निर्वाचन-मंडल में कुल सदस्यों की संख्या 4748 थी जिनमें 776 संसद सदस्य और 3910 विधायकों ने भाग लिया और कुल 4642 वोट डाले गए। 2002 के राष्ट्रपति चुनावों में 776 संसद सदस्यों और 4120 विधायकों ने भाग लिया और निर्वाचन-मंडल की कुल संख्या 4896 थी।

(ग) निर्वाचन का ढंग (Method of Election): अनुच्छेद 54 और 55 में भारत के राष्ट्रपति के चुनाव के ढंग का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 54 के अनुसार राष्ट्रपति का अप्रत्यक्ष चुनाव केन्द्रीय संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों और राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित विधायकों पर आधारित निर्वाचन-मंडल के द्वारा किया जाता है। यह चुनाव एकल परिवर्तनीय मत-प्रणाली और गुप्त मतदान के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार गुप्त मतदान के द्वारा किया जाता है। अनुच्छेद 55 में निर्वाचन प्रक्रिया निर्धारित की गई है। यह अनुच्छेद संसद सदस्यों और राज्य के विधायकों की वोटों में एकस्वरूपता और राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित अन्य मुद्दों को निश्चित करने के लिए निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित करता है।

नोट

1. अलग-अलग राज्यों के प्रतिनिधित्व के पैमाने में एकस्वरूपता होगी (There shall be uniformity in the scale of representation of different States): इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संविधान के अनुसार एक राज्य के विधायक की वोट की कीमत सम्बन्धित राज्य की जनसंख्या की अनुपात के अनुसार होगी। विधायक की वोट की कीमत निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित फार्मूला प्रयोग किया जाएगा।

राज्य के एक विधायक की वोट की कीमत

$$= \frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{राज्य विधानसभा के निर्वाचित विधायकों की संख्या}} \times \frac{1}{1000}$$

(यदि एक हजार का उपर्युक्त गुणज लेने के पश्चात् शेष 500 से कम नहीं बचता तो प्रत्येक सदस्य की वोट एक तक और बढ़ाई जा सकती है)।

उदाहरण—

2002 के राष्ट्रपति के चुनाव समय पंजाब की जनसंख्या 1,35,51,660 थी और पंजाब के निर्वाचित विधायकों की संख्या 117 थी।

पंजाब के प्रत्येक विधायक की वोट की कीमत थी:

$$\frac{1,35,51,660}{117} \times \frac{1}{1000} = 115 \frac{826}{1000} = 116$$

इस ढंग से प्रत्येक राज्य के विधायक की वोट की कीमत निकाली जाती है और फिर सभी राज्यों के सभी विधायकों की वोटों की कीमत निकाल ली जाती है।

2. संसद सदस्यों और विधायकों की वोट की कीमत में समानता होगी (There shall be parity in the values of votes of all MPs and the MLAs): राज्यों और संघ में समानता लाने के लिए यह निश्चित किया गया कि सभी निर्वाचित संसद सदस्यों की वोट की कीमत सभी विधायकों की वोटों की कुल कीमत के समान होगी। ऐसा निम्नलिखित फार्मूले के अनुसार किया जाता है—

प्रत्येक निर्वाचित संसद सदस्य की वोट की कीमत

$$= \frac{\text{सभी राज्य विधान सभाओं के सभी निर्वाचित विधायकों की वोटों की कुल संख्या}}{\text{कुल निर्वाचित संसद सदस्यों की संख्या}}$$

उदाहरण—

1992 के राष्ट्रपति के चुनाव में सभी राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित विधायकों की वोट की कुल संसद सदस्यों की संख्या 776 (543 लोकसभा और 233 राज्य सभा) थी।

$$\text{प्रत्येक निर्वाचित संसद सदस्य की वोट की कीमत} = \frac{544971}{776} = 702 \frac{318}{776} = 702$$

2002 के राष्ट्रपति चुनावों में एक सांसद की वोट की कीमत 708 थी और राज्य विधानसभाओं के सदस्यों की वोट की कीमत अलग-अलग थी। आंध्र के विधायक के वोट की कीमत 148 थी, असम में 116, बिहार में 173, महाराष्ट्र की 125, उत्तर प्रदेश 208, पंजाब 116, हरियाणा 112, मणिपुर 18, मेघालय 17, मिजोरम 8, नागालैण्ड 9, अरुणाचल 8, हिमाचल प्रदेश 51, पश्चिमी बंगाल 151, तमिलनाडु 176, जम्मू तथा कश्मीर 72 और अन्य।

3. प्राथमिकता संकेत सहित एकल वोट प्रणाली (Single Vote System along with the system of indication of Preferences): राष्ट्रपति के चुनाव में प्रत्येक मतदाता (प्रत्येक निर्वाचित संसद

सदस्य तथा प्रत्येक निर्वाचित एम.एल.ए.) केवल एक वोट डालता है। प्रत्येक संसद सदस्य की वोट की कीमत एक समान होती है, जबकि एक एम.एल.ए. अथवा विधायक की वोट की कीमत अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग होती है।

राष्ट्रपति के निर्वाचन-मंडल का प्रत्येक सदस्य अर्थात् प्रत्येक मतदाता वोट डालते समय अपनी प्राथमिकता 1, 2, 3, 4, 5 विभिन्न उम्मीदवारों के पक्ष में दर्ज करता है। उसकी वोट उस उम्मीदवार के पक्ष में जाती है जिसको वह अपनी प्रथम प्राथमिकता वोट देता है। परन्तु यदि वह उम्मीदवार आवश्यक वोटों का कोटा प्राप्त करने में असफल रहता है और अन्य कोई उम्मीदवार भी आवश्यक वोटों का कोटा प्राप्त नहीं करता तो उस मतदाता की वोट दूसरी प्राथमिकता वाले उम्मीदवार के पक्ष में हस्तांतरित कर दी जाती है।

यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि यद्यपि संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व एकल परिवर्तन योग्य वोट प्रणाली के द्वारा होती है परन्तु वास्तव में यह न तो आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली है और न ही एकल परिवर्तन योग्य वोट प्रणाली है। वास्तव में यह कोटा व्यवस्था वाली प्राथमिकताएँ वोट प्रणाली हैं।

4. विजय के लिए वोटों की एक निर्धारित संख्या (A fixed Quota of Votes to win): राष्ट्रपति का चुनाव जीतने के लिए एक उम्मीदवार के लिए यह आवश्यक है कि वह वोटों की एक निर्धारित संख्या प्राप्त करे, जो निम्नलिखित द्वारा निकाली जाती है—

$$\frac{\text{डाले शुद्ध वोटों की कुल संख्या}}{\text{कुल भरी जाने वाली सीटें}} + 1$$

यदि शेष आधा या अधिक हो तो कोटे में एक बढ़ा दिया जाता है।

5. यदि कोई भी उम्मीदवार आवश्यक वोटों प्राप्त नहीं करता तो वोटों के हस्तांतरण की व्यवस्था (Provision for Transfer of Votes in case no candidate gets the required Quota of Votes): यदि राष्ट्रपति के निर्वाचन में कोई भी उम्मीदवार वोटों की प्राथमिकता वाली वोटों के आधार पर आवश्यक कोटा लेने में असफल रहता है, तो सबसे कम वोट लेने वाले उम्मीदवार को मुकाबले से बाहर कर दिया जाता है और उसके मतों को मतदाताओं के द्वारा दर्ज की गई दूसरी प्राथमिकता के आधार पर शेष उम्मीदवारों में बाँट दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक दोहराई जाती है जब तक किसी एक उम्मीदवार को आवश्यक निर्धारित संख्या (Quota) प्राप्त नहीं हो जाता।

यह मतों की हस्तांतरित प्रणाली 1969 में पांचवें राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय प्रयोग की गई थी। इस चुनाव में 8,36,336 शुद्ध वोट पड़े थे पहली प्राथमिकता की वोटों की संख्या के आधार पर श्री वी.वी. गिरी को 4,01,515 और श्री संजीवा रेड्डी को 3,13,548 वोटें मिलीं। इस प्रकार इनमें से कोई भी आवश्यक कोटा जो 4,18,169 था प्राप्त न कर सका। इस स्थिति में तीसरे उम्मीदवार डॉ. देशमुख को मुकाबले से बाहर निकाल दिया गया और उसकी वोटों को मतदाताओं के द्वारा दर्ज की गई दूसरी प्राथमिकताओं के आधार पर अन्य दो उम्मीदवारों में बाँट दिया गया जिसके फलस्वरूप श्री वी.वी. गिरी को 4,20,077 वोट और श्री संजीवा रेड्डी को 4,05,427 वोट मिले। इस प्रकार श्री वी.वी. गिरी ने मतों की निर्धारित निश्चित संख्या प्राप्त कर ली और वह 14650 मतों के अन्तर से चुनाव जीत गए। अन्य राष्ट्रपति चुनावों के समय में मतों के हस्तांतरण प्रणाली के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

नोट

(Presidential Election: 1952-2002)

नोट	विजयी	दूसरे नम्बर पर					
	तिथि	नाम	योग्य वोट प्रतिशत	नाम	योग्य वोट	प्रतिशत	
	1952 मई 2	आर. प्रसाद	5074400 83.8	के.टी. शाह	92827	15.3	
	1957 मई 6	आर. प्रसाद	456990 99.3	एन.एन.दास	2000	0.4	
	1962 मई 7	एस. राधाकृष्णन	553067 98.3	सी.एच. राम	6341	1.1	
	1967 मई 6	डॉ. जाकिर हुसैन	471244 56.2	के. सूबा राव	363971	43.4	
	1969 अगस्त 16	वी.वी. गिरि	420077 50.2	एन.एस. रैडी	405427	48.5	
	1974 अगस्त 17	एफ.ए. अहमद	765587 80.2	टी. चौधरी	189186	10.8	
	1977 अगस्त 6	एन.एस. रैडी	निर्विरोध चुने गए				
	1982 जुलाई 12	ज्ञानी जैल सिंह	754113 72.7	एच.आर. खन्ना	281550	27.6	
	1987 सितम्बर 7	आर. वैकटरमन	740148 72.3	वी.आर.के. अय्यर	281550	27.5	
	1992 जुलाई 25	एस.डी. शर्मा	675864 64.4	जी.जी. सवैल	346485	33.8	
	1997 जुलाई 25	के.आर. नारायणन	956290 91.4	टी.आर. शेषन	50631	8.6	
	2002 जुलाई 25	ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	922884 89.58	के. लक्ष्मी सहगल	107366	10.4%	

जुलाई 2002 में हुए 12वें राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित आंकड़े

निर्वाचन मण्डल के कुल सदस्य	=	4896
सभी राज्यों के निर्वाचित विधायकों की संख्या	=	4120
संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित कुल संसद सदस्य	=	776
एक निर्वाचित संसद सदस्य की वोट की कीमत	=	708

प्रत्येक राज्य के एक विधायक की वोट की कीमत: आंध्र प्रदेश-148, अरुणाचल प्रदेश-8, असम-116, बिहार-173, छत्तीसगढ़-129, गोवा-20, गुजरात-147, हरियाणा-112, हिमाचल प्रदेश-51, जम्मू-कश्मीर-72, झारखंड-176, कर्नाटक-131, केरल-152, मध्य प्रदेश-131, महाराष्ट्र-175, मणिपुर-18, मेघालय-17, मिजोरम-8, नागालैंड-9, उड़ीसा-149, पंजाब-116, राजस्थान-129, सिक्किम-7, तमिलनाडु-176, त्रिपुरा-26, उत्तरांचल-64, उत्तर प्रदेश-208, पश्चिमी बंगाल-151, दिल्ली-58, पांडिचेरी-16

कुल डाली गई वोटें = 4785 कुल कीमत = 1075819

अशुद्ध वोटें = 174 (42 एम. पीज + 132 एम.एल. एज)

अशुद्ध डाली गई वोटों की कीमत = 45569

शुद्ध वोटें = 4611 (718 एम.पीज + 3893 एम.एल. एज)

शुद्ध वोटों की कुल कीमत = 1030250

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को प्राप्त कुल वोट 4152 (638 एम. पीज + 3514 एम.एल. एज)

प्राप्त वोटों की कुल कीमत = 922884 (89.58%)

कैप्टन लक्ष्मी सहगल को डाले कुल वोट 459 (80 एम. पीज + 379 एम.एल. एज)

प्राप्त वोटों की कुल कीमत = 107366 (10.4%)

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जिनको कि भारत के 'मिसाइल मैन' के रूप में भी जाना जाता है, भारी बहुमत से भारतीय गणतन्त्र के 12वें राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उन्होंने 25 जुलाई 2002, जिस दिन राष्ट्रपति आर.के. नारायणन के पद की अवधि समाप्त हुई थी, को राष्ट्रपति पद ग्रहण किया।

6. राष्ट्रपति के चुनाव के चरण (Stages in a Presidential Election): भारत में राष्ट्रपति का निर्वाचन निम्नलिखित चरणों में सम्पन्न होता है:

1. चुनाव के बारे में अधिसूचना और रिटर्निंग अफसर की नियुक्ति (Notification of Election and Appointment of the Returning Officer): चुनाव के बारे में अधिसूचना राष्ट्रपति के द्वारा जारी की जाती है और चुनाव करवाने का उत्तरदायित्व निर्वाचन आयोग का होता है। निर्वाचन आयोग का रिटर्निंग अफसर नियुक्त करता है और नामांकन-पत्र भरने की तिथि, कागज वापस लेने की अंतिम तिथि और चुनाव कार्यक्रम निश्चित करता है।

2. नामांकन पत्र भरना, उनकी जांच-पड़ताल और वापसी (Filling of Nomination Papers, Scrutiny and Withdrawals): निर्धारित तिथि तक प्रत्येक उम्मीदवार को चुनाव अधिकारी के पास नामांकन पत्र जमा करवाने पड़ते हैं। प्रत्येक उम्मीदवार के नाम को 50 मतदाताओं के द्वारा प्रस्तावित और 50 अन्य के द्वारा समर्थित किया जाना होना चाहिए। इसके साथ ही 15000 रुपये जमानत राशि के रूप में जमा करवाने पड़ते हैं। इसके बाद संविधान में निर्धारित योग्यताओं के आधार पर उम्मीदवारों की पात्रता का निर्णय लेने के लिए नामांकन पत्रों की जांच-पड़ताल की जाती है। सभी अधूरे और गलत नामांकन-पत्र रद्द कर दिए जाते हैं। फिर उम्मीदवारों को छूट दी जाती है कि वे निर्धारित तिथि तक अपनी इच्छा से चुनाव मुकाबले से अगर हटाना चाहते हैं तो वे ऐसा एक निर्धारित तिथि तक कर सकते हैं।

3. चुनाव अभियान (Election Campaign): इसके उपरांत सभी उम्मीदवार अपने चुनाव अभियान चलाते हैं। अधिकतर उम्मीदवार अपने संबंधित दलों के द्वारा ही चुनाव अभियान चलाते हैं क्योंकि वह अभियान निर्वाचन-मंडल के सदस्यों तक ही सीमित होता है। इसलिए आम जनता की इसमें भूमिका बहुत कम होती है।

4. मतदान (Polling): निर्धारित तिथि पर मतदान होता है। प्रत्येक मतदाता एक वोट डालता है परन्तु वह मतदान-पत्र पर अपनी अन्य प्राथमिकताएँ अंकित कर सकता है। एक संसद सदस्य देश की राजधानी या वह उस राज्य की राजधानी में अपना वोट डाल सकता है, जिस राज्य का वह प्रतिनिधित्व करता है। इस सम्बन्ध में उसको 10 दिन पहले बतलाना होता है कि उसने कहाँ वोट डालनी है। विधायक अपने-अपने राज्यों की राजधानियों में ही वोट डालते हैं। मतदान पूर्णरूप से गुप्त होता है।

5. वोटों की गणना (Counting of Votes): मत डालने के पश्चात् गणना आरंभ होती है। शुद्ध (Valid) मतों की गणना की जाती है। कोटा निश्चित किया जाता है। प्रत्येक उम्मीदवार को डाले मत (पहली प्राथमिकता) की गणना की जाती है और अनुच्छेद 55 में बताए गए सिद्धांत के आधार पर निर्धारित किए प्रत्येक मत की कीमत के आधार पर हिसाब लगाया जाता है। जो उम्मीदवार निर्धारित मतों का कोटा प्राप्त कर लेता है या उससे अधिक मत ले जाता है, वह सफल माना जाता है। यदि कोई भी उम्मीदवार मतों का कम-से-कम निर्धारित कोटा प्राप्त नहीं करता; तो निर्धारित विधि के अनुसार मतों का हस्तांतरण किया जाता है।

6. परिणाम के बारे में अधिसूचना (Notification of the Result): बाद में भारत के गजट में चुनाव परिणाम के बारे में अधिसूचना जारी कर दी जाती है।

7. शपथ लेना और पद संभालना (Oath-taking and Installation): पहले राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने वाले दिन या निर्धारित तिथि पर नया राष्ट्रपति शपथ उठाता है और पद संभालता है। राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश की उपस्थिति में अपने पद की शपथ उठाता है। यदि मुख्य न्यायाधीश उपस्थित न हो तो सर्वोच्च न्यायालय के सबसे अधिक वरिष्ठ न्यायाधीश की उपस्थिति में ऐसी शपथ ली जाती है।

शपथ इस प्रकार ली जाती है—

“मैं.....परमात्मा के नाम पर मर्यादापूर्वक

प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी पूरी वफादारी से अपने कर्तव्य निष्ठापूर्वक निभाऊँगा और देश के संविधान और कानून की रक्षा करूँगा और उनको कायम रखूँगा। मैं अपने-आप को भारत के लोगों की सेवा और प्रगति के लिए समर्पित करूँगा।” शपथ उठाने के पश्चात् नया राष्ट्रपति पद संभाल लेता है।

नोट

(घ) **मतदान से सम्बन्धित झगड़ों का निपटारा (Settlement of Disputes connected with Presidential Election):** मतदान के पश्चात् राष्ट्रपति के मतदान से सम्बन्धित पैदा हुए किसी भी झगड़े की सुनवाई और अन्तिम रूप में निर्णय केवल देश के सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा ही किया जाता है। राष्ट्रपति के चुनाव को चुनौती देने वाली याचिका किसी भी असफल उम्मीदवार या 10 या इससे अधिक मतदाताओं के द्वारा दायर की जा सकती है। चुनाव को चुनौती में हेराफेरी या चुनाव में कुछ गैर-संवैधानिक क्रियाओं के दोष के आधार पर दी जा सकती है। ऐसी याचिका चुनाव-परिणाम घोषणा के 30 दिनों में दायर की जा सकती है। 1969 में राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि के राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। और श्री गिरि स्वयं न्यायालय में पेश हुए थे। सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा श्री गिरि के चुनाव को पूर्ण रूप से उचित और संवैधानिक घोषित किया गया था।

(ङ) **राष्ट्रपति का कार्यकाल (Tenure of the President):** राष्ट्रपति का चुनाव 5 वर्ष के लिए होता है। उनका कार्यकाल उस तिथि से आरंभ होता है, जिस तिथि से वह पद संभालते हैं। फिर भी यदि किसी कारण नए राष्ट्रपति का चुनाव पहले राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने से पहले पूर्ण नहीं हो पाता, तो नए राष्ट्रपति के चुनाव तक कार्य कर रहा राष्ट्रपति अपने पद पर बना रहता है।

अपना कार्यकाल पूरा होने से पूर्व भी राष्ट्रपति अपने पद से लिखित रूप में त्याग-पत्र उप-राष्ट्रपति को भेज सकता है।

(च) **राष्ट्रपति को पद से हटाने का ढंग (Method of Removal of the President):** राष्ट्रपति को संविधान का उल्लंघन करने के आधार पर अथवा अपने पद की मर्यादा भंग करने के दोष पर महाभियोग की प्रक्रिया के द्वारा पद से हटाया भी जा सकता है। महाभियोग से सम्बन्धित कार्यवाही संसद के किसी भी सदन में आरंभ हो सकती है। अमरीका में केवल प्रतिनिधि सदन को ही राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग आरंभ करने का अधिकार है और सीनेट दोषों की जाँच करने के पश्चात् अपना अंतिम निर्णय देती है परन्तु भारत में ऐसी कार्यवाही किसी भी सदन में आरंभ हो सकती है और फिर दूसरा सदन दोषों की जाँच करता है।

महाभियोग की कार्यवाही आरंभ करने के लिए कम-से-कम 14 दिन पहले सदन के कुल सदस्यों के एक चौथाई को लिखित रूप में नोटिस देना होता है, जिस पर उनके हस्ताक्षर होने आवश्यक होते हैं। यदि सदन बहस के पश्चात् कुल सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से इस महाभियोग से सम्बन्धित प्रस्ताव को पारित कर देता है तो यह प्रस्ताव दूसरे सदन को भेजा जाता है। दूसरा सदन दोषों की जाँच-पड़ताल करता है। राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह इस कार्यवाही के दौरान अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए स्वयं प्रस्तुत हो सकता है या अपने वकील के द्वारा प्रस्तुत हो सकता है। यदि जाँच के पश्चात् दूसरा सदन भी कुल सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से महाभियोग का प्रस्ताव पास कर देता है तो राष्ट्रपति महाभियोग पास होने की तिथि से दोषी करार हो जाता है और अपने पद से अलग हो जाता है। आज तक किसी भी राष्ट्रपति को महाभियोग कार्यवाही का सामना नहीं करना पड़ा।

(छ) **पुनर्निर्वाचन की व्यवस्था (Re-electon):** संवैधानिक रूप में किसी व्यक्ति के राष्ट्रपति चुने जाने पर कोई प्रतिबंध लागू नहीं है। एक व्यक्ति के बार-बार राष्ट्रपति निर्वाचित हो सकता है परन्तु आज तक कोई भी राष्ट्रपति दो बार से अधिक अपने पद पर नहीं रहा। केवल डॉ. राजेन्द्र प्रसाद देश के दो बार राष्ट्रपति चुने गए थे। डॉ. राधा कृष्णन, श्री वी.वी. गिरि, श्री संजीवा रेड्डी, ज्ञानी जैल सिंह, श्री वैकटारमन और डॉ. एस.डी. शर्मा और श्री के.आर. नारायणन केवल एक बार के लिए देश के राष्ट्रपति रहे। डॉ. जाकिर हुसैन और श्री एफ.ए. अहमद का अपने कार्यकाल के दौरान ही देहांत हो गया था और वह अपना 5 वर्ष का कार्यकाल भी पूर्ण न कर सके थे।

(ज) **राष्ट्रपति का उत्तराधिकारी (Presidential Succession):** यदि कार्यकाल पूरा होने से पहले ही राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाए या किसी अन्य कारण से राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाए तो उप-राष्ट्रपति देश का कार्यवाहक राष्ट्रपति बन जाता है। अमरीका के समान उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति नहीं बनता। नए राष्ट्रपति को पद रिक्त होने के 6 महीने के अन्दर-अन्दर निर्वाचित किया जाना होता है। नया राष्ट्रपति अपना पद संभालने की तिथि से लेकर

नोट

पूरे पाँच वर्ष के कार्यकाल के लिए चुना जाता है। यदि किसी स्थिति में राष्ट्रपति का पद रिक्त होने के समय उप-राष्ट्रपति का पद भी रिक्त हो तो भारत का मुख्य न्यायाधीश और उसकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय का सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश नए राष्ट्रपति के चुनाव तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में शपथ लेता है। 1969 में डॉ. जाकिर हुसैन की मौत हो जाने पर उप-राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि देश के कार्यवाहक राष्ट्रपति बने। इस वर्ष उनके द्वारा त्याग-पत्र देने के पश्चात् भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला ने कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में शपथ ली। वह पाँचवें राष्ट्रपति के चुनाव (1969) में निर्वाचित हुए, श्री वी.वी. गिरि के द्वारा राष्ट्रपति का पद संभालने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते रहे।

(**झ**) **वेतन और अन्य भत्ते (Emoluments)**: इस समय राष्ट्रपति का वेतन 1,10,000 रुपए मासिक है और सेवा मुक्त होने पर उनको 25,000 रुपए के प्रति महीना पेंशन मिलती है। वेतन के अतिरिक्त राष्ट्रपति को अनेकों भत्ते और मुफ्त शानदार निवास मिलता है। सेवा मुक्ति के पश्चात् एक व्यक्तिगत सचिव रखने के लिए 30,000 रुपए वार्षिक भत्ते के रूप में मिलते हैं तथा मुफ्त निवास स्थान और डॉक्टरी सहायता भी मिलती है। राष्ट्रपति के वेतन और अन्य भत्ते भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) से दिए जाते हैं और राष्ट्रपति के कार्यकाल के दौरान इनको घटाया नहीं जा सकता, परन्तु इन पर आयकर लगता है।

(**ञ**) **छूटें (Immunities)**: राष्ट्रपति अपने संवैधानिक अधिकारों और शक्तियों का प्रयोग करते समय किसी भी न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी नहीं होता। अपने कार्यकाल के दौरान राष्ट्रपति को गिरफ्तार या नजरबंद नहीं किया जा सकता और न ही उनके विरुद्ध फौजदारी कार्यवाही की जा सकती है। किसी सिविल केस में उनके विरुद्ध दावा दायर करने के लिए 2 महीने पहले नोटिस देना होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

1. भारत में राष्ट्रपति के पद के लिए न्यूनतम आय है।
2. वर्ष 1997 में भारत के राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिए जो दो उम्मीदवार खड़े हुए, उनमें एक के.आर. नारायणन थे और दूसरे थे।
3. वर्ष 1987 में 9वें राष्ट्रपति के चुनाव के समय निर्वाचन मंडल की संख्या थी।

5.3 राष्ट्रपति के चुनाव के ढंग की आलोचना (Criticism of the Method for Election of the President)

आलोचक राष्ट्रपति के चुनाव के ढंग में निम्नलिखित त्रुटियाँ बतलाते हैं—

1. **यह आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली नहीं है (It is not a System of Proportional Representation)**: आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का मूल तत्व यह होता है कि निर्वाचित पदों पर कम से कम तीन व्यक्तियों को निर्वाचित किया जाना होता है। निर्वाचित संस्था में निर्वाचित सदस्यों का प्रतिनिधित्व मतदाताओं द्वारा डाले गए मतों की अनुपात में होता है। इस प्रकार इसके लिए बहु-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र की आवश्यकता होती है, जिससे ही सीटों का आनुपातिक विभाजन हो सके। इसके विपरीत राष्ट्रपति के चुनाव में यह ढंग नहीं अपनाया गया। राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल एक ही व्यक्ति को राष्ट्रपति निर्वाचित किया जाता है। इसके लिए यह आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली नहीं है।

2. **जटिल प्रणाली (It is a very Complex Method)**: राष्ट्रपति की चुनाव प्रणाली बहुत जटिल है, जिसमें राज्यों के प्रत्येक एम.एल.ए. और प्रत्येक संसद सदस्य के मतों का हिसाब-किताब लगाया जाता है। मतों का आवश्यक अनुपात लेना प्राथमिकता बताना और किसी उम्मीदवार के द्वारा आवश्यक अनुपात न लेने की स्थिति में मतों का हस्तांतरण भी इस प्रणाली को जटिल बनाता है।

3. राज्यों के प्रतिनिधित्व में समानता की कमी (Lack of Uniformity in the Representation of States): संविधान में लिखा गया है कि जहाँ तक संभव हो सके, प्रतिनिधित्व में एकरूपता विश्वसनीय बनाई जाए। परन्तु एक एम.एल.ए. की वोट का हिसाब-किताब लगाने के लिए जो फार्मूला अपनाया गया है, वह अलग-अलग राज्यों के एम.एल.ए. की वोटों की कीमत में भिन्नता लाने का कारण बनता है। 1997 में राष्ट्रपति के चुनाव में मिजोरम के एक एम.एल.ए. की वोट की कीमत केवल 8 थी जबकि यू.पी. के एक एम.एल.ए. की वोट की कीमत 208 थी। इस प्रकार यू.पी. के भारी संख्या में संसद सदस्य और एम.एल.ए. सदैव ही राष्ट्रपति के चुनाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और चुनाव को प्रभावित करते हैं।

4. यह एकल हस्तांतरण योग्य मत प्रणाली नहीं है (It is not a single Transferable Vote System): संविधान इसको गलत रूप में एकल हस्तांतरण मत प्रणाली बताता है। वास्तव में यह ऐसी प्रणाली नहीं है। एकल हस्तांतरण मत प्रणाली केवल एक बहु-सदस्यीय चुनाव क्षेत्र में लागू की जा सकती है। जहाँ अतिरिक्त मतों के हस्तांतरण का प्रश्न पैदा होता है। राष्ट्रपति की चुनाव प्रणाली में केवल एक व्यक्ति का राष्ट्रपति के रूप में चुनाव करना होता है। इसके लिए इस चुनाव में एकल हस्तांतरणयोग्य वोट प्रणाली व्यावहारिक नहीं हो सकती। इसको वैकल्पिक वोट या प्राथमिकता वोट प्रणाली कहना अधिक उचित है।

5. प्राथमिकताएँ न दर्ज किया जाना संकट का कारण बन सकता है (Non-recording of Preferences can be a source of crisis): राष्ट्रपति चुनाव प्रणाली का एक मूल आधार यह है कि यदि प्रथम गणना (जो कि मतदाताओं की प्रथम पसंद की गणना होती है) में कोई एक भी उम्मीदवार मतों का निर्धारित कोटा प्राप्त करने में असफल रहता है तो सबसे कम मत लेने वाले उम्मीदवार को मुकाबले से बाहर कर दिया जाता है और उसके मतों को मतदाताओं के द्वारा दर्ज की गई दूसरी प्राथमिकताओं के आधार पर शेष उम्मीदवारों में बाँट दिया जाता है। परन्तु यदि मतदाताओं के द्वारा दूसरी प्राथमिकता दी ही न गई हो तो मतों के हस्तांतरण की मूल शर्त को पूरा करना असंभव हो सकता है। ऐसी संभावना भविष्य में होने वाले किसी भी राष्ट्रपति निर्वाचन में हो सकती है।

6. निर्वाचन-मंडल में रिक्त सीटों के बावजूद चुनाव करवाना (Holding of the election despite vacancies in the Electoral College): सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार राज्य विधान सभा/सभाएँ भंग होने के परिणामस्वरूप निर्वाचन-मंडल में कई सीटें खाली होने के बावजूद भी राष्ट्रपति का निर्वाचन पहले राष्ट्रपति का कार्य-काल पूर्ण होने से पहले किया जाना होता है। इस व्यवस्था का केन्द्र में सत्ताधारी पार्टी के द्वारा गलत प्रयोग किया जा सकता है। केन्द्रीय सत्ताधारी पार्टी जिस राज्य विधानसभा में उसके “विरोधियों” का बहुमत हो, को भंग करके एक विशेष उम्मीदवार के पक्ष में वोटों को प्रभावित कर सकती है।

7. भारत के मुख्य न्यायाधीश को कार्यवाहक राष्ट्रपति बनाने की व्यवस्था (Provision for making the Chief Justice of India as Acting-President): राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति का पद एक ही समय खाली होने की स्थिति में संविधान के अनुसार भारत का मुख्य न्यायाधीश और उसकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय का सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में शपथ लेता है। यह व्यवस्था संविधान के गणतंत्रवाद के दिशा-निर्देशों के अनुसार नहीं है। उप-राष्ट्रपति के पश्चात् लोकसभा के स्पीकर को उस का उत्तराधिकारी बनाया जाना चाहिए था।

8. महाभियोग कार्यवाही में मनोनीत सदस्यों का शामिल होना (Participation of nominated members in the Impeachment Proceedings): राष्ट्रपति की चुनाव प्रणाली में संविधान के अनुसार मनोनीत संसद सदस्यों और मनोनीत एम.एल.ए. का मतदाता के रूप में भाग लेने पर तो पाबन्दी है परन्तु इस मनोनीत सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग कार्यवाही में भाग लेने पर प्रतिबंध लागू नहीं किया गया है।

9. त्याग-पत्र के ढंग से सम्बन्धित मुश्किलें (Difficulties regarding the provisions providing for the system of Resignation): यदि राष्ट्रपति त्याग-पत्र देना चाहता है तो वह ऐसा उप-राष्ट्रपति को त्याग-पत्र भेजकर कर सकता है। परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया कि यदि उप-राष्ट्रपति का पद भी रिक्त है तो

नोट

राष्ट्रपति को किस को अपना त्याग-पत्र भेजना चाहिए। इसी प्रकार कार्यवाहक राष्ट्रपति को किस को त्याग-पत्र भेजना चाहिए? ऐसी स्थिति डॉक्टर जाकिर हुसैन की मृत्यु के पश्चात् 1969 में श्री वी.वी. गिरि के कार्यवाहक राष्ट्रपति बनने के पश्चात् पैदा हुई थी। बाद में जब श्री गिरि ने त्याग-पत्र देना था तो यह मुद्दा पैदा हुआ कि वे किसको त्याग-पत्र भेजें। भारत के अटारनी जनरल ने यह मत प्रकट किया कि कार्यवाहक उप-राष्ट्रपति को अपने त्याग-पत्र पर हस्ताक्षर करके राष्ट्रपति के सचिवालय में दे देना चाहिए तथा त्याग-पत्र की कापियाँ प्रधानमंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश को भेजी जानी चाहिए। भारत के गजट में इससे सम्बन्धित अधिसूचना तुरंत जारी की जानी चाहिए। यह कार्यवाही 1969 में व्यवहार में लायी गई परन्तु अभी यह मुद्दा कानून/संशोधन के द्वारा निर्धारित किया जाना शेष है।

10. बार-बार चुनाव जीत कर राष्ट्रपति पद प्राप्त करने पर प्रतिबन्ध की अनुपस्थिति (No bar on Re-election): संविधान इस सर्वोच्च प्रभुसत्ता सम्पन्न पद पर किसी व्यक्ति के बार-बार चुने जाने पर प्रतिबन्ध नहीं लगता। आलोचक चाहते हैं कि किसी एक व्यक्ति के राष्ट्रपति के पद पर बहुत अधिक लम्बे समय तक आसीन रहने को रोकने के लिए अमरीका के समान संवैधानिक रूप में किसी एक व्यक्ति द्वारा अधिक-से-अधिक दो बार पूरे कार्यकाल के लिए राष्ट्रपति निर्वाचित होने की व्यवस्था कर दी जानी चाहिए।

11. केवल जन्मजात नागरिक ही राष्ट्रपति का पद प्राप्त करने के योग्य होना चाहिए (Only Natural born Citizen should be eligible to become the President): संविधान में राष्ट्रपति के पद की योग्यता के सम्बन्ध में लिखा गया है कि वह भारत का नागरिक होना चाहिए परन्तु यह नहीं लिखा गया कि वह जन्म-जात नागरिक ही होना चाहिए। आज यह समय की मांग है कि भारत के एक जन्म-जात नागरिक को ही राष्ट्रपति का पद प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए और इस सम्बन्ध में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त आलोचना के बावजूद राष्ट्रपति चुनाव प्रणाली और राष्ट्रपति के पद से सम्बन्धित अन्य व्यवस्थाएँ संविधान लागू होने से लेकर अब तक सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। आज तक राष्ट्रपति का चुनाव सुखद वातावरण तथा व्यवस्थित ढंग से होता रहा है : डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (26 जनवरी 1950 से 13 मई, 1962 प्रथम और दूसरे राष्ट्रपति का चुनाव क्रमशः 1952 और 1957 में हुआ था), डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (13 मई, 1962 से 13 मई, 1967, राष्ट्रपति का तीसरा चुनाव 1962 में हुआ था), डॉ. जाकिर हुसैन (13 मई, 1967 से 13 मई 1969, चौथा राष्ट्रपति चुनाव 1967 में हुआ था), श्री वी.वी. गिरि (24 अगस्त, 1969 से 24 अगस्त 1974, राष्ट्रपति का पाँचवाँ चुनाव 1969 में हुआ था), श्री एफ.ए. अहमद (24 अगस्त 1974 से 11 फरवरी 1977, छठा राष्ट्रपति का चुनाव 1974 में हुआ था), श्री नीलम संजीवा रेड्डी (25 जुलाई, 1977 से 25 जुलाई, 1982, राष्ट्रपति का सातवाँ चुनाव 1977 में हुआ था), ज्ञानी जैल सिंह (25 जुलाई 1982 से 25 जुलाई 1987, 8वाँ राष्ट्रपति चुनाव 1982 में हुआ था)। श्री आर. वैकटारमन (25 जुलाई, 1987 से 25 जुलाई, 1992, नौवाँ राष्ट्रपति चुनाव जुलाई, 1987 में हुआ था)। डॉ. शंकर दयाल शर्मा (जुलाई, 1992 से 25 जुलाई, 1997, दसवाँ राष्ट्रपति 992 में हुआ था) और श्री वी. के.आर. नारायणन (25 जुलाई 1997 से 25 जुलाई 2002, 11 वाँ राष्ट्रपति का चुनाव 1997 में हुआ था)। इनके पश्चात् 25 जुलाई 2002 को श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भारत के राष्ट्रपति चुने गए। (12वाँ राष्ट्रपति चुनाव जुलाई 2002 में हुआ था)। 13वाँ राष्ट्रपति चुनाव जुलाई 2007 में हुआ था। श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल राष्ट्रपति चुनी गए। देश के इतिहास में यह पहली बार हुआ है, जब कोई महिला राष्ट्रपति चुनी गई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताइए।

4. राष्ट्रपति की चुनाव प्रणाली बहुत आसान है।
5. राष्ट्रपति का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से होता है।
6. डॉ. जाकिर हुसैन की मृत्यु के पश्चात् वी.वी. गिरि कार्यवाहक राष्ट्रपति बने थे।

5.5 राष्ट्रपति की शक्तियाँ और स्थिति (President's Power and Position)

नोट

भारत का राष्ट्रपति राज्य-अध्यक्ष और मुख्य कार्यपालिका होता है। अनुच्छेद 53 के अनुसार “संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास हैं और उसके द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग संविधान के अनुसार प्रत्यक्ष रूप में अपने द्वारा या अपने अधीन अधिकारियों के द्वारा किया जाएगा।” परन्तु एक संसदीय प्रणाली के राज्य-अध्यक्ष के रूप में वह नाममात्र शक्तियाँ रखता हुआ केवल एक संवैधानिक मुखिया की तरह ही कार्य करता है। 42वीं संशोधन के पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 74 में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति के लिए यह अनिवार्य है कि वह अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल, जिसका मुखिया प्रधानमंत्री है, के परामर्श अनुसार करेगा। परन्तु इस पाबंदी के बावजूद राष्ट्रपति भारत का सर्वोच्च पद संभालता है, वह भारतीय प्रभुसत्ता का व्यक्तिगत रूप से प्रतिनिधित्व करता है, सर्वोच्च स्थिति का उपभोग करता है और भारत की राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय राजनीतिक प्रणाली में राष्ट्रपति की भूमिका के बारे में चर्चा उसकी शक्तियों और उत्तरदायित्वों के बारे में संक्षिप्त ज्ञान लेने के पश्चात् ही की जा सकती है। उसकी शक्तियों की कुछ शीर्षकों के अधीन चर्चा हो सकती है।

राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्तियाँ (Executive Powers of the President)

अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की सभी कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति के पास हैं। राष्ट्रपति संघ की सुरक्षा सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति होता है। उसकी कार्यपालिका शक्तियों के बारे में चर्चा निम्नलिखित रूप में की जा सकती है:

(i) प्रशासकीय शक्तियाँ (Administrative Powers): राष्ट्रपति कार्यपालिका और प्रशासन का मुखिया होता है। राष्ट्रपति को यह भी कार्यपालिका शक्तियाँ अनुच्छेद 53 के अधीन मिली हुई हैं। अनुच्छेद 77 के अनुसार भारत सरकार की सभी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति के नाम पर किया जाता है। वह प्रधानमंत्री को नियुक्त करता है और प्रधानमंत्री के परामर्श पर अन्य मन्त्रियों को नियुक्त करता है। वह सरकार के कार्य को आसानी से चलाने के लिए नियम बनाता है। वह मन्त्रियों में विभागों का बँटवारा करता है और इस बँटवारे को वह बार-बार परिवर्तित कर सकता है। वह मन्त्रिमण्डल के द्वारा प्रशासन चलाए जाने को विश्वसनीय बनाना है। मन्त्री “राष्ट्रपति की इच्छा तक पद पर रहते हैं” अनुच्छेद 75 (2)। परन्तु राष्ट्रपति अपने सभी कार्य प्रधानमंत्री के परामर्श के अनुसार ही करता है। वह संसद में बहुमत प्राप्त पार्टी के नेता को प्रधानमन्त्री को नियुक्त करता है। यदि किसी भी पार्टी को बहुमत प्राप्त नहीं होता तो वह किसी संसद सदस्य जो उसकी दृष्टि में बहुसंख्या का समर्थन कर सकता है, के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल संगठित किए जाने को विश्वसनीय बनाता है। वह प्रधानमन्त्री को एक निर्धारित समय में सदन में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कह सकता है। जून, 1991 में राष्ट्रपति वेंकटरमन ने 10वीं लोकसभा में एक बड़े समूह के नेता कांग्रेस (आई) नेता श्री नरसिम्हा राव को प्रधानमन्त्री के रूप में मनोनीत किया और उनको एक महीने के अंदर बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा। श्री राव अपनी नियुक्ति समय संसद के किसी भी सदन के सदस्य नहीं थे। फिर भी श्री नरसिम्हा राव ने 14 जुलाई, 1991 को लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध कर दिया। मई, 1997 में राष्ट्रपति एस.डी. शर्मा ने एक सबसे बड़ी पार्टी के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी (भाजपा) को प्रधानमन्त्री के रूप में मनोनीत किया परन्तु 12 दिनों के बाद उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया क्योंकि उन्होंने देखा कि लोकसभा में बहुमत जुटा सकना उनके लिए संभव नहीं था। इसके पश्चात् राष्ट्रपति ने 13 दलों के साझे गठबन्धन के नेता श्री देवेगौड़ा को सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया, जिनको कांग्रेस (आई) और सी.पी.एम. ने बाहर से समर्थन दिया था। श्री एच.डी. देवेगौड़ा ने संसद में अपना बहुमत सिद्ध कर दिया परन्तु वह केवल 10 महीने ही बहुसंख्या का समर्थन अपने साथ रख सके। 31 मार्च, 1997 को कांग्रेस ने प्रधानमन्त्री श्री देवेगौड़ा के नेतृत्व वाली साझे गठबन्धन सरकार से समर्थन वापस ले लिया। परिणामस्वरूप में 12 अप्रैल 1997 को श्री गुजराल ने प्रधानमन्त्री पद संभाला और उनकी सरकार 24 घंटे के अंदर लोकसभा में विश्वास का वोट प्राप्त करने में सफल रही। परन्तु श्री आई.के. गुजराल की

नोट

सरकार भी केवल कुछ महीनों तक पद पर रह सकी और नवम्बर, 1997 तक कांग्रेस के द्वारा समर्थन वापस लेने पर श्री आई.के. गुजराल को त्याग-पत्र देना पड़ा।

मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा के चुनाव हुए, परन्तु इन चुनावों में भी किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत न मिला। भाजपा के नेतृत्व में बने गठबन्धन ने सबसे अधिक सीटें (252) प्राप्त की और राष्ट्रपति ने भाजपा नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया और 28 मार्च, 1998 को भाजपा की सरकार ने लोकसभा में बहुमत प्राप्त कर लिया। परन्तु यह सरकार भी अप्रैल, 1999 तक ही सत्ता में रह सकी। 14 अप्रैल, 1999 को ए.आई.ए.डी.एम.के. (AIADMK) ने इस सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया और 17 अप्रैल, 1999 को यह सरकार लोकसभा में एक वोट के अन्तर से विश्वास मत प्राप्त करने में असफल रही। इसके पश्चात् राष्ट्रपति ने यह अनुभव किया कि कोई भी पार्टी या गठबन्धन नई सरकार बनाने की क्षमता नहीं रखता था। इसलिए उन्होंने 12वीं लोकसभा भंग कर दी और वाजपेयी सरकार का नई सरकार के गठन तक कार्यवाहक सरकार (Caretaker Government) के रूप में बने रहने का निर्देश दिया। अक्टूबर 1999 में 13वीं लोकसभा में राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन (NDA) ने बहुमत प्राप्त कर लिया और राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन ने इसके नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। यह सरकार अप्रैल 2004 तक सत्ता में रही। 14वीं लोकसभा के चुनावों (मार्च-अप्रैल 2004) में किसी एक दल अथवा गठबन्धन को बहुमत तो प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु कांग्रेस को तथा इसके गठबन्धन को सबसे अधिक सीटें प्राप्त हुईं। फिर CPM, CPI तथा कुछ अन्य दलों ने कांग्रेस के नेतृत्व वाले गठबन्धन को बाहर से समर्थन देने का निर्णय लिया। राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने इस गठबन्धन को सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया। 22 मई, 2004 को प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यू.पी.ए. सरकार ने सत्ता सम्भाल ली तथा बाद में लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध कर दिया।

इस प्रकार राष्ट्रपति उस नेता को प्रधानमंत्री के रूप में मनोनीत करता है, जिसको लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। ऐसा नेता चाहे संसद का सदस्य न भी हो या संसद के किसी भी सदन का सदस्य हो। तो भी राष्ट्रपति उसको प्रधानमंत्री नियुक्त कर सकता है। परन्तु संसद का सदस्य न होने की स्थिति में उसको 6 महीने के अंदर लोकसभा या राज्यसभा में से किसी एक सदन का सदस्य बनना होता है। असफल रहने पर वह प्रधानमंत्री के पद पर नहीं रह सकता।

अनुच्छेद 78 के अधीन प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह प्रशासन से सम्बन्धित सभी मामलों की जानकारी राष्ट्रपति को दे। राष्ट्रपति कोई भी जानकारी लेने के लिए प्रधानमंत्री को कह सकता है। राष्ट्रपति के द्वारा इस अधिकार के प्रयोग के कारण प्रधानमंत्री से टकराव वाली स्थिति पैदा हो सकती है। जैसा कि 1987 के आरंभ में घटित हुआ था जब तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने राष्ट्रपति के जानकारी मांगने के अधिकार पर आपत्ति जताई थी और उसकी सरकार ने तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह को बोफोर्स तोपों से सम्बन्धित कुछ जानकारी देने से इंकार कर दिया था। राष्ट्रपति ने स्टैंड लिया था कि उसका उत्तरदायित्व था कि वह ली गई शपथ के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 78 की व्यवस्थाएँ स्थापित रखे और इनकी रक्षा करे। इसके लिए उनके लिए यह आवश्यक हो जाता था कि वह केन्द्रीय प्रशासन से सम्बन्धित सभी मामलों से जुड़े रहें। परन्तु सभी ब्यौरे नहीं। परन्तु राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह और प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के बीच टकराव में दोनों का अहंकार अधिक था और इस टकराव में संवैधानिक व्यवस्थाओं को लेकर विचारों में गंभीर मतभेदों का योगदान कम था। अन्य राष्ट्रपतियों और प्रधानमंत्रियों ने संसदीय प्रणाली की मांग और राष्ट्रपति के ऊँचे पद के मान-सम्मान को सफलतापूर्वक बनाए रखा। इस समय भी राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच सक्रिय और अच्छे सम्बन्ध स्थापित हैं।

(ii) नियुक्तियाँ करने की शक्तियाँ (Appointment-making Powers): सभी प्रमुख नियुक्तियाँ राष्ट्रपति के द्वारा की जाती हैं। वह प्रधानमंत्री को नियुक्त करता है और उसके परामर्श पर केन्द्र सरकार के अन्य मंत्रियों, भारत के मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, राज्यों के राज्यपालों, लैफ्टीनैंट गवर्नरों, केन्द्र शासित क्षेत्रों के मुख्य कमिश्नरों, भारत के अटारनी जनरल, कम्पट्रोलर और आडीटर जनरल, यू.पी.एस.सी. के चेररमैन और सदस्यों, निर्वाचन आयोग, अन्य संवैधानिक कमिश्नों और अन्य देशों में भारतीय

नोट

राजदूतों, हाई कमिश्नरों, वाणिज्यक दूतों तथा अन्य दूतों की नियुक्ति करता है। सभी उच्च-स्तरीय नियुक्तियाँ राष्ट्रपति के द्वारा प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के परामर्श पर की जाती हैं। भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के समय वह सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से भी परामर्श करता है, जबकि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति समय वह भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति समय राज्यपाल और सम्बन्धित राज्य के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करता है।

(iii) विदेशी सम्बन्धों में भूमिका (Role in Foreign Relations): देश का मुखिया होने के नाते राष्ट्रपति भारत के विदेशों में स्थित राजदूतों और दूतों को परिचय पत्र (Credentials) देता है और वह भारत में विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है। सभी कूटनीतिक गतिविधियाँ उसके नाम पर होती हैं। भारत सरकार के द्वारा बहुपक्षीय और द्विपक्षीय सभी सन्धियाँ और समझौते राष्ट्रपति के नाम पर किए जाते हैं। नए देशों से कूटनीतिक सम्बन्ध राष्ट्रपति के नाम पर ही स्थापित किए जाते हैं।

(iv) सशस्त्र सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति के रूप में कार्य (Functions as Supreme Commander of the Armed Forces): अनुच्छेद 53 में दर्ज है कि राष्ट्रपति देश की सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च कमांडर है। वह सुरक्षा सेनाओं से सम्बन्धित सभी उच्च-स्तरीय नियुक्तियाँ और पदोन्नतियाँ करता है परन्तु वह इन सभी शक्तियों का प्रयोग कानून और संविधान के अनुसार करता है। वह शान्ति और युद्ध के दौरान वीरता और शानदार सेवा के लिए सभी सैनिक सम्मान और उपाधियाँ प्रदान करता है।

(v) केन्द्रशासित क्षेत्रों और अनुसूचित तथा कबीली क्षेत्रों के प्रशासन से सम्बन्धित शक्तियाँ (Powers regarding the administration of Union Territories and Scheduled Areas): संघीय क्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति के अधीन होता है। अनुच्छेद 243 राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह केन्द्र शासित क्षेत्रों का प्रशासन राज्यपालों या मुख्य कमिश्नरों या अपने द्वारा मनोनीत किसी अन्य सत्ताधारी के द्वारा चलाए। वह किसी संघीय क्षेत्र का प्रबंध चलाने के लिए पड़ोसी राज्य के राज्यपाल को भी कह सकता है। ऐसा राज्यपाल सदैव ही राष्ट्रपति के निर्देशों के अनुसार कार्य करता है। राष्ट्रपति के पास यह भी अधिकार है कि वह अनुसूचित कबीली क्षेत्रों का प्रशासन चलाए। वह राज्यों के बीच झगड़ों के निपटारे के लिए पूर्ण रूप से जांच करने पर परामर्श देने के लिए अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना कर सकता है। राष्ट्रपति अंडमान और निकोबार टापुओं के संघीय क्षेत्रों के शान्ति, उन्नति और उनके अच्छे प्रशासन के लिए नियम बना सकता है।

राष्ट्रपति और कानून-निर्माण (President and Law-Making)

संविधान के अनुसार संघ की कानूनी शक्तियाँ संसद के पास हैं और राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों में से किसी का भी सदस्य नहीं होता। परन्तु संविधान के अनुच्छेद 79 में दर्ज है कि “संघ की संसद राष्ट्रपति और दोनों सदनों पर आधारित होगी।” इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति संसद का सदस्य बने बिना ही संसद का एक अटूट भाग होता है और उसके पास विशाल वैधानिक शक्तियाँ होती हैं। राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के बिना संसद के द्वारा पास किया गया कोई भी बिल कानून नहीं बन सकता।

राष्ट्रपति के पास निम्नलिखित वैधानिक शक्तियाँ हैं—

1. राष्ट्रपति के पास यह शक्ति है कि वह संसद या इसके किसी एक सदन का अधिवेशन बुला सकता है और संसद के अधिवेशन को लम्बे समय के लिए उठा सकता है परन्तु संसद के किसी भी अधिवेशनों के बीच 6 महीने से अधिक का अन्तर नहीं हो सकता।
2. राष्ट्रपति 5 वर्षों का कार्यकाल पूर्ण होने से पहले लोकसभा भंग कर सकता है।
3. यदि किसी बिल/मुद्दे पर संसद के दोनों सदनों के बीच बिल या विषय पर मतभेद पैदा हो जाए तो राष्ट्रपति दोनों सदनों का साझा अधिवेशन बुला सकता है।
4. राष्ट्रपति किसी भी समय संसद के किसी या दोनों सदनों को सम्बोधन कर सकता है।

नोट

5. राष्ट्रपति प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् संसद के पहले अधिवेशन के अवसर पर संसद के दोनों सदनों को सम्बोधित करता है और प्रत्येक वर्ष संसद के प्रथम अधिवेशन को अपने भाषण से आरंभ करता है। वह प्रत्येक वर्ष पहले दिन नए अधिवेशन को सम्बोधित करता है और उनका भाषण सरकार की नीतियों का ब्यौरा होता है। यह भाषण प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल के द्वारा तैयार किया गया होता है।
6. यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि एंग्लो-इंडियन समुदाय को सदन में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला तो वह इस समुदाय के दो सदस्य लोकसभा में मनोनीत कर सकता है।
7. राष्ट्रपति कला, विज्ञान, साहित्य और समाज सेवा के क्षेत्र से सम्बन्धित 12 व्यक्तियों को राज्यसभा में मनोनीत कर सकता है।
8. राष्ट्रपति के पास यह शक्ति है कि वह संसद के किसी भी सदन को संदेश भेज सकता है। यह संदेश: (1) सदन में चर्चा अधीन किसी बिल या (2) अन्य कोई विषय जिस पर सदन का विचार-विमर्श आवश्यक हो, से सम्बन्धित हो सकता है। राष्ट्रपति के द्वारा भेजे ऐसे संदेश पर सम्बन्धित सदन के लिए विचार करना आवश्यक होता है।
9. धन बिल राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेकर ही लोकसभा में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।
10. किसी राज्य के पुनर्गठन या सीमाओं या नामों के परिवर्तन से सम्बन्धित बिल केवल राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से ही संसद में पेश किए जा सकते हैं।
11. राष्ट्रपति राज्य के उन सभी ऐसे बिलों की स्वीकृति या स्वीकृतियाँ देता है, जिनको राज्यपाल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रखता है।
12. संसद के द्वारा पास किया कोई भी बिल राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के पश्चात् ही कानून बनता है। राष्ट्रपति ऐसे किसी बिल पर अपनी सहमति रोक सकता है। मंत्रिमंडल राष्ट्रपति की स्वीकृति लेने या राष्ट्रपति के संदेश से बिल संसद को वापस भेज देता है (अनुच्छेद 111)। 1988 में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने इंडियन पोस्टल ऐक्ट (संशोधन) बिल को इसके विवादग्रस्त तथ्यों के कारण रोक लिया था। सरकार ने अनुच्छेद 111 के अधीन कार्यवाही पर बल नहीं दिया था। इसमें मालूम होता है कि यद्यपि राष्ट्रपति सदैव ही संसद के द्वारा पास किए बिल के सम्बन्ध में मंत्रिमंडल के परामर्श को मानता है परन्तु सभी मामलों में उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं होता। राष्ट्रपति किसी भी साधारण बिल को पुनः विचार-विमर्श के लिए संसद को वापस भेज सकता है परन्तु यदि संसद उस बिल को पुनः पारित कर देती है तो राष्ट्रपति उसको दूसरी बार रोक नहीं सकता। उसको ऐसे बिल पर हस्ताक्षर करने ही होते हैं।
13. असाधारण स्थिति में जैसे प्रधानमंत्री एच.डी. देवगौड़ा की सरकार, जिसने 1997-1998 का बजट पेश किया था और केन्द्रीय संसद के द्वारा यह बजट पास करने से पहले ही यह सरकार गिर गई थी, तो राष्ट्रपति ने लोकसभा के स्पीकर पी.ए. संगमा और अन्य दलों के नेताओं से विचार-विमर्श के पश्चात् ऐसा वातावरण तैयार किया, जिससे बजट पेश करने के पश्चात् परन्तु बजट पास करने से पहले बी.जे.पी. की सरकार गिर पड़ी थी और राष्ट्रपति ने संसद को निर्देश दिया था कि बजट को शीघ्र पास किया जाए और संसद के द्वारा बजट होने के पश्चात् ही राष्ट्रपति ने 25 अप्रैल, 1999 को संसद अर्थात् लोकसभा को भंग किया था।
14. संसद के दो अधिवेशनों के अन्तराल के दौरान राष्ट्रपति अध्यादेश (आर्डिनैंस) जारी कर सकता है, जिसकी शक्ति और प्रभाव संसद के द्वारा पास किए कानून जैसा होता है। राष्ट्रपति के द्वारा ऐसा अध्यादेश मंत्रिमंडल के परामर्श पर जब संसद का अधिवेशन न चल रहा हो तुरंत वैधानिक आवश्यकता पूर्ण करने के लिए जारी किया जाता है। ऐसा प्रत्येक अध्यादेश संसद के नए अधिवेशन से संसद के दोनों सदनों के सामने रखना पड़ता है। संसद के अधिवेशन के 6 सप्ताह बीतने और

या इससे पहले यदि दोनों सदनों की स्वीकृति किसी अध्यादेश को नहीं मिलती तो वह समाप्त हो जाता है। क्योंकि संसद के दो अधिवेशनों में अधिक-से-अधिक 6 महीने का अन्तराल हो सकता है इसके लिए राष्ट्रपति के द्वारा जारी अध्यादेश 6 महीने जमा 6 सप्ताह अर्थात् साढ़े सात महीने लागू रह सकता है। राष्ट्रपति अध्यादेश को किसी भी समय वापस ले सकता है।

राष्ट्रपति के द्वारा इन सभी शक्तियों का प्रयोग सदैव प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार किया जाता है।

राष्ट्रपति की ऐच्छिक शक्तियाँ (Discretionary Powers of the President)

1. जब लोकसभा में किसी दल को बहुमत नहीं मिलता, कोई गठबंधन या अन्य कोई बहुमत प्राप्त गठबंधन भी न हो या न बन सके या बहुमत के समर्थन वाला कोई भी उम्मीदवार न हो जिसको प्रधानमंत्री नियुक्त किया जा सकता हो, तो राष्ट्रपति अपनी इच्छा के अनुसार कार्यवाही कर सकता है और प्रधानमंत्री की नियुक्ति के लिए लोकसभा में अकेली सबसे अधिक सीटों वाली पार्टी के नेता को सरकार-निर्माण का निमंत्रण दे सकता है। जून, 1991 में राष्ट्रपति ने कांग्रेस संसदीय पार्टी के द्वारा निर्वाचित नेता श्री पी.वी. नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री मनोनीत किया था। उस समय जून, 1991 के आम चुनावों में कांग्रेस 225 सीटें जीत कर एक बड़े दल के रूप में सामने आई थी। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति ने श्री नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री नियुक्त कर उन्हें अपना लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने का आदेश दिया। मार्च, 1998 में भी राष्ट्रपति ने लोकसभा में सबसे बड़े गठबंधन के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को नियुक्त किया और उसको लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा। इसी प्रकार जब 14 अप्रैल, 1999 को ए.आई. ए.डी.एम.के. (AIADMK) ने भाजपा गठबंधन सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया तो राष्ट्रपति जी ने प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी को लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त करने के लिए कहा। जब 17 अप्रैल, 1999 को यह सरकार विश्वास मत प्राप्त करने में असफल रही तो राष्ट्रपति जी ने एक नई सरकार बनाए जाने के प्रयास किया परन्तु जब यह असफल हो गई तो राष्ट्रपति ने 12वीं लोकसभा भंग कर दी और भाजपा गठबंधन सरकार को अन्तरिम सरकार के रूप में बने रहने का आदेश दिया। इस प्रकार जब लोकसभा में किसी दल को बहुमत न मिले तो राष्ट्रपति सरकार बनाने के सम्बन्ध में अपने विवेक से कार्य ले सकता है। भारतीय राजनीतिक प्रणाली में त्रिशंकु लोक सभाओं (Hung Parliaments) के युग के आरंभ ने सरकार बनाने की प्रक्रिया में राष्ट्रपति की शक्ति और भूमिका में वृद्धि की है।
2. दूसरा क्षेत्र वह है जब राष्ट्रपति लोकसभा भंग करने के लिए कुछ परिस्थितियों में अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकता है (अनुच्छेद 85)। साधारण समय में जब बहुमत के समर्थन वाला प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करने का परामर्श देता है तो राष्ट्रपति के पास अन्य कोई मार्ग नहीं होता। परन्तु जब विशेष स्थिति के (जैसे नवम्बर, 1990 में वी.पी. सिंह का मामला) समय में जब प्रधानमंत्री को बहुमत नहीं मिला होता तो यह राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह ऐसे प्रधानमंत्री का परामर्श स्वीकार अथवा रद्द करे। इस मामले में राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन ने अपनी इच्छानुसार कार्यवाही की और जनता दल (एस) के नेता श्री चन्द्र शेखर को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया था क्योंकि कांग्रेस के द्वारा बाहर रह कर चन्द्र शेखर सरकार का समर्थन करने का निर्णय किया गया था। जब फरवरी 1991 में श्री चन्द्र शेखर ने राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करने की सिफारिश की तो राष्ट्रपति ने सबसे बड़े समूह कांग्रेस के नेता को सरकार बनाने का निमंत्रण देकर नई सरकार बनाए जाने की संभावनाओं की जाँच करने का निर्णय लिया परन्तु नेता श्री राजीव गांधी के द्वारा सरकार बनाने से इंकार किए जाने के कारण राष्ट्रपति लोकसभा भंग करने के लिए विवश हो गए और उन्होंने श्री चन्द्र शेखर को कार्यवाहक प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करते रहने के लिए कहा और नए चुनाव करवाने का आदेश दिया। मई-जून, 1991 में 10वीं लोकसभा के लिए चुनाव हुए। ऐसी ही स्थिति नवम्बर, 1997 में उस समय पैदा हो गई जब प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने त्याग-पत्र दे दिया। इस अवसर पर राष्ट्रपति ने लोकसभा भंग कर दी गई और 12वीं लोकसभा चुने जाने का आदेश

नोट

दिया। इस प्रकार फिर अप्रैल, 1999 में राष्ट्रपति ने 12वीं लोकसभा भंग करने का निर्णय लिया, चाहे बी. जे.पी. गठबंधन यह चाहता था कि उसको दुबारा एक नई सरकार बनाने का अवसर मिले, फरवरी 2004 में राष्ट्रपति ने एन.डी.ए. सरकार में प्रधानमंत्री वाजपेयी के परामर्श अनुसार 13वीं लोकसभा कार्यकाल पूर्ण होने से लगभग 1 वर्ष पहले ही भंग कर दी। इस प्रकार लोकसभा को भंग करने के निर्णय के सम्बन्ध में राष्ट्रपति अपनी इच्छा के अनुसार कार्य ले सकता है, परन्तु केवल उस स्थिति में जबकि सरकार को लोकसभा में बहुमत प्राप्त न हो।

इन दो अपवादों के अतिरिक्त राष्ट्रपति अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार ही करता है।

राष्ट्रपति की वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers of the President)

राष्ट्रपति के पास कुछ वित्तीय शक्तियाँ भी हैं—

1. कोई भी धन बिल राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति बिना संसद में पेश किया जा सकता।
2. प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरंभ में राष्ट्रपति द्वारा संसद के सामने वार्षिक वित्तीय लेखा (बजट) रखा जाता है जिसमें आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए केन्द्र सरकार की आय और खर्च के अनुमानों का विवरण होता है।
3. राष्ट्रपति द्वारा आकस्मिक व्ययों की निधि (Contingency Fund of India) पर नियंत्रण रखा जाता है। राष्ट्रपति के पास यह अधिकार है कि वह आकस्मिक व्ययों को पूर्ण करने के लिए इस फंड में से खर्च करने की आज्ञा दे।
4. समय-समय पर राष्ट्रपति वित्त आयोग नियुक्त करता है, जो केन्द्र और राज्यों के बीच राजस्व/आय के बंटवारे के बारे में सिफारिशें करता है।

राष्ट्रपति की न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers of the President)

राज्य के मुखिया के रूप में राष्ट्रपति निम्नलिखित मामलों में माफी दे सकता है, दण्ड माफ कर सकता है या बदल सकता है या घटा सकता है या सामान्य माफी दे सकता है—

1. वह अपराधी जिनको मृत्यु दण्ड दिया गया हो।
2. संघीय और साझी सूची के अधीन बनाए गए कानूनों के विरुद्ध किए अपराधों के सम्बन्ध में, और
3. सैनिक न्यायालय के द्वारा दिए गए दण्ड के सभी मामले।

दया की सभी अपीलों से निपटते समय राष्ट्रपति स्वेच्छा से कार्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति किसी भी कानूनी मामले या सार्वजनिक महत्त्व के किसी बिल के सम्बन्ध में भारत के सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श ले सकता है। सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति द्वारा मांगे गए परामर्श देने के लिए पाबंद होता है (अनुच्छेद 43)। परन्तु राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा दिए गए परामर्श को स्वीकार करने के लिए पाबंद नहीं होता।

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers of the President)

संविधान के 18वें भाग में संकटकालीन व्यवस्थाएँ हैं और यह राष्ट्रपति को विशेष संकटकाल स्थिति से निपटने की शक्तियाँ देती हैं। इन्हें राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ कहा जाता है। तीन प्रकार के संकटकाल की स्थितियाँ सूचीबद्ध की गई हैं—(i) अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रीय संकटकाल अर्थात् युद्ध या बाहरी आक्रमण या देश में आंतरिक सशस्त्र विद्रोह के कारण उत्पन्न संकटकाल; (ii) अनुच्छेद 356 के अधीन किसी राज्य या कुछ राज्यों में सवैधानिक संकटकाल अर्थात् राज्य में सवैधानिक मशीनरी फेल हो जाने के कारण पैदा हुए संकटकाल की स्थिति और (iii) अनुच्छेद 360 के अधीन वित्तीय संकटकाल अर्थात् देश के वित्तीय संकट के रूप में पैदा हुए संकटकाल की स्थिति।

नोट

इन तीन प्रकार के संकटकालों में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह संकटकाल की स्थिति की घोषणा करे और संकटकाल की स्थिति से निपटने के लिए उचित कदम उठाए। उदाहरणस्वरूप यदि अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल स्थिति की घोषणा की जाती है तो संविधान की संघीय व्यवस्थाएँ स्थगित हो जाती हैं, केन्द्र सरकार अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग से किसी भी राज्य सरकार को कोई भी निर्देश दे सकती है। केन्द्र सरकार को यह अधिकार मिल जाता है कि वह राज्य-सूची वाले विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाए और केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों को संशोधित किया जा सकता है। जब किसी राज्य में अनुच्छेद 356 के अधीन संकटकाल की स्थिति की घोषणा की जाती है तो सम्बन्धित राज्य राष्ट्रपति शासन के अधीन आ जाता है। राज्य का राज्यपाल वास्तविक कार्यपालिका बन जाता है और राज्य मंत्रिमंडल/सरकार भंग हो जाती है। राज्यपाल राष्ट्रपति की ओर से राज्य का प्रशासन चलाता है और केन्द्र सरकार के सभी दिशा-निर्देश लागू करता है। अनुच्छेद 360 के अधीन वित्तीय संकटकाल की स्थिति के मामले में राष्ट्रपति देश की वित्तीय स्थिरता के लिए राज्यों को कोई भी निर्देश दे सकता है। वह सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों सहित सरकारी कर्मचारियों के वेतन और भत्तों में कटौती करने का आदेश दे सकता है। वह आदेश कर सकता है कि राज्य विधानपालिकाओं के द्वारा पास करने के पश्चात् सभी वित्तीय बिल उसकी स्वीकृति के लिए आरक्षित रखे जाएँ।

संवैधानिक रूप में तीन प्रकार के संकटकालों से निपटने के लिए राष्ट्रपति के पास व्यापक शक्तियाँ हैं, परन्तु ऐसी शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने के लिए अनेकों संवैधानिक प्रतिबंध लगाए गए हैं। राष्ट्रपति संकटकालीन शक्तियों का प्रयोग भी प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के परामर्श से ही करता है। इस प्रकार भारत के राष्ट्रपति के पास कार्यपालिका, वैधानिक, वित्तीय, न्यायिक और संकटकालीन शक्तियाँ हैं। (इस विषय का विस्तृत वर्णन आगे दिया गया है।)

टास्क: राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों से क्या अभिप्राय है?

राष्ट्रपति की स्थिति और भूमिका (Position and Role of the President)

राष्ट्रपति की शक्तियों पर विचार करने के पश्चात् राष्ट्रपति की स्थिति का मूल्यांकन करना बहुत सरल हो जाता है। प्रत्यक्ष रूप में राष्ट्रपति की शक्तियाँ बहुत अधिक और यहाँ तक कि तानाशाही (संकटकालीन शक्तियाँ) प्रतीत होती हैं। परन्तु गहराई से जाँच करने पर पता लगता है कि भारत का राष्ट्रपति एक नाम-मात्र का संवैधानिक मुखिया है, जो लगभग सभी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार ही करता है। संविधान के 42वें संशोधन में स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के परामर्श को स्वीकार करने के लिए पाबंद होता है। परन्तु यह व्यवस्था के बावजूद राष्ट्रपति एक शक्तिहीन मुखिया या मंत्रिमंडल के हाथों में रबड़ की मोहर नहीं है। 44वें संशोधन के पश्चात् राष्ट्रपति के पास यह अधिकार है कि वह मंत्रिमंडल द्वारा दिए गए परामर्श और सामान्य तौर पर या अन्य दृष्टिकोण से पुनः विचार करने के लिए कह सकता है। राष्ट्रपति का यह अधिकार विशेष महत्त्व रखता है और इसका मंत्रिमंडल पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मंत्रिमंडल के द्वारा पुनः विचार के पश्चात् दिया गया परामर्श राष्ट्रपति को मानना ही पड़ता है, परन्तु राष्ट्रपति इस अधिकार के प्रयोग द्वारा मंत्रिमंडल की कार्यवाही को प्रभावित कर सकता है। राष्ट्रपति के पुनः विचार के निर्देश को एक हल्का-सा परामर्श या एक चेतावनी के रूप में लिया जा सकता है। राज्य के मुखिया के रूप में राष्ट्रपति को प्रभुसत्ता सम्पन्न स्तर प्राप्त है और इस विशेषता के कारण वह भारत की राजनीतिक प्रणाली में उच्च स्तरीय, अर्थपूर्ण भूमिका निभाता है।

संविधान निर्माण सभा स्पष्ट रूप में राष्ट्रपति को राज्य का संवैधानिक मुखिया बनाना चाहती थी क्योंकि भारत में संसदीय प्रणाली के चलन के लिए ऐसा करना आवश्यक था। संविधान निर्माण सभा के प्रधान डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी स्वीकार किया कि राष्ट्रपति देश का संवैधानिक मुखिया होगा। संविधान निर्माण सभा में बोलते हुए डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि, “राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटिश संविधान के अधीन बादशाह जैसी स्थिति के समान है। वह राज्य का मुखिया है परन्तु कार्यपालिका का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है परन्तु राष्ट्र पर शासन नहीं

नोट

करता।” भारत का राष्ट्रपति सामान्य रूप में मंत्रियों का परामर्श मानने के लिए पाबंद होगा। वह उनके परामर्श के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकेगा और न ही उनके परामर्श के बिना कुछ कर सकेगा तो भी संविधान निर्माण सभा ने यह निर्णय लिया कि स्पष्ट रूप में यह कहा न जाए कि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल का परामर्श मानने के लिए पाबंद होगा। परन्तु संविधान की इस चुप्पी को 42वें संशोधन के द्वारा समाप्त कर दिया गया और यह कहा गया कि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कार्य कर रही सरकार का परामर्श मानने के लिए पाबंद होगा।

संविधान के लागू होने के पश्चात् भारत के राष्ट्रपति ने सामान्य रूप में राज्य के एक संवैधानिक अध्यक्ष तथा नाममात्र कार्यपालक मुखिया के रूप में अपनी स्थिति को स्वीकार किया है। परन्तु 1960 में देश के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने नई दिल्ली में भारतीय कानून संस्थान पर नींव पत्थर रखते समय अपने भाषण में राष्ट्रपति के भारतीय संवैधानिक प्रणाली में वास्तविक कार्यों और शक्तियों का मुद्दा उठाया। उनके ऐसे विचार प्रधानमंत्री नेहरू के विचारों से कुछ विरोध रखते थे। उन्होंने स्पष्ट रूप में कहा कि “हमने अपने राष्ट्रपति को वास्तव में कोई शक्ति नहीं दी परन्तु उसकी स्थिति एक सत्ता और स्वाभिमान वाली बना दी है।” सर्वोच्च न्यायालय ने राम जीवाया बनाम पंजाब राज्य (1955) के मामले में अपने निर्णय में कहा कि “राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक या संवैधानिक मुखिया है और वास्तविक कार्यपालिका शक्तियाँ मंत्रिमंडल के पास हैं।”

संविधान के लागू होने के बाद राष्ट्रपति की नाममात्र की शक्तियों की स्थिति के बारे में स्पष्ट रूप में व्यवस्था संविधान में न शामिल किए जाने के कारण इस विचार को बल मिला कि राष्ट्रपति कार्यपालिका शक्तियों के प्रयोग से सम्बन्धित एक सक्रिय भूमिका निभा सकता था। संविधान निर्माण सभा की मसौदा समिति के एक भूतपूर्व सदस्य श्री के.एम. मुंशी ने 1963 में घोषणा की कि हमने राष्ट्रपति को फ्रांसीसी राष्ट्रपति के समान एक नाम-मात्र का मुखिया नहीं बनाया। उसको किसी भी ओर से खड़ी की गई रुकावटों के विरुद्ध एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में कार्यवाही करके संविधान की रक्षा करनी होती है। इस विचारधारा के अन्य समर्थकों के अनुसार भारत के राष्ट्रपति के पास अध्यादेश जारी करने, संकटकाल की स्थिति की घोषणा करने और मौलिक अधिकारों को स्थगित करने जैसी कुछ वास्तविक शक्तियाँ हैं। वह संसद के द्वारा पास किए कुछ विशेष विवादग्रस्त बिलों को अपनी स्वीकृति देने से रोक सकता है। वह आम जनता से प्रार्थना-पत्र प्राप्त कर सकता है और संसद को संदेश भेज सकता है आदि। राज्य के एक निर्वाचित मुखिया के रूप में राष्ट्रपति की स्थिति और दर्जा ब्रिटेन के पैतृक बादशाह से भिन्न है और भारतीय राष्ट्रपति को केवल नाम-मात्र मुखिया के रूप में लेना पूर्ण रूप से ठीक नहीं।

परन्तु इस विचार का बहुत-से अन्य विद्वानों, राजनीतिक नेताओं और संवैधानिक विशेषज्ञों के द्वारा समर्थन नहीं किया गया। श्री मोरारजी देसाई ने एक बार कहा था, “यह सोचना गलत है कि हमारे राष्ट्रपति को एक प्रशासक की कोई वास्तविक शक्ति प्राप्त है। साधारण समय में उसके पास कुछ भी शक्ति नहीं है। संविधान के अधीन वह ब्रिटिश बादशाह के समान संवैधानिक मुखिया ही है।” संसदीय प्रणाली अपनाए जाने से स्पष्ट पता लगता है कि राष्ट्रपति को सदैव मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार कार्य करना पड़ेगा। यहाँ तक कि संकटकालीन स्थिति में भी वह मंत्रिमंडल के परामर्श को उपेक्षित नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में 42वें संशोधन में स्पष्ट किया गया है जो पहले स्पष्ट नहीं था। भारत का राष्ट्रपति राज्य के संवैधानिक और नाममात्र मुखिया के रूप में कार्य करने के लिए पाबंद है। उसको प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के द्वारा दिए गए परामर्श के अनुसार कार्य करना पड़ता है। राष्ट्रपति को सदैव प्रधानमंत्री और मंत्रीपरिषद् की उपस्थिति में ही कार्य करना होता है। भारतीय राजनीतिक प्रणाली एक मंत्रिमंडल प्रधानमंत्री अधीन लगातार अस्तित्व में रहता है। संसद में बहुमत की कमी के कारण जब कोई सरकार गिरती है और राष्ट्रपति इस स्थिति में नहीं होता कि वह वैकल्पिक प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल को ले सके। ऐसी स्थिति में उसको पहले प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल को तब तक कार्यवाहक सरकार के रूप में कार्य करने के लिए कहना पड़ता है जब तक लोकसभा के चुनावों के पश्चात् नई सरकार अस्तित्व में नहीं आ जाती। अप्रैल, 1999 में जब 17 अप्रैल को भाजपा गठबंधन सरकार लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त करने में असफल रही और उसके पश्चात् कोई अन्य पार्टी सरकार बनाने में सफल न हो सकी तो राष्ट्रपति ने भाजपा सरकार को कार्यवाहक सरकार के रूप में कार्य करने का आदेश दिया। फरवरी 2004 में लोकसभा भंग कर दिए जाने के बाद एन.डी.ए. सरकार एक कार्यवाहक सरकार के रूप में 22 मई, 2004 तक कार्य करती रही तथा इस दिन यू.पी.ए. की सरकार सत्तारूढ़ हो गई। आज यह बात स्पष्ट है कि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की अस्तित्व को निरन्तर बनाए रखता है चाहे यह मंत्रिमंडल नियमित हो

नोट

या कार्यवाहक। 1989, 1997, 1999 तथा 2004 में राष्ट्रपति को ऐसी ही करना पड़ा था।

संविधान के लागू होने से लेकर आज तक राष्ट्रपति के पद की स्थिति की समीक्षा करने पर पता लगता है कि राष्ट्रपति ने सदैव राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में अपनी स्थिति को स्वीकार कर लिया है और वह सदैव ही मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार कार्य करता है। यद्यपि पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने राष्ट्रपति के वास्तविक कार्यों और शक्तियों को निश्चित करने का मुद्दा उठाया था तो भी उन्होंने सदैव प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार ही कार्य किया था। उनके अनुरूप ही डॉ. एस. राधा कृष्णन, डॉ. जाकिर हुसैन, श्री वी.वी. गिरि, श्री एफ.ए. अहमद, श्री नीलम संजीवा रेड्डी, ज्ञानी जैल सिंह, श्री आर. वैकटरमन और डॉ. एस.डी. शर्मा तथा श्री के.आर. नारायणन ने कार्य किया। वर्तमान राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल से पूर्व राष्ट्रपति श्री ए.पी. जे. अब्दुल कलाम भी उसी परम्परा पर चलते हुए देश के संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करते रहे निसंदेह प्रतिभा पाटिल भी इसी परंपरा को निभाती रहेंगी।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल के हाथों में केवल एक रबड़ की मोहर अथवा कठपुतली होता है या केवल सुनहरी शून्य है। भारत का राष्ट्रपति देश का निर्वाचित मुखिया होने के नाते विशाल प्रभाव और प्रतिष्ठा से एक सर्वोच्च सत्ता के रूप में चेतावनी, संविधान की रक्षा करता है, अपना परामर्श देने के अधिकार, उत्साहित करने, जानकारी लेने, संसद को संदेश भेजने, विवादग्रस्त बिलों को संसद के द्वारा पुनर्विचार करने के लिए वापस भेजने और लोगों से प्रार्थना-पत्र प्राप्त करने के लिए अधिकार का प्रयोग करते हुए भारत का राष्ट्रपति भारत की राजनीतिक प्रणाली में एक महत्वपूर्ण और सक्रिय भूमिका निभाता है। वह सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को प्रभावित कर सकता है। वह अनेकों पहलुओं से सरकार को चेतावनी या कम-से-कम सरकार को दिशा-निर्देश दे सकता है। राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह के द्वारा विवादग्रस्त विशेषताओं के कारण इंडियन पोस्टल बिल (संशोधन एक्ट) को अपनी स्वीकृति देने से रोक लिया गया है और वह बाद में कानून का रूप नहीं ले सका था। 25 सितम्बर, 1998 को राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन ने बिहार की राबड़ी देवी सरकार को भंग करने वाले संघीय कैबिनेट के निर्णय को पुनः विचार के लिए कैबिनेट के पास भेज दिया था। इस बार संघीय कैबिनेट ने इस विषय पर राष्ट्रपति को पुनः सिफारिश न करने का निर्णय लिया जिसके कारण राबड़ी देवी सरकार बच गई। परन्तु 10 फरवरी 1999 को जब संघीय कैबिनेट ने राबड़ी देवी सरकार को भंग करके राष्ट्रपति शासन पुनः लागू करने की सिफारिश की तो राष्ट्रपति को कैबिनेट परामर्श स्वीकार करना पड़ा। राष्ट्रपति के द्वारा दिए गए परामर्श या संदेश की ओर मंत्रिमंडल और संसद को ध्यान देना पड़ता है। अपने व्यक्तिगत गुणों और देश के सर्वोच्च पद पर विराजमान होने के कारण राष्ट्रपति देश और विदेश में महत्वपूर्ण और सक्रिय भूमिका निभा सकती है। 1989 के पश्चात् भारतीय राजनीतिक प्रणाली में त्रिशंकु लोक सभाओं के गठन होने के युग के आरंभ होने के पश्चात् सरकार निर्माण के सम्बन्ध में राष्ट्रपति में राष्ट्रपति की भूमिका में एक नई सक्रियता आई है। 1989-90-91-96-97, 1998 तथा 2004 में राष्ट्रपति ने संघ सरकार के निर्माण के समय एक सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका अपने संवैधानिक कर्तव्यों तथा शक्तियों के प्रयोग द्वारा निभाई थी।

इस प्रकार भारत का राष्ट्रपति राज्य का एक संवैधानिक मुखिया है न कि एक रबड़ की मोहर या सुनहरी शून्य। वह भारतीय संसदीय लोकतंत्र के कार्य-व्यवहार में महत्वपूर्ण और सक्रिय भूमिका निभाता है। राष्ट्रपति यह भूमिका अपनी कार्यपालिका शक्तियों पर बल दिए बिना निभाता है। एक निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ रूप में कार्य करने वाले राज्य-अध्यक्ष तथा कार्यपालिका मुखिया होने के नाते वह अपने व्यक्तिगत गुणों, विशेषताओं और प्रभुसत्ता सम्पन्न स्थिति के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था में बहुमूल्य भूमिका निभाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

7. संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ किसमें निहित हैं?
- | | |
|------------------|-----------------|
| (a) राज्यपाल | (b) राष्ट्रपति |
| (c) प्रधानमंत्री | (d) मुख्यमंत्री |

8. 12वीं लोकसभा के चुनाव किस वर्ष हुए थे?
- (a) 1995 (b) 1996
(c) 1997 (d) 1998
9. उस राष्ट्रपति का क्या नाम है जिसने अपने एक भाषण में राष्ट्रपति के भारतीय संवैधानिक प्रणाली में वास्तविक कार्यों और शक्तियों का मुद्दा उठाया था?
- (a) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (b) के.आर. नारायणन
(c) प्रतिभा देवी सिंह पाटिल (d) अब्दुल कलाम आजाद

5.6 राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers of the President)

भारत के राष्ट्रपति को संविधान के अनुसार मिली संकटकालीन शक्तियाँ महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ संविधान की विवादपूर्ण व्यवस्थाएँ भी रही हैं। यह शक्तियाँ केवल बहुत व्यापक ही नहीं हैं, बल्कि एक लोकतांत्रिक देश के लिए बिल्कुल विलक्षण भी हैं। राष्ट्रपति को यह शक्तियाँ देते समय संविधान के निर्माताओं के मन में भविष्य के संभावित संकटों और सत्ता परिवर्तनों से देश की एकता और अखण्डता को सुरक्षित रखने का विषय अत्यन्त महत्व का विषय था। वह एक संघीय ढाँचे के संभावित खतरे के प्रति सावधान रहते हुए देश की एकता, अखण्डता और भलाई के लिए कठोर और शीघ्र कदम उठाए जाने की आवश्यकता के प्रति सचेत था। इसके लिए वह इससे सम्बन्धित कुछ उपाय करने के लिए कुछ कदम उठाने के इच्छुक थे। संघीय ढाँचे में एकात्मक भावना का मिश्रण एक ऐसा ही कदम था। दूसरा कदम था—भविष्य के खतरों और संकटकालीन स्थिति से निपटने के लिए राष्ट्रपति को विशेष शक्तियाँ और उत्तरदायित्व देना। दूसरा कदम अपनाते समय संविधान निर्माता गणतंत्र जर्मनी के वैमर संविधान की इस प्रकार की व्यवस्था से प्रभावित हुए थे। डी.डी. बसु की दृष्टि में संकटकालीन शक्तियाँ संघीय सरकार को इस योग्य बनाती हैं कि जब कभी भी स्थिति मांग करे तो वह एकात्मक प्रणाली की शक्ति प्राप्त कर सके।

संविधान के भाग XVIII में संकटकालीन व्यवस्थाओं का वर्णन है और इनके अनुसार राष्ट्रपति को तीन प्रकार के विशेष संकटकालों से निपटने की शक्तियाँ मिली हुई हैं—(i) राष्ट्रीय संकटकाल (अनुच्छेद 352) अर्थात् युद्ध, बाहरी आक्रमण या आंतरिक सशस्त्र विद्रोह के कारण पैदा हुई संकटकालीन स्थिति (ii) किसी राज्य में संवैधानिक संकटकाल (अनुच्छेद 356) अर्थात् राज्य में संवैधानिक मशीनरी असफल हो जाने के कारण पैदा हुए संकटकाल की स्थिति (iii) वित्तीय संकटकाल (अनुच्छेद 360) अर्थात् स्थिरता या भारत की साख को पैदा हुए खतरे के कारण उत्पन्न संकटकालीन स्थिति।

राष्ट्रीय संकटकाल (अनुच्छेद 352) (National Emergency Art. 352)

संविधान का अनुच्छेद 352 युद्ध, विदेशी आक्रमण या आंतरिक सशस्त्र विद्रोह से पैदा हुई संकटकाल की स्थिति से निपटने की व्यवस्था करता है। इसको सामान्य रूप में राष्ट्रीय संकटकाल कहा जाता है। यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाता है कि युद्ध, बाहरी आक्रमण या आंतरिक सशस्त्र विद्रोह के कारण या ऐसी किसी खतरे की संभावना के कारण समस्त भारत पर देश के किसी भाग की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया। है तथा गंभीर संकटकाल की स्थिति है तो वह इससे सम्बन्धित घोषणा जारी कर सकता है। “सशस्त्र विद्रोह” शब्द 44वें ऐक्ट (संशोधन) के द्वारा शामिल किए गए और इन्होंने मौलिक शब्दों “आंतरिक गड़बड़” का स्थान ले लिया। ऐसे संकटकाल की घोषणा केवल उस समय ही नहीं की जाती, जब वास्तव में भारत की सुरक्षा का उल्लंघन हुआ हो बल्कि उस समय भी की जाती है जब राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि देश की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया। [अनुच्छेद 352 (3)]।

नोट

शब्द “यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाता है” का वास्तव में अर्थ यह है कि राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल से ऐसी जानकारी या परामर्श दिया जाता है। अब मंत्रिमंडल को अपना ऐसा परामर्श लिखित रूप में देता है। ऐसी सूचना मिलने के पश्चात् राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल लागू कर सकता है। ऐसा संकटकाल समस्त भारत के किसी भाग/भागों में लागू किया जा सकता है।

(क) संकटकाल घोषणा की स्वीकृति (Approval of the Emergency Proclamation): अनुच्छेद 352 के अधीन घोषित संकटकाल की स्थिति की घोषणा लागू किए जाने के 30 दिनों के अंदर-अंदर संसद के दोनों सदनों से स्वीकृति लेनी होती है। यदि संकटकाल लागू किए जाने की घोषणा को संसद की स्वीकृति नहीं मिलती तो यह 30 दिनों बाद समाप्त हो जाती है। यदि संकटकाल लागू करते समय लोकसभा भंग हो तो इसकी 30 दिनों के भीतर राज्यसभा के द्वारा पुष्टि की जानी आवश्यक होती है और बाद में नई लोकसभा से अपनी पहली बैठक से लेकर 30 दिनों के अन्दर-अन्दर स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है। यदि लोकसभा स्वीकृति नहीं देती तो 30 दिनों के बाद संकटकाल की स्थिति समाप्त हो जाती है। यदि संसद के दोनों सदनों के द्वारा स्वीकृति मिल जाती है तो संकटकाल से सम्बन्धित घोषणा 6 महीने के लिए लागू रह सकती है। यदि संकटकाल और समय के लिए जारी रखनी हो तो प्रत्येक 6 महीने बाद इसके लिए संसद के दोनों सदनों से स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है। यदि लोकसभा भंग हो और संकटकाल बढ़ाना हो तो यह कार्य राज्यसभा प्रस्ताव पास करके कर सकती है परन्तु नई लोकसभा की स्वीकृति करवानी अनिवार्य होती है।

(ख) संकटकाल की अवधि (Tenure of the Emergency Proclamation): एक बार घोषित और संसद के दोनों सदनों के द्वारा स्वीकार की गई संकटकाल की घोषणा 6 महीने के लिए लागू रह सकती है यद्यपि प्रत्येक 6 महीने के बाद स्वीकृति के द्वारा इसकी अवधि को बार-बार बढ़ाया जा सकता है। यह याद रखना चाहिए कि 44वें संशोधन के पश्चात् ऐसी संकटकाल की घोषणा को संसद के द्वारा स्वीकृत किए जाने के लिए कुल सदस्यों के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान कर रहे सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत आवश्यक होता है।

(ग) संसद के द्वारा संकटकाल की स्थिति में समाप्त करने की व्यवस्था (Provision for the Revocation of Emergency by the Parliament): लोकसभा के 10% सदस्य संसद के द्वारा पहले स्वीकार की गई संकटकालीन की स्थिति को समाप्त करने के लिए कार्यवाही आरंभ कर सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए यदि लोकसभा का अधिवेशन न चल रहा हो तो उनको राष्ट्रपति को लिखित रूप में नोटिस देना पड़ेगा या यदि लोकसभा का अधिवेशन चल रहा परन्तु स्थगित हो तो यह नोटिस स्पीकर को देना पड़ेगा। लोकसभा का ऐसा आवश्यक अधिवेशन 10% सदस्यों के द्वारा नोटिस दिए जाने के 14 दिनों में होना आवश्यक होता है। यदि लोकसभा साधारण बहुमत से संकटकाल समाप्त करने के बारे में प्रस्ताव पास कर देती है तो संकटकाल घोषणा समाप्त हो जाती है और राष्ट्रपति को संकटकाल लागू किए जाने की घोषणा को वापस लेना पड़ता है।

(घ) अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल लागू करना न्याय-योग्य है। इसके संवैधानिक औचित्य की परख सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा अब निश्चित की जा सकती है।

(ङ) अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल लागू किए जाने के परिणाम (Consequences of Emergency Proclamation under Art. 352): अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल लागू किए जाने के पश्चात् निम्नलिखित परिवर्तन हो जाते हैं—

(i) संघीय संसद को राज्य सूची वाले विषयों पर कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है। ऐसे कानून संकटकाल के दौरान लागू रहते हैं और संकटकाल समाप्त होने के 6 महीने बाद समाप्त हो जाते हैं।

(ii) संघीय सरकार को राज्य सरकारों की कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग निर्देशित करने का अधिकार मिल जाता है।

(iii) राष्ट्रपति केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय विभाजन को परिवर्तित कर सकता है परन्तु ये सभी निर्णय संसद के प्रत्येक सदन के सामने रखने आवश्यक होते हैं।

नोट

(iv) संकटकाल के दौरान संविधान के अनुच्छेद 17 के अधीन मिली मौलिक स्वतन्त्रताओं पर प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं। यहां तक कि यदि ऐसी संकटकाल की देश के किसी भी भाग/भागों में घोषणा की जाती है तो संसद देश के उन भागों में भी नागरिक स्वतन्त्रताओं पर पाबंदी ला सकती है जहाँ संकटकाल लागू नहीं होता। 44वें संशोधन के अनुसार अनुच्छेद 19 के द्वारा दी गई स्वतन्त्रताओं को केवल उस समय स्थगित किया जा सकता जबकि युद्ध या बाहरी आक्रमण के कारण ऐसी संकटकाल स्थिति लागू की गई हो।

(v) अनुच्छेद 20 और 21 के द्वारा मिले अधिकारों के अतिरिक्त राष्ट्रपति नागरिकों के मौलिक अधिकारों को स्थगित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, संवैधानिक उपचारों के मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 32) को उपर्युक्त दो अनुच्छेदों में दिए अधिकारों को छोड़ कर अन्य अधिकारों के सम्बन्ध में स्थगित किया जा सकता है।

(vi) ऐसे संकटकाल के दौरान लोकसभा और राज्य विधानसभाओं का कार्यकाल बढ़ाया जा सकता है। संसद इस सम्बन्ध में कानून बना सकती है। यह वृद्धि एक बार में एक वर्ष या इससे कम समय के लिए हो सकती है।

(vii) यदि कोई राज्य अनुच्छेद 356 के अधीन संवैधानिक संकटकाल के अधीन है और राष्ट्रपति के द्वारा अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल लागू कर दिया जाता है तो सम्बन्धित राज्य में राष्ट्रपति शासन एक वर्ष के साधारण समय की अपेक्षा 3 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है। ऐसे संकटकाल के दौरान राष्ट्रपति के द्वारा जारी किए गए सभी आदेशों को स्वीकृति के लिए संसद में रखना होता है।

(च) अनुच्छेद 352 के लागू किए जाने का विवरण (Operation of Emergency Proclamation under Art. 352): अनुच्छेद 352 के अधीन भारत पर चीनी आक्रमण को देखते हुए 26 अक्टूबर, 1962 को प्रथम बार संकटकाल स्थिति की घोषणा की गई थी। 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के समय यही संकटकाल लागू था। यह संकटकाल 1968 में वापस ले लिया गया। परन्तु 3 दिसम्बर, 1971 को इसको पुनः लागू किया गया, क्योंकि पाकिस्तान से युद्ध छिड़ गया था। यह संकटकाल मार्च, 1977 तक लागू रहा। 26 जून, 1975 को आंतरिक गड़बड़ के कारण देश की सुरक्षा को पैदा हुए खतरे के कारण राष्ट्रपति के द्वारा अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकालीन स्थिति की घोषणा भी कर दी गई। यह संकटकाल मार्च, 1977 के चुनावों में श्रीमती इन्दिरा गांधी और उसके दल कांग्रेस (आई) की पराजय के पश्चात् 22 मार्च, 1977 को वापस लिया गया।

नोट: 1977 के पश्चात् आज तक अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल स्थिति की घोषणा नहीं की गई चाहे 1999 में कारगिल युद्ध हुआ था फिर दिसम्बर 2001 से लेकर सितम्बर-अक्टूबर 2002 तक पाकिस्तान से युद्ध का खतरा बना रहा था।

अनुच्छेद 356 के अधीन संवैधानिक संकटकाल (Constitutional Emergency under Article 356)

संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति के पास यह अधिकार है कि वह किसी राज्य/राज्यों में संवैधानिक मशीनरी फेल हो जाने से निपटने के लिए संकटकाल लागू करने की घोषणा कर सकता है। इस अनुच्छेद के अनुसार, यदि किसी राज्य के राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर या अन्य साधनों के द्वारा राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि राज्य सरकार संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार कार्य नहीं कर रही अथवा राज्य में संवैधानिक मशीनरी असफल हो गई है और राज्य का गठन करना अथवा संचालन संविधान के अनुसार सम्भव नहीं रहा। अन्य शब्दों में राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि किसी राज्य में संवैधानिक मशीनरी पूर्ण रूप में असफल हो गई है या ऐसा होना अटल है तो वह राज्य में संवैधानिक संकटकाल लगाने की घोषणा कर सकता है। राष्ट्रपति किसी राज्य में भी संवैधानिक संकटकाल की घोषणा कर सकता है यदि उसको विश्वास हो जाए कि राज्य सरकार राज्य में उस समय संघ सरकार के प्रशासन से सम्बन्धित केन्द्रीय कानूनों और नीतियों से सम्बन्धित दिशा-निर्देशों को लागू नहीं कर रही या ऐसा करने से इनकार कर रही है।

नोट

(I) संवैधानिक संकटकाल की स्वीकृति (Approval of the Constitutional Emergency):

अनुच्छेद 356 के अधीन लागू किए गए संकटकाल की स्वीकृति के लिए इसको दो महीनों के अंदर संसद के दोनों सदनों के सामने रखना पड़ता है। यदि इसके सम्बन्ध में संसद (दोनों सदनों) की स्वीकृति नहीं मिलती तो संकटकाल दो महीने से अधिक लागू नहीं रह सकता। परन्तु यदि ऐसा संकटकाल उस समय लागू किया जाता है, जब लोकसभा भंग हो या दो महीनों के अंदर भंग हो जाए तो संकटकाल से सम्बन्धित घोषणा को स्वीकृति देने के लिए राज्यसभा में रखा जाता है। यदि राज्य सभा इसकी स्वीकृति कर दे तभी यह लागू रह सकती है, परन्तु राज्यसभा की स्वीकृति के पश्चात् भी इसको नई लोकसभा में रखना होता है। इसको नई लोकसभा के सामने पहली बैठक के पश्चात् 30 दिनों में रखना आवश्यक होता है। यदि लोकसभा इसको स्वीकृति नहीं देती या 30 दिनों के अंदर स्वीकृति नहीं दी जाती तो संकटकाल प्रभावहीन हो जाता है।

(II) राज्य में संवैधानिक संकटकाल लागू रहने की अवधि (Duration of Constitutional Emergency in a State):

अनुच्छेद 356 के अधीन लागू की गई संकटकालीन स्थिति संसद के द्वारा एक बार स्वीकृति देने पर 6 महीने के लिए लागू रहती है परन्तु संसद की स्वीकृति से इसको 6 महीने के लिए और बढ़ाया जा सकता है। ऐसा संकटकाल संसद की स्वीकृति से एक वर्ष के पश्चात् भी जारी रह सकती है: (i) यदि इस समय के दौरान अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रीय संकटकाल लागू हो जाता है, और (ii) यदि निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित करे कि राज्य विधानसभा के चुनावों में आ रही कठिनाइयों को देखते हुए इसका जारी रहना आवश्यक है। एक राज्य में इस प्रकार का संकटकाल अधिक-से-अधिक 3 वर्ष के लिए जारी रखा जा सकता है। परन्तु विशेष छूटें हो सकती हैं (पंजाब 1980-92 और जम्मू-कश्मीर, 1990-96 के मामले)। संसद संविधान में विशेष संशोधन करके संवैधानिक संकटकाल की अवधि बढ़ा सकती है। मार्च, 1994 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 356 के अधीन जारी संकटकाल स्थिति की घोषणा पर न्यायिक पुनर्निरीक्षण किया जा सकता है।

(III) एक राज्य में संवैधानिक संकटकाल (अनुच्छेद 356 के अधीन) लागू करने के प्रभाव (Effects of the Proclamation of Constitutional Emergency (Under Art. 356)): अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू करने के निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं :

(1) राष्ट्रपति राज्य सरकार का कोई भी या सभी कार्य स्वयं संभाल सकता है और राज्यपाल या राज्य की सत्ता के द्वारा प्रयोग की जाती सभी या कोई भी शक्ति स्वयं प्रयोग कर सकता है। परन्तु राष्ट्रपति राज्य विधानसभा और राज्य की उच्च न्यायालय की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है।

(2) राष्ट्रपति संघीय संसद को यह अधिकार दे सकता है कि वह राज्य विधानसभा की शक्तियाँ का प्रयोग करे। संसद के द्वारा बनाए गए कानून संकटकाल समाप्त होने के पश्चात् भी तब तक लागू रहते हैं जब तक योग्य विधानसभा या अन्य सत्ता के द्वारा उसको बदल, समाप्त या संशोधित नहीं किया जाता।

(3) संघीय संसद राष्ट्रपति को राज्य के लिए कानून बनाने का अधिकार दे सकती है। वह राष्ट्रपति को यह अधिकार दे सकती है कि वह यह शक्तियाँ किसी भी अन्य सत्ता को सौंप दे। इससे सम्बन्धित राष्ट्रपति स्थिति के अनुसार जैसे उचित समझे, अपने निर्णय ले सकता है।

(4) राज्य विधानसभा भंग की जा सकती है या स्थगन की स्थिति में रखी जा सकती है।

(5) यदि राज्य का बजट पास करना हो तो केन्द्रीय संसद इसको पारित करने का अधिकार ले लेती है।

(6) राष्ट्रपति को राज्य की संचित निधि (Consolidated of State) में से खर्च करने का अधिकार मिल जाता है।

(7) राष्ट्रपति संकटकाल स्थिति लागू करने के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कोई भी कदम, जो वह आवश्यक समझे, उठा सकता है।

इस प्रकार अनुच्छेद 352 के अधीन लगाए गए संकटकाल के समान किसी राज्य में अनुच्छेद 356 के अधीन लगाए गए संवैधानिक संकटकाल के अधीन भी राज्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता या स्वायत्तता स्थगित हो सकती

है। सम्बन्धित राज्य और केन्द्र के बीच सम्बन्ध एकात्मक स्वरूप ले लेते हैं क्योंकि केन्द्र सरकार सम्बन्धित राज्य के सभी कार्यपालिका और वैधानिक विषयों पर नियन्त्रण कर लेती है।

(IV) अनुच्छेद 356 का व्यवहार में प्रयोग (Operation of Article 356): अनुच्छेद 356 की व्यवस्थाओं को बीते में लगभग 100 से अधिक बार प्रयोग किया जा चुका है। 1951 में इसका प्रयोग पंजाब में किया गया। इसके पश्चात् इसका प्रयोग नियमित रूप से किया जाता रहा है। 1977 में इसका एक ही समय 9 राज्यों उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा में प्रयोग किया गया। फरवरी, 1980 में यह कार्यवाही 9 राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, गुजरात, उड़ीसा, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में पुनः दोहराई गई। पंजाब और केरला जैसे बहुत-से राज्यों में बार-बार राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता रहा है। 1988 में इसका प्रयोग नागालैंड में किया गया। लगभग सभी राज्य कभी न कभी अनुच्छेद 356 के अधीन संवैधानिक संकटकाल के शिकार रहे हैं। 1998 में गोवा में ऐसा संकटकाल लागू किया गया। 1999 में बिहार में संवैधानिक संकटकाल की घोषणा करके राबड़ी देवी की सरकार को भंग किया गया और लोकसभा ने इसकी स्वीकृति भी दे दी। परन्तु इस समय विद्यमान बी.जे.पी. गठबंधन सरकार के पास राज्यसभा में बहुमत प्राप्त नहीं था इसलिए सरकार ने इसको राज्यसभा में पेश न किया। बिहार में संवैधानिक संकटकाल की घोषणा समाप्त कर दी गई और राबड़ी देवी की सरकार को पुनः स्थापित कर दिया गया। मई 2004 में बिहार में संकटकाल की स्थिति घोषित की गई क्योंकि चुनाव के पश्चात् कोई भी दल सरकार गठित करने की स्थिति में नहीं था। पहले बिहार विधानसभा को स्थगित स्थिति में रखा गया लेकिन बाद में मई 2005 में इसे भंग कर दिया गया तथा निर्वाचन आयोग को बिहार राज्य विधानसभा के लिए नए चुनाव संगठित करने के लिए कहा गया। अब ये चुनाव अक्टूबर-नवम्बर 2005 में करवाए जाएंगे।

नोट

नोट: अनुच्छेद 356 में वर्णित संवैधानिक संकटकाल की व्यवस्था का विरोध लगभग सभी राजनीतिक दल करते रहे हैं परन्तु कभी प्रत्येक दल ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इसका प्रयोग भी किया है।

अनुच्छेद 360 के अधीन वित्तीय संकटकाल (Financial Emergency under Art. 360)

राष्ट्रपति को यदि विश्वास हो जाए कि इस प्रकार की स्थिति पैदा हो गई है जिससे भारत या भारत के किसी भाग में वित्तीय स्थिरता या साख को खतरा है तो वह अनुच्छेद 360 के अधीन वित्तीय संकटकाल की स्थिति लागू कर सकता है:

(I) वित्तीय संकटकाल की घोषणा की स्वीकृति (Approval of the Financial Emergency Proclamation): अनुच्छेद 360 के अधीन लागू किए गए वित्तीय संकटकाल लागू किए जाने से 1 माह के अंदर-अंदर संसद के दोनों सदनों से स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है। यदि यह स्वीकृति नहीं ली जाती तो इस अवधि के बाद वित्तीय संकटकाल समाप्त हो जाता है। संसद के दोनों सदनों से एक बार स्वीकृति मिलने पर इसको 6 महीने के लिए जारी रखा जा सकता है। इसके पश्चात् प्रत्येक 6 महीने बाद संसद की बार-बार स्वीकृति से इसकी अवधि को बढ़ाया जा सकता है।

(II) वित्तीय संकटकाल लागू किए जाने के प्रभाव (Effects of the Financial Emergency Proclamation): अनुच्छेद 360 के अधीन लागू किए गए वित्तीय संकटकाल के प्रभाव निम्नलिखित के अनुसार होते हैं :

(1) संघ सरकार को किसी भी राज्य को वित्तीय औचित्य से सम्बन्धित दिशा-निर्देश देने का अधिकार मिल जाता है। संघ सरकार राज्य को ऐसे आदेश मानने के लिए कह सकती है, जो देश की अर्थव्यवस्था को पुनः स्वस्थ बनाने के लिए आवश्यक हों। संघ ऐसे नियम बना सकता है और उनको राज्यों को अपनाने के लिए कह सकता है।

नोट

(2) राष्ट्रपति ऐसे सभी वित्तीय कदम उठा सकता है कि जैसे वेतन तथा कीमतें स्थिर करना और वित्तीय स्थिरता और भारत की वित्तीय विश्वसनीयता की पुनः स्थापना के उद्देश्य से सभी कर्मचारी या कर्मचारियों के किसी भी वर्ग के वेतन भत्तों में कटौती करना। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों में भी कटौती की जा सकती है।

(3) राष्ट्रपति आदेश दे सकता है कि राज्य विधानसभाओं के द्वारा पास सभी वित्तीय बिल उसकी स्वीकृति के लिए आरक्षित रखे जाएं।

(4) राष्ट्रपति संघ और राज्यों के बीच आय/राजस्व के विभाजन में उचित परिवर्तन कर सकता है।

इस प्रकार तीन प्रकार की संकटकाल की स्थितियाँ से निपटने के लिए संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ मिली हुई हैं। इसी कारण इन्हें राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ कहा जाता है। परन्तु राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग भी प्रधानमंत्री तथा संघीय मन्त्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार करता है।

संकटकाल की व्यवस्थाएँ : आलोचनात्मक मूल्यांकन

(Emergency Provisions : Critical Evaluation)

संविधान की संकटकालीन व्यवस्थाओं पर भारत के राष्ट्रपति की विशेष और व्यापक शक्तियाँ, जो वास्तव में प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के पास हैं, की कड़ी आलोचना हुई है। संवैधानिक निर्माण सभा में भी जब इन व्यवस्थाओं पर चर्चा हुई थी तो अनेक सदस्यों ने यह भाग संविधान में शामिल किए जाने की कठोर आलोचना की थी। श्री एच.वी. कामथ ने कहा था, “विश्व के किसी भी लोकतान्त्रिक संविधान में संकटकाल के बारे में हमारे जैसा अध्याय नहीं है। यह शर्म का दिन है, परमात्मा भारतीयों की सहायता करें।” जब अनुच्छेद 359, जिसमें संकटकाल स्थिति के दौरान मौलिक अधिकारों के स्थगन से सम्बन्धित व्यवस्था है, को संविधान में शामिल किया गया तो प्रोफेसर के.टी. शाह ने इस कार्यवाही को प्रतिक्रमों के अध्याय का अंतिम शिखर कहा और इसकी आलोचना की थी।

संकटकालीन व्यवस्थाएँ अर्थात् राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों की आलोचना के मुख्य बिन्दु अग्रलिखित रहे हैं :

1. लोकतन्त्र विरोधी (Ante-Democratic): संकटकालीन व्यवस्थाएँ गैर-लोकतान्त्रिक हैं क्योंकि ये राष्ट्रपति के हाथों में व्यापक शक्तियाँ केन्द्रित करती हैं जो सभी मामलों में प्रधानमंत्री और केन्द्रीय मन्त्रिमंडल का परामर्श मानने के लिए पाबंद होता है। वास्तव में ये शक्तियाँ संघीय मन्त्रिमंडल की शक्तियाँ ही हैं। राष्ट्रपति (प्रधानमंत्री) यह निर्णय करता है कि कब किस प्रकार की संकटकाल लगाया जाना है और ऐसी स्थिति से निपटने के लिए कौन-से कदम उठाए जाने आवश्यक हैं। एच.वी. कामथ के शब्दों में, “मुझे डर है कि हम इस एक अध्याय के द्वार एक तानाशाही राज्य एक पुलिस राज्य का नींव पत्थर रखने का प्रयास कर रहे हैं।”

2. संघात्मकता विरोधी (Ante-Federal): संकटकालीन व्यवस्थाओं के विरुद्ध आलोचना का एक दृढ़ बिन्दु यह रहा है कि यह अपने स्वभाव और क्षेत्र में संघात्मकता की विरोधी हैं। केन्द्र सरकार विशेष रूप में अनुच्छेद 352 और 356 के अधीन संकटकाल स्थिति की घोषणा करके राज्य-सूची के विषयों पर प्रशासन को अपने हाथों में ले सकती है। इस कदम का शुद्ध प्रभाव संघवाद के एकात्मक में बदल जाने के रूप में निकलता है। संकटकाल के दौरान भारतीय संविधान एकात्मक संविधान बन जाता है।

3. न्यायपालिका के नियंत्रण से बाहर हैं (Emergency Proclamations are beyond Judicial Control): न्यायपालिका को राष्ट्रपति के द्वारा लागू की गई संकटकाल की घोषणाओं के औचित्य और प्रमाणिकता के बारे में पुनर्निरीक्षण के बारे में निर्णय कर सकते हैं। न ही वह संकटकाल से निपटने के लिए उठाए गए कदमों के बारे में निर्णय कर सकती थी। परन्तु 11 मार्च, 1994 को सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 356 के अधीन लगाए गए संकटकाल की संवैधानिक उचितता के बारे में जाँच करने के अपने अधिकार का प्रयोग करना आरंभ कर दिया, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय पुनर्निरीक्षण की शक्ति की प्रकृति घोषणा लागू किए जाने तथा इसके कुछ समय तक चलने के बाद (Post Mortem) करने जैसी है।

नोट

4. मौलिक अधिकारों के स्थगन से सम्बन्धित व्यवस्था (Provisions for the Suspension of Fundamental Rights): संकटकाल स्थिति में अनुच्छेद 32 के अधीन मिले मौलिक अधिकारों के लागू करने के अधिकार को स्थगित किया जा सकता है। यह व्यवस्था लोकतंत्र विरोधी और सत्तावादी है। 44वें संशोधन द्वारा विश्वसनीय बनाया गया है कि अनुच्छेद 20 और 21 के अधीन मिली व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को संकटकाल स्थिति के दौरान भी स्थगित नहीं किया जा सकता। यह एक स्वागत योग्य संशोधन है, परन्तु इसने केवल आंशिक रूप में लोगों के मौलिक अधिकारों को स्थगित किए जाने की व्यवस्था को नकारा है। संविधान के इस “नकारात्मक लक्षण” लोगों के मौलिक अधिकारों को स्थगित किये जाने से सम्बन्धित अनुच्छेद 359 को संविधान में शामिल किए जाने की संविधान निर्माण सभा के अनेक सदस्यों द्वारा आलोचना की गई और आज भी अनेकों विद्वानों के द्वारा कड़ी आलोचना की जाती है।

5. संकटकालीन व्यवस्थाओं का सम्भावित गलत प्रयोग (Possible Misuse of Emergency Provisions): अपने स्वार्थी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सत्ताधारी दल के द्वारा संकटकालीन व्यवस्थाओं का गलत प्रयोग किया जा सकता है। सैद्धांतिक रूप में तीन प्रकार के संकटकाल की स्थितियों से निपटने के लिए राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ दी गई हैं। परन्तु वास्तव में इन शक्तियों का प्रयोग केन्द्रीय मंत्रिमंडल के द्वारा किया जाता है और इन शक्तियों के प्रयोग में राष्ट्रपति मंत्रिमंडल का परामर्श मानने के लिए भी पाबंद होता है। ऐसे सभी प्रश्नों जैसा कि विशेष प्रकार की स्थिति में संकटकाल लगाने की आवश्यकता है या नहीं? विद्यमान स्थिति में किस प्रकार का संकटकाल लगाने की आवश्यकता है? संकटकाल स्थिति में किस प्रकार के कदम उठाने की आवश्यकता है, आदि के बारे में निर्णय मंत्रिमंडल के द्वारा लिया जाता है जो वास्तव में राजनीतिक कार्यपालिका है और वह कई बार पक्षधर निर्णय ले सकती है।

बीते समय में अनुच्छेद 352 और 356 के प्रयोग से ऐसी विचारधारा की पुष्टि हुई है। जून, 1975 में अनुच्छेद 352 का दुरुपयोग किया गया था जब श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार के द्वारा आंतरिक गड़बड़ के कारण देश में संकटकाल स्थिति की घोषणा कर दी गई थी। राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से जिस ढंग से संकटकाल लागू करवाया गया और जिस तरह मीसा और कोफपोसा (MISA, COFEPOSA) आदि का प्रयोग किया गया, से संकटकालीन व्यवस्थाओं की खतरनाक और सत्तावादी प्रयोग की संभावना के बारे में पता लगा था। अनेक अवसरों पर अनुच्छेद 356 का किया गया दुरुपयोग हमारी राजनीतिक प्रणाली का एक तथ्य बन चुका है। बीते में अनेकों अवसरों और इस अनुच्छेद का प्रयोग बल्कि दुरुपयोग केन्द्र में सत्ताधारी दल के द्वारा “एक असहयोगी” विरोधी दल की राज्य सरकार को हटाने के लिए किया गया। 1977 में किया गया प्रयोग इस अनुच्छेद के दुरुपयोग का प्रमुख उदाहरण था जब जनता पार्टी की सरकार के द्वारा अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा संकटकाल लागू करवा कर 8 राज्य सरकारें भंग कर दी गईं। इस दुरुपयोग के व्यवहार को फरवरी 1980 में दोहराया गया जब कांग्रेस की सरकार ने भी अनुच्छेद 356 के अधीन संकटकाल के द्वारा 9 राज्य सरकारों को हटा दिया। 1991 में डी.एम.के. के नेतृत्व वाली तमिलनाडु सरकार को सत्ता से हटाने के लिए केन्द्र सरकार के द्वारा अनुच्छेद 356 का अनियमित और शीघ्रता में किया प्रयोग था। आज तक अनुच्छेद 356 के अधीन लगभग 100 बार संकटकाल लागू किया जा चुका है।

अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में तनाव पैदा करने और राज्यपाल के पद को विवादाग्रस्त बनाने का एक प्रमुख कारण रहा है। 44वें संशोधन ने संकटकालीन व्यवस्थाओं के ऐसे दुरुपयोग के अवसरों को कम करने के लिए एक अच्छा प्रयास किया तथा इसके द्वारा कुछ अन्य बचाव के साधन प्रदान किए गए, परन्तु संकटकालीन व्यवस्थाओं का सम्भावित खतरनाक स्वरूप अभी भी कायम है।

6. अनुच्छेद 360 की व्यवस्था ठीक नहीं (Provision of Article 360 III-conceived): अनुच्छेद 360 के अधीन राष्ट्रपति भारत की वित्तीय स्थिरता और वित्तीय विश्वसनीयता की रक्षा के लिए देश में वित्तीय संकटकाल की घोषणा कर सकता है। इस व्यवस्था के प्रयोग के नकारात्मक प्रभाव पड़ सकते हैं। वित्तीय संकटकाल की स्थिति देश की वित्तीय स्थिति के सुधार में सहायक होने की अपेक्षा हानिकारक हो सकती है। डॉ. के.वी. राव के शब्दों में, “विश्वास स्थापना से दूर वित्तीय संकटकाल की घोषणा अपने रूप में देश की विश्वसनीयता को चोट

नोट

पहुँचाएगी, घबराहट का वातावरण पैदा करेगी और इस प्रकार यह वास्तव में अधिक वित्तीय अस्थिरता पैदा कर सकती है।”

7. अपर्याप्त सुरक्षा उपाय (Inadequate Safeguards): 44 वें संशोधन के द्वारा की गई व्यवस्थाओं के पश्चात् भी संविधान में किए गए संकटकालीन शक्तियों के सम्भावित दुरुपयोग के विरुद्ध उपाय अपर्याप्त हैं और वह केन्द्र सरकार के द्वारा इन शक्तियों के गलत प्रयोग को पूर्ण रूप से नहीं रोक सकते। यह व्यवस्था कि राष्ट्रपति सदैव मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार चलने के लिए पाबंद है, के कारण संकटकालीन व्यवस्थाओं के राजनीतिक प्रयोग (दुरुपयोग) का खतरा बना रहता है। राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की व्यवस्था के मार्ग में अनेक अड़चनें हैं तथा राष्ट्रपति के विरुद्ध इसका प्रयोग आसानी से नहीं किया जा सकता। संकटकाल लागू किए जाने की संसद के द्वारा स्वीकृति की व्यवस्था इस तथ्य की तुलना में बहुत सीमित पाबंदी है कि मंत्रिमंडल जोकि वास्तव में संकटकाल स्थिति के बारे निर्णय लेने वाली संस्था है, को संसद में बहुसंख्या का समर्थन प्राप्त होता है और इसके कारण मंत्रिमंडल बिना किसी कठिनाई के संसद से स्वीकृति लेने में सदैव सफल ही रहता है। दलबदली विरोधी कानून के कारण मंत्रिमंडल को सत्ताधारी पार्टी से सम्बन्धित संसद के सदस्यों पर अपना नियंत्रण कायम रखने में सहायता मिली है। समय सीमा निर्धारित करने के बारे में व्यवस्था भी वास्तव में संकटकाल को लम्बे समय तक जारी रखे जाने को रोक नहीं सकी है। पंजाब कुछ अन्तराल को छोड़कर लगभग एक दशक (1982-92) तक संवैधानिक संकटकाल (राष्ट्रपति शासन) के अधीन रहा। इस प्रकार अनुच्छेद 352-60 के दुरुपयोग के विरुद्ध उपाय अपर्याप्त हैं।

इसके अतिरिक्त आलोचकों ने संकटकालीन व्यवस्थाओं की इस आधार पर गहन आलोचना की है कि यह स्वाभाविक रूप में संघीय ढाँचे की विरोधी व्यवस्थाएँ हैं (अनुच्छेद 356), क्षेत्र के पक्ष से सत्तावादी हैं। (अनुच्छेद 352) और विषय के रूप में लोकतंत्र और स्वतंत्रता विरोधी हैं (मौलिक अधिकारों को स्थापित करने की व्यवस्था) तथा अनुच्छेद 360 लाभ की अपेक्षा हानि अधिक कर सकता है।

इन सभी आधारों पर संविधान में शामिल संकटकालीन व्यवस्थाओं की आलोचना की गई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

10. वित्तीय संकट का वर्णन अनुच्छेद में किया गया है।
11. संकटकाल की घोषणा तक लागू रह सकती है।
12. अनुच्छेद 352 संकटकाल का वर्णन करता है।

5.7 संकटकालीन व्यवस्थाओं का औचित्य (Justification of Emergency Provisions)

आलोचना के बावजूद अनेक आधार विद्यमान हैं जिनके आधार पर संविधान में शामिल संकटकालीन व्यवस्थाओं की विद्यमानता और इनके जारी रहने को उचित ठहराया जा सकता है। अनेकों विद्वानों के द्वारा भारत के राष्ट्रीय हित सुरक्षा, स्थिरता और सुरक्षा के लिए इन व्यवस्थाओं को आवश्यक करार दिया गया है। उन के द्वारा इनको उचित ठहराया गया है।

संविधान के इस भाग के समर्थकों के द्वारा अधीन निम्नलिखित तर्क दिए गए हैं—

1. ऐतिहासिक आवश्यकता (Historical Necessity): भारत के इतिहास से पता लगता है कि एक कमजोर केन्द्रीय सत्ता सदैव अस्थिरता और विखंडन का कारण बनती रही थी। राष्ट्रीय संकट पर आपातकालीन स्थितियों में राष्ट्र की स्थिरता और सुरक्षा के लिए संकटकाल व्यवस्थाओं का संविधान में शामिल किया जाना एक ऐतिहासिक आवश्यकता है। संकटकाल के दौरान शक्तियों के एक हाथ में केन्द्रित किए जाने को देश की एकता

और अखण्डता के आधार पर परखना आवश्यक है। इन व्यवस्थाओं के बारे में श्री वी.एन. शुक्ला का सुझाव ठीक है, “इन व्यवस्थाओं का अध्ययन भारतीय इतिहास के संदर्भ में करना चाहिए। जब कभी भी केन्द्रीय शक्ति कमजोर हुई थी तो भारत को बुरे दिन देखने पड़े थे।”

2. व्यक्तिगत अधिकारों की तुलना में राष्ट्रीय सुरक्षा अधिक महत्वपूर्ण (National Security is more important than Individual Rights): किसी भी देश के राष्ट्रीय हित सर्वोच्च होते हैं और इनकी रक्षा के लिए व्यक्ति के अधिकारों और स्वतंत्रताओं पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। राष्ट्रीय संकट के दौरान ऐसे प्रतिबंध सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। संघवाद बनाम एकात्मकवाद का मुद्दा भी देश की एकता और अखण्डता के आगे महत्वपूर्ण नहीं रहता। संघवाद या एकात्मकता देश की एकता और अखण्डता के पश्चात् की बातें हैं। “यदि भारत ही नहीं रहेगा तो जीवित कौन रहेगा और यदि भारत जीवित है तो मरेगा कौन?” क्योंकि बाहरी और आंतरिक खतरों से देश की रक्षा का प्रारंभिक उत्तरदायित्व केन्द्र का है। इसलिए संकटकाल स्थिति से निपटने के लिए इसको विशेष शक्तियाँ देना पूर्ण रूप से उचित है। जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि “यह केवल केन्द्र ही है जो साझे उद्देश्य पर समुचित रूप में देश के आम हितों के लिए कार्य कर सकता है। संकटकाल में केन्द्र को अधिक शक्तियाँ देने का औचित्य इस तर्क में छुपा हुआ है।”

3. तानाशाही की स्थापना की बहुत कम सम्भावनाएँ (Little Chance for Authoritarianism): संविधान के अनुसार कोई भी एक व्यक्ति संकटकालीन व्यवस्थाओं का प्रयोग नहीं कर सकता। ये शक्तियाँ राष्ट्रपति को दी गई हैं, जिनका प्रयोग वह केवल मंत्रिमंडल के परामर्श से ही कर सकता है जो कि लोकतांत्रिक ढंग से स्थापित उत्तरदायी संस्था होती है। इसके अतिरिक्त संकटकालीन स्थिति संसद की स्वीकृति से ही लागू रह सकती है। यह व्यवस्था राष्ट्रपति या मंत्रिमंडल को तानाशाह बनने से रोकती है।

क्या आप जानते हैं: इसमें कोई संदेह नहीं कि 1975 में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार के द्वारा अनुच्छेद 352 का दुरुपयोग किया गया था परन्तु इनकी उसको बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी और मार्च, 1977 में चुनावों में सत्ता उससे जाती रही थी।

41वाँ संशोधन ऐक्ट पास होने से अनुच्छेद 352 और 356 के गलत प्रयोग के अवसरों को और कम किया गया है तथा मौलिक अधिकारों के स्थगन और संकटकाल के शासन को लंबा खींचने से सम्बन्धित शक्तियों के प्रयोग के घेरे को सीमित किया गया है।

4. उपयुक्त सुरक्षा उपाय (Adequate Safeguards): राष्ट्रपति को संकटकालीन शक्तियाँ सौंपते समय अनुच्छेद 352, 356 और 360 के गलत प्रयोग को रोकने के लिए संविधान में अनेकों उपाय दर्ज किए गए हैं—

- राष्ट्रपति मंत्रिमंडल का परामर्श मानने के लिए पाबंद होता है।
- मंत्रिमंडल अपनी सभी निर्णय, त्रुटियों और आदेशों के लिए अंतिम रूप में लोगों और प्रत्यक्ष रूप में संसद के समक्ष उत्तरदायी होता है।
- राष्ट्रपति मंत्रिमंडल को लिखित सिफारिश मिलने पर ही अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल की घोषणा कर सकता है।
- किसी भी प्रकार के संकटकाल की घोषणा को एक निर्धारित समय में संसद से स्वीकृति लेनी पड़ती है।
- संकटकाल लागू रहने का अधिक-से-अधिक समय निर्धारित किया गया है। 44वें संशोधन ने राष्ट्रपति की संकटकाल की अवधि बढ़ाए जाने की शक्तियों पर अनेकों प्रतिबंध लगाए हैं।
- लोकसभा के 10% सदस्य लोकसभा का अधिवेशन बुलाने की मांग के द्वारा अनुच्छेद 352 के अधीन लगाए गए संकटकाल को समाप्त करने की प्रक्रिया आरंभ कर सकते हैं। लोकसभा का ऐसा अधिवेशन ऐसे संकटकाल को समाप्त करने के लिए साधारण बहुमत से प्रस्ताव पास कर सकता है और उसके पश्चात् संकटकाल लागू नहीं रहता।

नोट

- (g) अब अनुच्छेद 20 और 21 के अधीन व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को संकटकाल के दौरान भी स्थगित नहीं किया जा सकता।
- (h) अनुच्छेद 356 के अधीन लगाए गए संकटकाल के दौरान एक चौकस और सावधान राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के साथ-साथ राज्यपाल के पद के राजनीतिक प्रयोग/गलत प्रयोग को रोकने के लिए अपने ऊँचे पद का सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकता है।
- (i) मार्च, 1994 में सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा एक ऐतिहासिक निर्णय दिए जाने के पश्चात् अब संकटकालीन घोषणाओं को सर्वोच्च न्यायालय के सामने चुनौती दी जा सकती है और सर्वोच्च न्यायालय इनकी संवैधानिकता की परख कर सकता है।

5. राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की व्यवस्था (Provision for the Impeachment of the President): संवैधानिक व्यवस्थाओं का गलत प्रयोग या उल्लंघन करने की परिस्थिति में राष्ट्रपति को संसद के द्वारा महाभियोग की कार्यवाही का सामना करना पड़ सकता है। संकटकालीन व्यवस्थाओं का गलत प्रयोग संसद को विवश कर सकता है कि वह राष्ट्रपति के विरुद्ध संविधान के उल्लंघन का दोष लगाए जाने और महाभियोग प्रस्ताव पास करने को प्राथमिकता दे।

6. वित्तीय संकटकाल से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ भी उचित हैं (Provisions regarding Financial Emergency are also justified): राष्ट्रीय वित्तीय संकट को देखते हुए कोई भी कठोर आर्थिक कदम उठाए जाने की आवश्यकता से इंकार नहीं कर सकता। वित्तीय स्थिरता और भारत की विश्वसनीयता को पेश आए खतरे से निपटने के लिए प्रभावशाली कदम उठाने के लिए वित्तीय संकटकाल लगाने का अधिकार देना एक उचित व्यवस्था है। भौतिक या राजनीतिक या वित्तीय रूप में देश में पैदा हुए संकट से देश को सामूहिक रूप में निपटना होता है और इस दिशा में केन्द्र सरकार पर उत्तरदायित्व डालना एक प्राकृतिक आवश्यकता है।

इन सभी तथ्यों के आधार पर बहुत-से विद्वान संकटकाल व्यवस्थाओं के अस्तित्व और उनके जारी रहने को उचित ठहराते हैं जिनके द्वारा भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार मिलते हैं कि वह तीन प्रकार की संकटकालीन स्थितियों के द्वारा पैदा किए खतरे से निपटने के लिए व्यापक तथा दृढ़ शक्तियों का प्रयोग करे।

निष्कर्ष (Conclusion): निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि संविधान में XVIII भाग के शामिल किए जाने राष्ट्रपति को संकटकालीन शक्तियों देने के पीछे उद्देश्य “एक लोकतांत्रिक देश के रूप में भारत की सुरक्षा, एकता और स्थिरता को सुरक्षित रखना है।” संकटकालीन शक्तियाँ उन कड़वी गोलियों या सर्जिकल ऑपरेशन के समान हैं, जो किसी को अपनी सुरक्षा और विकास के महान उद्देश्य के हित में सदैव स्वीकार करने या सहन करने पड़ते हैं। राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ युद्ध, आक्रमण, युद्ध या आक्रमण के खतरे, आंतरिक सशास्त्र विद्रोह और वित्तीय संकट जैसे संकटकाल और हानिकारक स्थिति के कारण पैदा हुए तनाव और दबाव से निपटने के लिए हैं। इन शक्तियों का प्रयोग सामान्य स्थिति स्थापित करने के लिए असुखद स्थिति से निपटने के लिए किए जाने की व्यवस्था है। इस उद्देश्य के लिए संकटकालीन शक्तियों के प्रयोग की किसी के द्वारा विरोधता नहीं की जा सकती और न ही की जानी चाहिए।

परन्तु इन शक्तियों को उचित ठहराते हुए कोई भी इन शक्तियों के संभावित खतरनाक प्रभावों को आँखों से ओझल नहीं कर सकता। कोई भी व्यक्ति उन संभावित कुप्रभावों को उपेक्षित नहीं कर सकता जो अपने संकीर्ण प्रभाव या विशेष वर्ग से सम्बन्धित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इन शक्तियों की बार-बार अनियमित और तानाशाही ढंग से प्रयोग के द्वारा निकल सकते हैं। निस्संदेह 44वें संशोधन के द्वारा इन शक्तियों का गलत प्रयोग या शक्तियों के प्रयोग के द्वारा पैदा होने वाली संभावित हानियों की सीमित करने के लिए अनेकों अच्छे कदम उठाए गए हैं। परन्तु आज भी इस बात की दृढ़ आवश्यकता है कि सत्ताधारी राजनीतिक दल अथवा गठबंधन को इन शक्तियों के दुरुपयोग के विरुद्ध रोका जाए। इसके लिए दृढ़ जनमत तथा नागरिक समाज तथा अस्तित्व आवश्यक है। अमर नंदी ने ठीक ही चौकस किया है कि, “यह शक्तियाँ भरी हुई बंदूक हैं जिसका प्रयोग दोनों प्रकार से नागरिकों की रक्षा या फिर स्वतंत्रता नष्ट करने के लिए हो सकता है। इसके लिए बंदूक का प्रयोग बहुत ही सावधानीपूर्वक करना

चाहिए।” संकटकालीन व्यवस्थाएँ राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिए विशेष प्रकार की परिस्थितियों में प्रयोग के लिए हैं। इन व्यवस्थाओं के गलत प्रयोग को रोकने की आवश्यकता है न कि इनको संविधान में से समाप्त करने की।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताइए।

13. राष्ट्रीय संकट पर आपातकालीन स्थितियों में राष्ट्र की स्थिरता और सुरक्षा के लिए संकटकाल व्यवस्थाओं का संविधान में शामिल किया जाना एक ऐतिहासिक आवश्यकता है।
14. राष्ट्रपति को संसद के द्वारा महाभियोग का सामना नहीं करना पड़ता।
15. राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं।

नोट

5.8 भारत के उप-राष्ट्रपति (Vice-President of India)

संविधान के अनुच्छेद 63 के द्वारा उप-राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था की गई है। इस पद की व्यवस्था प्रारंभिक रूप में राष्ट्रपति के पद के अस्थाई या स्थायी रूप में अचानक पद रिक्त होने की पूर्ति के लिए की गई है।

उप-राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था करते समय संविधान निर्माता अमरीकी संविधान से प्रभावित हुए थे जिसमें उप-राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था है जो मृत्यु, त्याग-पत्र या महाभियोग के कारण राष्ट्रपति के पद के रिक्त हो जाने की स्थिति में राष्ट्रपति बन जाता है। मौलिक रूप में इसी उद्देश्य के लिए भारतीय संविधान में भी उप-राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था की गई है। परन्तु अमरीका में जब राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाता है तो उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति बन जाता है, जबकि भारत में उप-राष्ट्रपति केवल कार्यवाहक राष्ट्रपति (Acting President) ही बनता है। ऐसी स्थिति में नए राष्ट्रपति का चुनाव 6 महीने के अन्दर-अन्दर किया जाना अनिवार्य होता है। अमरीका में राष्ट्रपति के शेष कार्यकाल के लिए उप-राष्ट्रपति ही राष्ट्रपति बन जाता है। बीमारी या अन्य किसी कारण अमरीकी राष्ट्रपति का पद अस्थायी रूप में रिक्त होने की स्थिति में भारतीय उप-राष्ट्रपति के समान अमरीकी उप-राष्ट्रपति भी केवल कार्यवाहक राष्ट्रपति बनता है।

भारत में उप-राष्ट्रपति के पद से सम्बन्धित मुख्य व्यवस्थाओं पर निम्नलिखित के अनुसार चर्चा की जा सकती है—

(a) उप-राष्ट्रपति के पद के लिए योग्यताएँ (Qualification for the Office of the Vice-President)

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. उसकी आयु 35 वर्ष से कम न हो।
3. उसके पास ये सभी योग्यताएँ हों जो उसको राज्यसभा का सदस्य बनाने के योग्य बनाती हों।
4. उसके पास केन्द्र या राज्य सरकार में कोई लाभकारी पद न हो। परन्तु राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, राज्यपाल या केन्द्र या राज्य के मंत्री के पद पर कार्य करने वालों को इससे छूट प्राप्त रहती है।
5. वह संसद के किसी भी सदन या किसी भी राज्य विधानसभा का सदस्य न हो। यदि संघीय संसद, राज्य विधानपालिका या संसद का कोई सदस्य उप-राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाता है तो उसको पद संभालने से पहले अपनी सदन की सदस्यता से त्याग-पत्र देना पड़ता है।

(b) चुनाव (Election): उप-राष्ट्रपति का चुनाव एकहरी परिवर्तनशील वोट प्रणाली के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के द्वारा किया जाता है। मतदान सदैव गुप्त होता है। यह आवश्यक नहीं होता कि दोनों सदनों की बैठक साझी हो। उप-राष्ट्रपति के चुनाव को भी इस आधार पर स्थगित नहीं किया जा सकता कि संसद की कोई सीटें अभी खाली हैं।

नोट

अगस्त 1997 में उप-राष्ट्रपति के पद के लिए चुनाव हुए। दो उम्मीदवार थे, श्री कृष्णकांत और श्री सुरजीत सिंह बरनाला। श्री कृष्णकांत ने 441 मत प्राप्त करके विजय प्राप्त की और श्री सुरजीत सिंह बरनाला को 273 वोट ही मिले। 21 अगस्त 1997 को श्री कृष्णकांत ने देश के 10वें उप-राष्ट्रपति के रूप में पद संभाला और जुलाई 2002 में अपने कार्यकाल के दौरान उनका देहांत हो गया। इसलिए अगस्त 2002 में उप-राष्ट्रपति के पद के लिए पुनः चुनाव हुए और श्री भैरों सिंह शेखावत उप-राष्ट्रपति निर्वाचित हुए वर्तमान समय में हमिद अंसारी भारत के उप-राष्ट्रपति हैं।

(c) कार्यकाल (Term): उप-राष्ट्रपति का चुनाव 5 वर्ष के लिए किया जाता है। वह पुनः भी निर्वाचित किया जा सकता है। वह अपना कार्यकाल पूरा होने से पहले अपने पद से त्याग-पत्र भी दे सकता है जैसा कि 1969 में श्री वी.वी. गिरि ने किया था। उसके द्वारा अपना त्याग-पत्र राष्ट्रपति को भेजा जाता है।

(d) खाली पद की पूर्ति (Filling of a Vacancy): संविधान के अनुसार मृत्यु, त्याग-पत्र, पद से अलग कर दिए जाने या अन्य किसी कारण से खाली हुआ उप-राष्ट्रपति का पद जितना भी शीघ्र संभव हो, भरना होता है। परन्तु 6 महीने के अंदर-अंदर ही ऐसा किया जाना आवश्यक होता है। इस प्रकार उप-राष्ट्रपति के पद के लिए निर्वाचित व्यक्ति पूरे 5 वर्ष के कार्यकाल के लिए चुना जाता है। उसका कार्यकाल पद संभालने की तिथि से आरम्भ होता है।

उप-राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित पैदा हुए सभी झगड़ों की सुनवाई केवल भारत के सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है और इससे सम्बन्धित उसका निर्णय अन्तिम होता है।

(e) पद से हटाने का ढंग (Method of Removal): उप-राष्ट्रपति को राज्यसभा के द्वारा प्रस्ताव पास करके पद से अलग किया जा सकता है परन्तु इससे सम्बन्धित लोकसभा की सहमति आवश्यक होती है। उप-राष्ट्रपति को पद से अलग करने से पहले 14 दिन का नोटिस देना पड़ता है।

(f) वेतन (Salary): उप-राष्ट्रपति 90 हजार रुपए प्रति महीना वेतन लेता है परन्तु यह वेतन उसको उप-राष्ट्रपति के रूप में नहीं दिया जाता। वह यह वेतन उसे राज्यसभा का अध्यक्ष होने के नाते लेता है। अपने पद के साथ ही उप-राष्ट्रपति को निःशुल्क निवास स्थान, निःशुल्क डॉक्टरों इलाज आदि सुविधाएँ भी मिलती हैं।

(g) कार्य (Functions): उप-राष्ट्रपति दोहरी भूमिका निभाता है : 1. उप-राष्ट्रपति के रूप में भूमिका और 2. राज्यसभा के अध्यक्ष के रूप में कार्य।

1. उप-राष्ट्रपति के रूप में कार्य (Functions as the Vice-President): वास्तव में उप-राष्ट्रपति को संविधान द्वारा कोई विशेष संवैधानिक कार्य नहीं सौंपा गया। उस पर तब ही उत्तरदायित्व पड़ता है, जब राष्ट्रपति का पद मृत्यु या त्याग-पत्र या हटा देने के कारण रिक्त हो जाए। डॉक्टर वी.वी. गिरि ने डॉक्टर जाकिर हुसैन की मृत्यु के पश्चात् राष्ट्रपति के रूप में पद संभाला। फिर श्री बी.डी. जति ने श्री फखरुद्दीन अली अहमद का निधन हो जाने पर राष्ट्रपति का पद सम्भाला। उप-राष्ट्रपति, राष्ट्रपति के पद पर अस्थायी रूप में ही कार्य कर सकता है। अगर राष्ट्रपति की बीमारी के कारण उपराष्ट्रपति कार्यवाहक राष्ट्रपति बनता है तो वह तब तक इस पद पर आसीन रहता है जब तक राष्ट्रपति स्वास्थ्य प्राप्त कर अपना पद पुनः सम्भाल नहीं लेता। परन्तु अगर राष्ट्रपति के पद में मृत्यु, त्याग-पत्र अथवा महाभियोग के कारण स्थायी रिक्तता पैदा हो गई हो तो उपराष्ट्रपति बन जाता है तथा इस पर अधिक-से-अधिक 6 महीने तक कार्य कर सकता है। इस अवधि में नए राष्ट्रपति का चुनाव किया जाना अनिवार्य होता है। राष्ट्रपति के द्वारा उप-राष्ट्रपति को कोई विशेष कार्य सौंपा जा सकता है।

2. राज्य सभा के चेयरमैन के रूप में कार्य (Functions as the Chairman of Rajya Sabha): संविधान के अनुसार उप-राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि वह राज्यसभा के अध्यक्ष के रूप में पद संभाले। वह राज्यसभा का सदस्य तो नहीं होता परन्तु वह इसके चेयरमैन के रूप में कार्य करता है। इस हैसियत में वह सदन की कार्यवाही चलाता है। वह सदन में अनुशासन और मर्यादा कायम रखता है और उसके पास यह अधिकार है कि वह उन सदस्यों के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है जो सदन की कार्यवाही के नियमों का उल्लंघन करते हैं। वह

चर्चा और विवाद संचालित करता है और सदस्य उसकी आज्ञा से ही सदन में बोलते हैं। साधारण स्थिति में उसको राज्यसभा में किसी विषय/बिल पर वोट डालने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वह राज्यसभा का सदस्य नहीं होता। परन्तु बराबर वोट हो जाने की स्थिति में वह एक निर्णायक वोट डाल सकता है।

स्थिति (Position): इस तथ्य के बावजूद कि उप-राष्ट्रपति को कोई निश्चित या विशेष कर्तव्य नहीं दिए गए, वह महत्वपूर्ण स्थिति रखता है। वह विशेष दर्जे का स्वामी होता है। उसका पद राष्ट्रपति के पश्चात् दूसरा होता है। परन्तु इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि उसकी सरकार में वास्तविक भूमिका “निश्चय ही गैर-महत्वपूर्ण” है। टी.के. टोपे और एच.एम. जैन जैसे आलोचकों ने उप-राष्ट्रपति के पद को ‘व्यर्थ का ऊँचा पद’ करार दिया है, ऐसा कथन अमरीका के उप-राष्ट्रपति के लिए प्रयोग किया जाता है, परन्तु भारत के उप-राष्ट्रपति का पद व्यर्थ पद नहीं है। राज्यसभा के अध्यक्ष के रूप में उप-राष्ट्रपति के कार्यों को पूरी मान्यता और प्रशंसा प्राप्त है। अचानक घटना घटित होने की स्थिति में उप-राष्ट्रपति की आवश्यकता पड़ती है। वह अलग-अलग राष्ट्रीय कान्फ्रेंसों में भारत के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। भविष्य के राष्ट्रपतियों के लिए उसका पद एक प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में कार्य करता है। श्री एस. राधाकृष्णन, डॉ. जाकिर हुसैन, श्री वी.वी. गिरि, डॉ. शंकर दयाल शर्मा और श्री के.आर. नारायणन राष्ट्रपति चुने जाने से पहले उप-राष्ट्रपति के पद पर रहे। वर्तमान में हामिद अंसारी उप-राष्ट्रपति के रूप में इस ऊँचे पद के उत्तरदायित्वों को सम्मान और समर्पित भावना से निभा रहे हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

- संविधान के किस अनुच्छेद के द्वारा उप-राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था की गई है?
 - अनुच्छेद-65
 - अनुच्छेद-63
 - अनुच्छेद-69
 - अनुच्छेद-68
- उप-राष्ट्रपति निम्नलिखित में से किसका अध्यक्ष भी होता है?
 - लोकसभा
 - योजना आयोग
 - राज्यसभा
 - उपरोक्त में नहीं
- अमेरिका में जब राष्ट्रपति का पद रिक्त (मृत्यु, त्याग-पत्र या महाभियोग के कारण) होता है, तो उप-राष्ट्रपति—
 - राष्ट्रपति बनता है
 - कार्यवाहक राष्ट्रपति बनता है
 - (a) और (b) में कोई नहीं
 - उपरोक्त में कोई नहीं।

सारांश (Summary)

- संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। वह एक चुनाव मंडल के द्वारा निर्वाचित किया जाता है जो संसद के दोनों सदनों और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों पर आधारित होता है।
- राष्ट्रपति को संविधान का उल्लंघन करने के आधार पर अथवा अपने पद की मर्यादा भंग करने के दोष पर महाभियोग की प्रक्रिया के द्वारा पद से हटाया भी जा सकता है।
- अनुच्छेद 78 के अधीन प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह प्रशासन से सम्बन्धित सभी मामलों की जानकारी राष्ट्रपति को दे। राष्ट्रपति कोई भी जानकारी लेने के लिए प्रधानमंत्री को कह सकता है।
- राष्ट्रपति प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् संसद के पहले अधिवेशन के अवसर पर संसद के दोनों सदनों को सम्बोधित करता है और प्रत्येक वर्ष संसद के प्रथम अधिवेशन को अपने भाषण से आरंभ करता है।

नोट

- अनुच्छेद 352 के अधीन भारत पर चीनी आक्रमण को देखते हुए 26 अक्टूबर, 1962 को प्रथम बार संकटकाल स्थिति की घोषणा की गई थी।
- संवैधानिक व्यवस्थाओं का गलत प्रयोग या उल्लंघन करने की परिस्थिति में राष्ट्रपति को संसद के द्वारा महाभियोग की कार्यवाही का सामना करना पड़ सकता है।
- उप-राष्ट्रपति का चुनाव एकहरी परिवर्तनशील वोट प्रणाली के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के द्वारा किया जाता है।
- संविधान के अनुसार उप-राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि वह राज्यसभा के अध्यक्ष के रूप में पद संभाले। वह राज्यसभा की सदस्य तो नहीं होता परन्तु वह इसके चेयरमैन के रूप में कार्य करता है।

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. भारत में राष्ट्रपति का चुनाव कैसे होता है?
2. भारत के राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का वर्णन कीजिए।
3. भारत के उप-राष्ट्रपति की शक्तियों एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए?
4. भारत का राष्ट्रपति 'रबड़ की मोहर' मात्र है, क्या आप इस कथन से सहमत हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

- | | |
|-----------|----------------|
| 1. 35 | 2. टी.एन. शेषन |
| 3. 4350 | 4. असत्य |
| 5. सत्य | 6. सत्य |
| 7. (b) | 8. (d) |
| 9. (a) | 10. 360 |
| 11. 6 माह | 12. राष्ट्रीय |
| 13. सत्य | 14. असत्य |
| 15. सत्य | 16. (b) |
| 17. (c) | 18. (a) |

संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. भारतीय राजनीतिक प्रणाली— यू.आर. घई ।
2. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था— डॉ.एम.पी. राय ।

अध्याय 6: मंत्रि-परिषद् और प्रधानमंत्री (Council of Ministers and Prime Minister)

संरचना (Structure)

- 6.1 उद्देश्य (Objectives)
- 6.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 6.3 मंत्रि-परिषद् का निर्माण, गठन एवं कार्यकाल (Council of Ministers Structure and Tenure)
- 6.4 मंत्रि-परिषद् और मंत्रिमण्डल में अन्तर (Distinction between Council of Ministers and Cabinet)
- 6.5 मंत्रिमंडल के शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of Cabinet)
- 6.6 भारत का प्रधानमंत्री : योग्यताएँ, नियुक्ति, कार्य एवं शक्तियाँ (Prime Minister of India: Qualifications, Appointment, Functions and Powers)
- 6.7 प्रधानमंत्री की स्थिति (Position of the Prime Minister)
- 6.8 प्रधानमंत्री की तानाशाही (Dictatorship of the Prime Minister)
- 6.9 भारतीय प्रधानमंत्री और ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियों में तुलना (Comparison of the Powers of the Indian Prime Minister and British Prime Minister)
- 6.10 भारतीय प्रधानमंत्री की शक्तियों तथा स्थिति की अमेरिकन राष्ट्रपति की शक्तियों तथा स्थिति से तुलना। (Comparison of the Powers and Position of Indian Prime Minister with those of American President)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

6.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मंत्रि-परिषद् के संगठन, गठन, कार्य, शक्ति तथा मंत्रि-परिषद् और मंत्रिमण्डल में अन्तर को समझने हेतु।
- भारत के प्रधानमंत्री की योग्यता, कार्यकाल, शक्तियों तथा उसकी स्थिति का वर्णन करने हेतु।
- भारतीय प्रधानमंत्री और ब्रिटिश प्रधानमंत्री की स्थिति और शक्तियों के अन्तर को समझने में।
- भारतीय प्रधानमंत्री और अमेरिकन राष्ट्रपति के स्थिति और शक्तियों से तुलना कर सकने में।

नोट

6.2 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय संविधान द्वारा संसदीय प्रणाली की व्यवस्था की गई है और इसके लिए कार्यपालिका को दो भागों में बांटा गया है: (1) नाममात्र या सम्बैधानिक कार्यपालिका और (2) वास्तविक कार्यपालिका। भारत का राष्ट्रपति नाममात्र कार्यपालिका है और प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रि-परिषद् वास्तविक कार्यपालिका है। वास्तविक कार्यपालिका की अनुच्छेद 74 में व्यवस्था की गई है, जो इस प्रकार है, “राष्ट्रपति की सहायता करने और परामर्श देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् होगी जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होगा और राष्ट्रपति इसके परामर्श के अनुसार कार्य करेगा” राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद् का परामर्श मानने के लिए पाबंद होता है। वह मंत्रि-परिषद् के द्वारा दिए गये परामर्श पर केवल पुनर्विचार के लिए कह सकता है परन्तु पुनर्विचार के पश्चात् दिया गया परामर्श मानने से इनकार नहीं कर सकता। इस प्रकार मंत्रि-परिषद् ही भारत की वास्तविक कार्यपालिका है।

6.3 मंत्रि-परिषद् का निर्माण, गठन एवं कार्यकाल (Council of Ministers Structure and Tenure)

संविधान के अनुच्छेद 74(9) में मंत्रि-परिषद् की व्यवस्था है। 44वें संविधान संशोधन के बाद इस अनुच्छेद का स्वरूप इस प्रकार है—

“राष्ट्रपति को अपने कार्यों का संपादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति अपने कार्यों के निर्वहन में उसकी मंत्रणा के अनुसार चलेंगे। राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद् है उसकी मंत्रणा के पुनर्विचार की माँग कर सकते हैं। ऐसे पुनर्विचार के बाद भी मंत्रणा राष्ट्रपति को भेजी जाती है। उसे वह उसी के अनुसार स्वीकार करेंगे।

संविधान के अनुच्छेद 75 में संघीय मंत्रि-परिषद् के संगठन से संबंधित 6 मौलिक नियम निर्धारित किए हैं। ये निम्नलिखित अनुसार हैं:

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाएगी और शेष मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री के परामर्श पर राष्ट्रपति के द्वारा की जाएगी।
2. राष्ट्रपति की इच्छा तक ही मंत्री अपने पद पर रहेंगे।
3. मंत्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।
4. किसी मंत्री के अपने पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति उससे तृतीय अनुसूची में इसके लिए दिए हुए प्रपत्रों के अनुसार पद की तथा गोपनीयता की शपथ कराएगा।
5. अगर ऐसा मंत्री जो अपनी नियुक्ति के समय संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं होता और 6 महीने के अन्दर-अन्दर संसद के किसी भी सदन की सदस्यता प्राप्त नहीं कर सकता तो 6 महीने समाप्त होने पर वह मंत्री नहीं रह सकेगा।
6. मंत्रियों के वेतन तथा भत्ते ऐसे होंगे जैसे समय-समय पर संसद विधि द्वारा निर्धारित करे तथा जब तक संसद इस प्रकार निर्धारित न करे तब तक ऐसे होंगे जैसे कि द्वितीय अनुसूची में उल्लिखित हैं।

उक्त अनुच्छेदों को हमें संविधान के अन्य उपबंधों, सांविधानिक अभिसमयों और उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के प्रकाश में लेना चाहिए।

(क) अनुच्छेद 75 (1) के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति यद्यपि राष्ट्रपति करता है किन्तु इस मामले में वह कदाचित ही अपने स्व-विवेक का प्रयोग कर सकता है। प्रधानमंत्री की नियुक्ति में मनमानी नहीं की जा सकती क्योंकि राष्ट्रपति को ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री चुनना है जो लोक सभा के बहुमत दल का नेता हो।

अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। इसका अर्थ भी यही है कि कोई ऐसा ही व्यक्ति प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाना चाहिए जिसे लोक सभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त हो।

- (ख) राज्य सभा के सदस्य को भी प्रधानमंत्री नियुक्त किया जा सकता है, बशर्ते कि उसे लोक सभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त हो और वह बहुमत उसे अपना नेता चुने।
- (ग) साधारण परिस्थितियों में तो राष्ट्रपति के लिए प्रायः यह सन्देह करने की गुंजाइश नहीं होती कि किस व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाए। लेकिन विशेष परिस्थितियों में ऐसे अवसर उपस्थित हो सकते हैं जब राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री की नियुक्ति में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने की स्वतंत्रता मिल जाए। यदि लोक सभा में किसी को भी बहुमत प्राप्त न हो तो राष्ट्रपति किसी भी दल के नेता को मंत्रि-परिषद् बनाने के लिए आमन्त्रित कर सकता है, बशर्ते कि उसे यह संतोष हो कि वह व्यक्ति मंत्रि-परिषद् का निर्माण कर सकेगा। पर ऐसी परिस्थिति में भी राष्ट्रपति निर्माण कर सकेगा। पर ऐसी परिस्थिति में भी राष्ट्रपति को स्व-विवेक के प्रयोग का अवसर संभवतः कम ही प्राप्त होगा क्योंकि प्रायः कई दल मिलकर अपना नेता पहले ही चुन लेते हैं और इस तरह से लोक सभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त हो जाता है। राष्ट्रपति को स्व-विवेक के प्रयोग का दूसरा अवसर तब मिलता है, जब बहुमत का उपभोक्ता प्रधानमंत्री स्वयं त्याग-पत्र न देख पाता। इस स्थिति में राष्ट्रपति किसी प्रभावशाली व्यक्ति को मंत्रि-परिषद् निर्माण के लिए आमन्त्रित कर सकता है।
- (घ) मंत्रि-परिषद् के अन्य सदस्य प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। प्रधानमंत्री की इच्छा के विरुद्ध राष्ट्रपति किसी मंत्री को पदच्युत नहीं कर सकता।
- (ङ) मंत्री संसद के सदस्य होते हैं और लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह है कि मन्त्रिगण जो कुछ भी राष्ट्रपति के नाम में करते हैं, उसके लिए वे संसद के सामने उत्तरदायी होते हैं। वे अपने किसी अवैध तथा असंवैधानिक कार्य के लिए राष्ट्रपति के आदेश की आड़ नहीं ले सकते।

मंत्रि-परिषद् आकार और रचना: इस के आकार और रचना से संबंधित कोई औपचारिक नियम नहीं हैं। इस में किस को इससे लेना है यह प्रधानमंत्री पर निर्भर होता है। सामान्य रूप में इस में 50 से 80 मंत्री होते हैं। उनको निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जाता है। अब यह एक कानून है कि मंत्रि-परिषद् में लोक सभा की सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक मंत्री नियुक्त नहीं किए जा सकते।

(a) **कैबिनेट मंत्री:** इनकी संख्या 15 से 20 के बीच होती है। इनके समूह को कैबिनेट कहा जाता है जो मंत्रि-परिषद् की नीति-निर्माण और निर्णय-निर्माण करने वाला एक शक्तिशाली भाग होता है। उसमें सत्ताधारी दल। दलों के प्रमुख नेता होते हैं, वे प्रधानमंत्री के नजदीकी होते हैं। इनके पास महत्वपूर्ण विभाग होते हैं।

(b) **राज्य मंत्री:** वह दूसरी श्रेणी के मंत्री होते हैं जो कैबिनेट के सदस्य नहीं होते। एक राज्यमंत्री या तो किसी छोटे विभाग का स्वतंत्र रूप में चार्ज संभालता है या उसको एक कैबिनेट मंत्री से जोड़ दिया जाता है। गृह विभाग, विदेशी मामले, रक्षा हित, कृषि, मानव संसाधन जैसे विभागों में 2 या 3 राज्य मंत्री होते हैं जबकि हवाई यात्रा, सूचना और प्रसारण, श्रम, रेलवे, लोक कल्याण, जमीनी यातायात और कपड़ा जैसे विभागों के मुखिया राज्य मंत्री होते हैं। ऐसे मंत्री केवल उस समय ही कैबिनेट की बैठकों में भाग लेते हैं जब उनको इससे संबंधित प्रधानमंत्री के द्वारा विशेष रूप में कैबिनेट की किसी बैठक में भाग लेने का निमन्त्रण दिया जाता है।

(c) **उप-मंत्री:** वे सहायक मंत्री होते हैं जिनको कैबिनेट मन्त्रियों या राज्य मन्त्रियों से जोड़ा जाता है। कोई भी उप-मंत्री किसी भी विभाग का स्वतंत्र रूप में चार्ज नहीं संभालता। उसका कार्य उस मंत्री की सहायता करना होता है जिसके अधीन वह कार्य करता है। उसको मुख्य रूप में अपने विभाग से संबंधित प्रश्नों के संसद में दिए

नोट

नोट

जाने वाले उत्तर तैयार करने और संसद में सरकारी बिल पास करवाने की प्रक्रिया में सहायता करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है।

(iii) **संसदीय सचिव:** ये न तो मंत्री होते हैं और न ही उनकी कोई प्रशासनिक कार्य सौंपा जाता है। उनका एक मात्र कार्य मन्त्रियों की संसद में सहायता करना होता है। उनका कोई वेतन नहीं होता। संसदीय सचिव का पद एक ऐसा पद है जो भविष्य के मन्त्रियों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(iv) **उप-प्रधानमंत्री का पद:** इन 4 श्रेणियों के अतिरिक्त भारतीय कैबिनेट प्रणाली में 1950 से लेकर अब तक कई बार उप-प्रधानमंत्री का पद विद्यमान रहा है। आरंभ में सरदार बल्लभ भाई पटेल ने पंडित जवाहर लाल नेहरू की मंत्रि-परिषद् में मोरार जी देसाई को उप-प्रधानमंत्री बनाया था। फिर 1969 में उनके त्याग-पत्र के पश्चात् यह पद रिक्त रहा। 1977 में श्री मोरार जी देसाई के मंत्रि-मण्डल में दो उप-प्रधानमंत्री थे : चौधरी चरण सिंह और बाबू जगजीवन राम। इसके पश्चात् न ही चरण सिंह की मंत्रि-परिषद् जो केवल 6 महीने सत्ता में रही और न ही श्रीमती इन्दिरा गांधी की मंत्रि-परिषद् (1980-84) में उप प्रधानमंत्री का रहा। प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी (नवम्बर 1984 से नवम्बर 1989) ने भी उप-प्रधानमंत्री नियुक्त नहीं किया था। परन्तु प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह (1989-90) और प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर समय श्री देवी लाल उप-प्रधानमंत्री रहे।

क्या आप जानते हैं: जून 1991 में प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव की सरकार ने पद संभाला और इसमें उप-प्रधानमंत्री का पद नहीं था और इसके पश्चात् जुलाई 2002 में ही प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने श्री लाल कृष्ण आडवानी को उप-प्रधानमंत्री बनाया। मई 2004 में यू.पी.ए. मंत्रि-परिषद् में डॉ. मनमोहन सिंह ने अपनी सरकार में उप-प्रधानमंत्री पद की व्यवस्था न करने का निर्णय किया।

संविधान के अनुसार उप-प्रधानमंत्री के पद की व्यवस्था नहीं की गई है। इसमें केवल इतना ही कहा गया है कि—“प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रि-परिषद् होगी...” और यह अपनी इच्छा पर निर्भर होता है या दल राजनीति का दबाव होता है कि मंत्रि-परिषद् में उपप्रधानमंत्री का पद स्थापित किया जाये या नहीं।

मंत्रि-परिषद् का कार्यकाल—संविधान के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पदों पर रहेंगे, परन्तु यह उपबन्ध औपचारिक है। वास्तविकता यह है कि मंत्रि-परिषद् का कार्यकाल उस समय तक जारी रहेगा जब तक कि उसे लोक सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है। लोक सभा भंग हो जाने पर तथा नयी लोक सभा बनने पर नये मंत्रिमण्डल का निर्माण होता है।

6.4 मंत्रि-परिषद् और मंत्रि-मण्डल में अन्तर (Distinction between Council of Ministers and Cabinet)

संविधान के अनुच्छेद 74 में केवल मंत्रि-परिषद् की व्यवस्था है और कैबिनेट का कोई वर्णन नहीं है। कैबिनेट एक अतिरिक्त संवैधानिक संस्था है। यह मंत्रि-परिषद् का एक भाग है जिसमें 15 से 20 तक उच्च स्तर के मंत्री ही शामिल होते हैं। इन मंत्रियों तक उच्च स्तर के मंत्री ही शामिल होते हैं। इन मंत्रियों को कैबिनेट मंत्री कहा जाता है। तथा ये मिलकर साझे रूप में नीति-निर्माण का कार्य प्रधानमंत्री के नेतृत्व में करते हैं। कैबिनेट के द्वारा लिए गये निर्णयों को सदैव ही मंत्रि-परिषद् के निर्णयों के नाम से पुकारा जाता है और सभी मंत्रियों का यह कर्तव्य होता है कि वे उन निर्णयों का समर्थन करें। प्रत्येक असहमति रखने वाले मंत्री को अपना पद छोड़ना पड़ता है जैसा कि अगस्त 1991 में श्री राममूर्ति ने किया था। मंत्रि-परिषद् वास्तव में भारतीय राजनीतिक प्रणाली में शक्ति का वास्तविक केन्द्र होती है। मंत्रि-परिषद् और मंत्रि-मण्डल में निम्नलिखित अन्तर है—

1. कैबिनेट मंत्रि-परिषद् का भाग है। मंत्रि-परिषद् एक बड़ी संस्था है जबकि कैबिनेट छोटी, परन्तु यह मंत्रि-परिषद् का सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली भाग होती है।

2. सभी मंत्री मिलकर मंत्रि-परिषद् बनाते हैं, जबकि कैबिनेट में 15 से 20 तक उच्च स्तर के महत्वपूर्ण मंत्री होते हैं जिनको कैबिनेट मंत्री का स्तर मिला होता है।
3. प्रधानमंत्री की अध्यक्षता के अधीन कैबिनेट की बैठकों, जो निरन्तर (कम-से-कम सप्ताह में एक बार) होती हैं, में केवल कैबिनेट मंत्री ही भाग लेते हैं। दूसरे मंत्री कैबिनेट की बैठक में तभी भाग लेते हैं जब प्रधानमंत्री के द्वारा विशेष रूप में उनको ऐसा करने के लिए कहा जाए। पूर्ण मंत्रि-परिषद् की बैठक बहुत ही कम होती है।
4. नीति-निर्माण करना कैबिनेट का कार्य होता है, मंत्रि-परिषद् का नहीं।
5. अनुच्छेद 74 के अनुसार संविधान में मंत्रि-परिषद् की व्यवस्था है कैबिनेट की नहीं। कैबिनेट का संगठन और कार्य करने ढंग संसदीय प्रणाली की परम्पराओं पर निर्भर रहता है। तकनीकी रूप में कैबिनेट एक अतिरिक्त सम्बैधानिक संस्था है, लेकिन भारतीय राजनीतिक प्रणाली की एक सबसे अधिक शक्तिशाली संस्था है।

6.5 मंत्रि-मण्डल के शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of Cabinet)

(1) **नीति निर्धारण का कार्य**—कैबिनेट अथवा मंत्रिमण्डल का सबसे उल्लेखनीय कार्य शासन की आन्तरिक तथा विदेश नीति का निर्माण करना है। संसदीय पद्धति के अनुसार, कैबिनेट को अपनी नीतियों का संसद द्वारा अनुमोदन कराना पड़ता है। संसद यदि कैबिनेट की नीतियों को अस्वीकार कर दे तो मंत्रि-मण्डल को त्यागपत्र देना होता है। कैबिनेट का लोक सभा का विश्वास प्राप्त होने का यही अभिप्राय है।

(2) **कार्यपालिक सम्बन्धी कार्य**—यद्यपि संविधान के द्वारा कार्यपालिक शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित की गयी हैं, परन्तु व्यवहार में इन शक्तियों का प्रयोग मंत्रि-मण्डल द्वारा ही किया जाता है। मंत्रि-मण्डल ही इन कार्यों के लिए सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रत्येक मंत्री भी किसी एक अथवा एक से अधिक विभागों का अध्यक्ष होता है।

(3) **कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य**—संसद में महत्वपूर्ण विधेयक मंत्रियों द्वारा ही पेश किए जाते हैं। इन विधेयकों को औपचारिक वाद-विवाद के बाद प्रायः स्वीकार कर लिया जाता है। प्रदत्त व्यवस्था (Delegated Legislation) के द्वारा भी मंत्रि-मण्डल विधि-निर्माण में संसद का नेतृत्व करता है। संसद को तो इतना समय नहीं मिल पाता कि वह प्रत्येक कानून पर विस्तारपूर्वक विचार करे। अतः संसद द्वारा पारित कानून को मंत्रि-परिषद् ही व्यावहारिक रूप देती है।

(4) **वित्तीय कार्य**—राष्ट्र की आर्थिक नीति का निर्धारण भी मन्त्रि-मण्डल ही करता है। वित्तमंत्री प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में उस वर्ष के अनुमानित आय-व्यय का विवरण (बजट) संसद के समक्ष पेश करता है। बजट को पास कराने का उत्तरदायित्व मंत्रि-मण्डल के ऊपर ही है। यदि संसद बजट को अस्वीकार कर देती है तो मंत्रि-मण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है। परन्तु व्यवहार में बजट को संसद द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। अन्य वित्त विधेयक भी लोक सभा में मंत्रियों द्वारा ही रखे जाते हैं।

(5) **विविध कार्य**—मंत्रि-मण्डल के कुछ अन्य कार्य इस प्रकार हैं—

(i) महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियों करना, जैसे—राज्यों के राज्यपाल, सर्वोच्च व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, एटॉर्नी जनरल, सेनापति आदि। यद्यपि संविधान द्वारा इन नियुक्तियों का अधिकार राष्ट्रपति को है, परन्तु व्यवहार में ये नियुक्तियाँ मन्त्रि-मण्डल द्वारा ही होती हैं। मन्त्रि-मण्डल द्वारा इन पदों पर जिन व्यक्तियों की सिफारिश की जाती है, राष्ट्रपति उन्हें स्वीकार कर लेता है तथा इस आशय की घोषणा कर देता है।

(ii) अपराधियों को क्षमा प्रदान करना।

(iii) विभिन्न सेवाओं के लिए उच्च पदक देना।

(iv) संविधान में संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव रखना और उन्हें स्वीकृति देना।

(v) युद्ध और शान्ति की घोषणा।

(vi) राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग।

नोट

टास्क: मंत्रि-मण्डल की शक्तियों का उल्लेख कीजिए।

मंत्रि-परिषद् की असीमित शक्तियाँ—भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत संघीय अथवा केन्द्रीय परिषद् सरकार का सर्वाधिक शक्तिशाली अंग है। संविधान के अन्तर्गत यद्यपि सैद्धांतिक तौर पर संसद का मंत्रि-परिषद् पर नियंत्रण रहता है, परन्तु व्यवहार में संसद मंत्रि-परिषद् के इशारों पर ही कार्य करती है। लोक सभा में बहुमत के बल पर मंत्रि-परिषद् अपने सभी निर्णयों पर संसद की मुहर लगवा लेती है। इसलिए विद्वानों ने कहा है कि “संसद की सर्वोच्चता का सिद्धान्त केवल दिखावा है तथा इसकी आड़ में मंत्रि-मण्डल की तानाशाही स्थापित हो गयी है।” मंत्रि-परिषद् के तानाशाही के पीछे लोक सभा में सत्तारुढ़ दल को प्रबल बहुमत होना है। मंत्रि-परिषद् की इस तानाशाही को केवल जागरूक जनमत ही रोक सकता है। कोई भी मंत्रि-परिषद् यह नहीं चाहेगा कि देश का जनमत उसके विरुद्ध हो तथा आगामी चुनावों में उसे पराजय का सामना करना पड़े। हाल ही में न्यायपालिका ने भी मंत्रि-परिषद् की तानाशाही पर अंकुश के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

1. संविधान के अनुच्छेद 74(9) में की व्याख्या है।
2. प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है।
3. अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रीत्व काल में उप-प्रधान मंत्री थे।
4. संसद द्वारा पारित कानून को ही व्यावहारिक रूप देती है।

6.6 भारत का प्रधानमंत्री : योग्यताएँ, नियुक्ति, कार्य एवं शक्तियाँ (Prime Minister of India : Qualifications, Appointment, Functions and Powers)

ब्रिटेन की भांति भारतीय प्रशासन में भी प्रधानमंत्री का सर्वोच्च स्थान है। प्रशासन का समस्त उत्तरदायित्व उसी पर होता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियों के संबंध में **रैम्जे म्यूर** ने कहा था कि, “उसको इतनी शक्तियाँ प्राप्त हैं कि विश्व के किसी भी संवैधानिक प्रधान को प्राप्त नहीं है, अमेरिका के राष्ट्रपति को भी नहीं है। जब तक कॉमन-सभा में उसके दल का बहुमत है, वह ऐसे कार्य कर सकता है, जिन्हें कोई राष्ट्रपति नहीं कर सकता। यह वचन दे सकता है कि अमुक विधि पारित की जायेगी और अमुक धनराशि संसद द्वारा स्वीकार कर ली जायेगी।” यही बात भारतीय प्रधानमंत्री पर ठीक उतरती है। संसद का बहुमत प्राप्त होने पर भारतीय प्रधानमंत्री प्रत्येक कार्य कर सकता है। वह विदेश नीति तथा गृह नीति संबंधी किसी भी प्रकार के निर्णय ले सकता है। वह अपनी जरा-सी गलती से देश का युद्ध में झोंक सकता है तथा उसे पतन के गर्त में धकेल सकता है और जरा-सी सावधानी में उसे बचा भी सकता है।

प्रधानमंत्री की योग्यताएँ (Qualifications of the Prime Minister)—प्रधानमंत्री संसद का सदस्य होता है अतएव यह स्वाभाविक ही है कि संसद सदस्यों के लिए निर्धारित योग्यतायें विद्यमान होनी चाहियें। इसके अतिरिक्त उसे लोक सभा में बहुत का विश्वास भी प्राप्त होना चाहिए।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति (Appointment of the Prime Minister)—संविधान के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जायेगी पर व्यवहार में प्रधानमंत्री की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति की शक्ति

नाम-मात्र की ही है। वह लोक सभा के बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमंत्री पद के लिये आमन्त्रित करने के लिए बाध्य है। इसका कारण यह है कि यह आवश्यक है कि प्रधानमंत्री तथा उसके मंत्रि-मण्डल को लोक सभा का समर्थन प्राप्त हो और यह बहुमत दल के नेता को ही प्राप्त हो सकता है। अतएव बहुमत दल का नेता ही प्रधानमंत्री के पद पर आरूढ़ हो सकता है।

तथापि कुछ इस प्रकार की परिस्थितियाँ हैं जिसमें प्रधानमंत्री की नियुक्ति के सन्दर्भ में राष्ट्रपति स्वेच्छाधिकार का प्रयोग कर सकता है। जैसे लोक सभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तथा संयुक्त मंत्रि-मण्डल का गठन आवश्यक हो, तब राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के चयन में स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है। उदाहरणार्थ लोक सभा में स्पष्ट बहुमत न रखते हुए भी चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्त किया गया। आपातकाल में राष्ट्रपति लोक सभा का विघटन कर कुछ अवधि के लिये किसी भी व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त कर सकता है। प्रधानमंत्री योजना आयोग का अध्यक्ष भी होता है।

यह आवश्यक नहीं है कि प्रधानमंत्री लोक सभा का ही सदस्य हो। स्व. श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रधानमंत्री चुने के बाद यह स्पष्ट हो गया था कि राज्य सभा का सदस्य भी प्रधानमंत्री हो सकता है।

नोट: संविधान के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाएगी पर व्यवहार में प्रधानमंत्री की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति की शक्ति नाम मात्र की ही है।

प्रधानमंत्री मंत्रि-परिषद् का निर्माण, जीवन और मृत्यु का केन्द्र बिन्दु (Prime Minister as the Central Point of the Council of Minister)–**लॉस्की** ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री के लिए कहा है कि, “वह मन्त्रिमण्डल के निर्माण, जीवन और मृत्यु का केन्द्र बिन्दु है।” (“He is the centre of its formation, centre to its life and centre to its death.”) ऐसी ही बात भारत के प्रधानमंत्री के लिये भी सही है। **डॉ. अम्बेडकर** ने संविधान सभा में कहा था कि, “सामूहिक उत्तरदायित्व केवल प्रधानमंत्री के पद द्वारा ही प्रवर्तित कराया जा सकता है।” उन्होंने यह भी कहा था कि, “जब तक प्रधानमंत्री चाहेगा तभी तक कोई व्यक्ति मंत्रि-मण्डल में रह सकता है।” इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री की इच्छा तथा उसकी योग्यता एवं अपने साथियों को साथ लेकर चलने की क्षमता पर ही मंत्रि-परिषद् का अस्तित्व निर्भर करता है। यदि प्रधानमंत्री त्याग-पत्र देता है तो समस्त मंत्रि-परिषद् को त्याग-पत्र देना होता है।

रेम्जेम्यूर के अनुसार, “The cabinet is, in short, the steering wheel of the state, but the Prime Minister controls it.”

प्रधानमंत्री के कार्य तथा शक्तियाँ (Powers and Functions of the Prime Minister)

भारत का प्रधानमंत्री मंत्रि-मण्डल रूपी मेहराब की आधारशिला (Key-stone of the Cabinet Arch) हैं। इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री की भाँति उसको इतनी व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं कि उसको देश में शासन प्रबन्ध का केन्द्र कहा जा सकता है।

देश के शासन में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसको इतनी शक्तियाँ प्राप्त हो। इसके कार्य तथा शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **मंत्रि-परिषद् का निर्माण** (Formation of Council of Minister)–मंत्रि-परिषद् के निर्माण में प्रधानमंत्री को केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है। संवैधानिक दृष्टि से भी राष्ट्रपति अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सिफारिश पर करता है। अपनी नियुक्ति के पश्चात् प्रधानमंत्री का पहला कार्य यह होता है कि वह अपने साथी मन्त्रियों को चुने। वह मन्त्रियों के नामों की सूची तैयार करता है तथा नियुक्ति करने के लिए राष्ट्रपति के पास भेजता है। मंत्रि-परिषद् के निर्माण में प्रधानमंत्री को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त होती है। वही ही इस बात का निर्णय करता है कि मंत्रि-परिषद् में कितने सदस्य होंगे, उनमें विभिन्न प्रकार के मन्त्रियों की संख्या क्या होगा तथा कौन-कौन से

नोट

नोट

व्यक्ति मंत्रि-परिषद् में लिये जाएँगे। इस बारे में राष्ट्रपति अपनी रुचि व अरुचि के अनुसार प्रधानमंत्री को किसी व्यक्ति को मंत्रि-परिषद् में शामिल करने या न करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। उसका अपना दल भी इस बारे में उसे निर्देश देने की कोशिश नहीं करता है। प्रधानमंत्री का निर्णय अन्तिम निर्णय होता है।

परन्तु व्यवहार में मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते समय प्रधानमंत्री को कई बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं। उसे अपने दल के सभी प्रमुख व प्रभावशाली सदस्यों को मंत्रि-परिषद् में शामिल करना पड़ता है। उसे यह भी देखना होता है कि मंत्रि-परिषद् में सभी राज्यों, धर्मों, सम्प्रदायों आदि को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। कई बार मंत्रि-परिषद् में योग्य और अनुभवी प्रशासक भी शामिल किए जाते हैं। वह नवयुवक वर्ग के सदस्यों को भी कुछ स्थान देता है। ताकि उन्हें प्रशिक्षण देकर भविष्य में शासन को संभालने के योग्य बनाया जा सके।

2. **विभागों का बंटवारा (Distribution of Portfolios)**—मन्त्रियों की नियुक्ति के पश्चात् प्रधानमंत्री उनमें प्रशासकीय विभागों को बाँटता है। वह ही यह निर्णय करता है कि किस मन्त्री को किस विभाग का अध्यक्ष बनाये जाए, कौन-सा मन्त्री कैबिनेट मन्त्री हो, कौन-सा राज्य मन्त्री व कौन-सा उपमन्त्री। वह यह देखता है कि कौन-सा मन्त्री किस विभाग को कुशलतापूर्वक चला सकता है। विभागों का बँटवारा करते समय वह अपने दल के वरिष्ठ सदस्यों को सन्तुष्ट करने का यत्न करता है, उनके राजनैतिक महत्व को ध्यान में रखता है व विभिन्न राज्यों, प्रदेशों व सम्प्रदायों की ओर विशेष ध्यान देता है, परन्तु एक लोकप्रिय व शक्तिशाली प्रधानमंत्री अपनी इच्छानुसार मंत्रि-परिषद् की बनावट निश्चित करता है।

3. **मन्त्रियों को हटाने की शक्ति (Power to Remove Minister)**—सैद्धान्तिक रूप में मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पद पर बने रहते हैं परन्तु राष्ट्रपति को पद से अलग करने का निर्णय प्रधानमंत्री के कहने पर ही होता है। अतः “व्यवहार में मन्त्री प्रधानमंत्री के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर रहते हैं।” (“Theoretically the ministers hold office during the pleasure of the President but in practice, it is the pleasure of the Prime Minister during which they remain in office.”)

क्या आप जानते हैं: अगर प्रधानमंत्री की दृष्टि में कोई मन्त्री कुशलता से कार्य नहीं कर रहा अथवा वह मन्त्री प्रधानमंत्री के किसी निर्णय से सहमत नहीं है तो प्रधानमंत्री उस व्यक्ति को त्याग-पत्र देने के लिए कह सकता है जो कि उस मन्त्री को देना ही होता है।

अन्यथा प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को कहकर उसे पदच्युत करवा सकता है। वास्तव में इस बात की नौबत नहीं आती। जब भी किसी मन्त्री को यह पता चलता है कि प्रधानमंत्री उसे मंत्रि-परिषद् में नहीं रखना चाहता तो वह स्वयं त्याग-पत्र दे देता है।

अप्रैल, 1992 में केन्द्रीय विदेश श्री माधवसिंह सोलंकी को त्याग-पत्र देना पड़ा, क्योंकि उन्होंने एक गुप्त पत्र स्विस् विदेशो मंत्री को दिया, जो बोफोर्स तोप सौदे की चल रहीं जाँच-पड़ताल से संबंधित था तथा जिसका लोक सभा में हंगामा हुआ।

अतः हम कह सकते हैं कि प्रधानमंत्री ही मन्त्रियों की नियुक्ति करता है, उनमें विभागों का बँटवारा करता है तथा उन्हें पद से अलग कर सकता है। प्रधानमंत्री को ऐसी शक्तियों का स्वामी मन्त्रियों में सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना रखने के लिए बनाया गया है। जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में स्पष्ट किया, “प्रधानमंत्री कैबिनेट रूपी मेहराब की आधारशिला है और हम जब तक इस पद का मन्त्रियों को नियुक्त तथा पदच्युत करने का अधिकार नहीं देते, तब तक सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना नहीं आ सकती।” (“The Prime Minister is the key stone of the arch of the Cabinet and unless and until we create that office and endow that office with statutory authority to nominate and dismiss a minister there can be no collective responsibility.”)

4. **लोक सभा का नेतृत्व करता है (Leader of the Lok Sabha)**—इंग्लैण्ड की भाँति भारत का प्रधानमंत्री लोक सभा का नेतृत्व करता है। वह सदन में सरकार की नीति से संबंधित महत्वपूर्ण घोषणाएँ करता है

और प्रश्नों का उत्तर देता है। वह लोक सभा में वाद-विवाद को आरंभ करता है तथा मंत्रियों का सदन में आलोचना से सुरक्षा करता है। वह अपने दल के सदस्यों को सचेतक (Whips) द्वारा आदेश तथा निर्देश भेजता है तथा उन पर निगरानी और नियन्त्रण रखता है। सदन के वैधानिक कार्यों पर उसका विशेष प्रभाव होता है। वह स्पीकर के साथ मिलकर सदन का कार्य करता है तथा सदन में अनुशासन बनाए रखने के लिए स्पीकर की सहायता करता है।

5. **राष्ट्रपति तथा मन्त्रिमण्डल में कड़ी का काम करता है** (Link between the President and the Cabinet)—प्रधानमंत्री राष्ट्रपति तथा मन्त्रिमण्डल के मध्य कड़ी का काम करता है। वह राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के द्वारा किए निर्णय की सूचना देता है तथा राष्ट्रपति के विचार मन्त्रिमण्डल के समक्ष रखता है। राष्ट्रपति उसे किसी एक मन्त्री द्वारा व्यक्तिगत रूप में किए गये निर्णयों पर मन्त्रिमण्डल का निर्णय लेने के लिए कह सकता है। वह राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है। यदि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श से सहमत न हो तो भी उसे परामर्श मानना पड़ता है।

6. **कैबिनेट का नेतृत्व** (Leadership of the Cabinet)—प्रधानमंत्री कैबिनेट का नेता होता है। वह कैबिनेट की बैठकों की प्रधानता करता है। राष्ट्रपति कैबिनेट की कार्यवाही में भाग नहीं लेता। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कैबिनेट सभी कार्य करती है। वही कैबिनेट की बैठक बुलाता है, उसमें विचार किए जाने वाले विषयों की सूची बनाता है, कैबिनेट में विभिन्न विषयों पर बहस को संचालित करता है तथा अगर उचित समझे तो उन पर मतदान करवाता है। अधिकतर किसी नीति पर सहमति तभी होती है जब उस नीति को प्रधानमंत्री की सहमति प्राप्त हो जाए। संक्षिप्त में हम कह सकते हैं कि कैबिनेट की संपूर्ण कार्यवाही प्रधानमंत्री की देख-रेख में होती है।

7. **विभिन्न विभागों में एक कड़ी** (As a Link between different Departments)—कैबिनेट का प्रधान होने के नाते वह एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य करता है। अतः विभिन्न विभागों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं, झगड़ों तथा मतभेदों को इस तरह सुलझाना जिससे प्रशासिक कुशलता बनी रही। कुशल प्रशासन के लिये ये आवश्यक है कि सरकार के विभिन्न विभागों में आपसी सहयोग तथा साधनों का समन्वय हो। ऐसे उद्देश्य के लिए प्रधानमंत्री विभिन्न विभागों में कड़ी की तरह कार्य करता है। वह अन्तर विभागीय मतभेदों को दूर करने के लिए मध्यस्थ तथा निर्णायक के रूप में कार्य करता है।

8. **राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार** (Chief Advisor of the President)—प्रधानमंत्री राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार है। राष्ट्रपति प्रत्येक मामले पर प्रधानमंत्री की सलाह लेता है और उसके द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करता है, वह उसकी सलाह को मानने के लिए बाध्य है। राष्ट्रपति को प्रशासन के बारे में किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त करनी हो, तो वह किसी अन्य मन्त्री से सीधा बात न करके प्रधानमंत्री से ही बात करता है तथा सूचना प्राप्त करता है।

9. **राष्ट्र का नेता** (Leader of the Nation)—प्रधानमंत्री संसद में बहुमत प्राप्त राजनैतिक दल का नेता ही नहीं, राष्ट्र का भी नेता है। वह अपनी उच्च पदवी के कारण राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी बन जाता है। उसे वह गौरव प्राप्त होता है जो किसी अन्य मन्त्री को प्राप्त नहीं होता। वह राष्ट्र का एकमात्र प्रतिनिधि है। संकट के समय सारा राष्ट्र उसके नेतृत्व को स्वीकार करता है। संकटकालीन समस्याओं का सामना करने के लिए विरोधी दल भी उसे अपना पूर्ण सहयोग देते हैं। दूसरे देश में प्रधानमंत्री का सम्मान एक राष्ट्र के नेता के रूप में किया जाता है।

10. **दल का नेता** (Leader of the Party)—प्रधानमंत्री संसद में बहुमत प्राप्त राजनैतिक दल का नेता ही नहीं होता, वह अपने दल का सर्वोच्च नेता होता है। उसका समस्त दल उसके सहारे ही चलता है। आम चुनाव वास्तव में प्रधानमंत्री का ही चुनाव होता है। दल को भली-भाँति संगठित करने, दल की नीतियाँ निर्धारित करने व कार्यक्रम तैयार करने, चुनाव संबंधी प्रचार करने में प्रधानमंत्री का प्रमुख हाथ होता है। चुनाव के समय जितने भाषण देता है तथा उनका लोगों पर जितना प्रभाव पड़ता है, वैसा दल के किसी और नेता का नहीं होता। आम चुनाव में उसके दल की विजय वास्तव में प्रधानमंत्री की ही विजय होती है।

11. **सरकार की योग्यता के लिए उत्तरदायी (Responsible for Able Government)**—प्रधानमंत्री को सदा यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसकी सरकार तथा पार्टी की देश में साख बनी रहे। इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए वह अपने मन्त्रिमण्डल में मौके-मौके पर परिवर्तन भी कर सकता है। नवीन मन्त्रियों को नियुक्त कर सकता है तथा यदि ऐसा अनुभव करे कि किसी विशेष मन्त्री का मन्त्रिमण्डल में होने सरकार के हित में अथवा भाव में नहीं हैं तो वह ऐसे मन्त्री को पद से हटा सकता है। **लास्की** के शब्दों में, “प्रधानमंत्री जैसे भी चाहे अपनी मण्डली में परिवर्तन कर सकता है।” (“He can shuffle his pack whenever he so likes”) **डॉ. अम्बेडकर** ने संविधान सभा में कहा था, “प्रधानमंत्री कैबिनेट रूपी मेहराब का बीच वाला स्तम्भ है, जब तक हम उसे वैधानिक आधार पर मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को नियुक्ति करने तथा पदच्युत करने का अधिकार नहीं देते, सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता।”

12. **सरकार का मुखिया (Head of the Government)**—भारत में संसदीय सरकार है जिसमें राष्ट्र का मुखिया राष्ट्रपति है तथा सरकार का वास्तविक मुखिया प्रधानमंत्री है। राष्ट्रपति की कार्यपालिका, न्यायपालिका, आपातकालीन आदि समस्त शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है तथा राष्ट्रपति केवल परामर्श अथवा उत्साह दे सकता है और अवसर पड़ने पर चेतावनी भी दे सकता है। (“The President like the British Crown can advise, encourage or warn.”) वह गृह तथा विदेशी नीति का निर्माण करता है। वह समस्त महान् नीतियों की मन्त्रिमण्डल की ओर से घोषणा भी करता है। बजट भी उसकी देखरेख में तैयार होता है। संवैधानिक रूप में ऊँचे पदों पर नियुक्तियाँ करने तथा उपाधियाँ (Titles) देने का अधिकार राष्ट्रपति को है, परन्तु प्रयोग में राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सम्मति के बिना न कोई नियुक्ति करता है तथा न ही कोई उपाधि देता है। इन उच्च अधिकारों का प्रयोग प्रधानमंत्री द्वारा ही किया जाता है।

13. **विदेशी नीति में सरकार का मुख्य प्रवक्ता (Chief Spokesman of the Government on Foreign Policy)**—प्रधानमंत्री विदेशी मामलों में विशेष रुचि रखता है तथा उन पर नियंत्रण रखता है। विदेशी नीति के निर्माण में उसका महत्वपूर्ण भाग होता है। वहीं विदेशी मामलों में संबंधी महत्वपूर्ण घोषणाएं करता है। वैसे विदेशी मामलों का विभाग विदेश मन्त्री के अधीन होता है, परन्तु विदेश मन्त्री प्रधानमंत्री की सलाह के बिना कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं करता। विदेश मन्त्री उसका अत्यन्त विश्वास प्राप्त मन्त्री होता है। जितना गहरा संबंध प्रधानमंत्री और विदेश मन्त्री में होता है, उतना शायद ही प्रधानमंत्री और किसी अन्य मन्त्री में हो।

14. **लोक सभा को भंग करवाने का अधिकार (Power to get the Lok Sabha dissolved)**—राष्ट्रपति लोक सभा को प्रधानमंत्री की सलाह से ही भंग करता है। परन्तु यदि राष्ट्रपति यह समझे कि लोक सभा को भंग करना राष्ट्र के हित में नहीं है तो वह प्रधानमंत्री की सलाह को मानने से इनकार कर सकता है। दिसम्बर 1970 में राष्ट्रपति वी.वी. गिरी ने प्रधानमंत्री की सलाह पर लोक सभा भंग की। 18 जून, 1977 को राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सलाह पर लोक सभा भंग की। 22 अगस्त, 1979 को राष्ट्रपति संजीवा रेड्डी ने प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह की सलाह पर लोक सभा को भंग किया, जिस पर जनता पार्टी के द्वारा राष्ट्रपति के इस कार्य की कड़ी आलोचना की गई। जनता पार्टी का कहना था कि राष्ट्रपति के इस कार्य की कड़ी आलोचना की गई। जनता पार्टी का कहना था कि राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री चौ. चरण सिंह की सलाह मानने से इनकार करना चाहिए था और जनता पार्टी के नेता जगजीवन राम को सरकार बनाने का निमन्त्रण देना चाहिए।

15. **प्रधानमंत्री राष्ट्रमंडल के देशों से अच्छे संबंध स्थापित करता है (Prime Minister maintains Good Relations with Common Wealth Countries)**—भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, जिस कारण राष्ट्रमंडल के देशों के साथ मैत्री पूर्ण संबंध स्थापित करना प्रधानमंत्री का कार्य है। प्रधानमंत्री राष्ट्रमंडल की बैठकों में भाग लेता है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई राष्ट्रमंडल की बैठकों में भाग लेते थे। इन्होंने राष्ट्रमंडल की बैठक जो इंग्लैण्ड में 8 जून, 1977 को हुई थी, में भाग लिया था।

16. **प्रधानमंत्री और सुरक्षा (Prime Minister and the Defence)**—राष्ट्र की सुरक्षा का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। इस कारण उसका रक्षा विभाग पर पूरा नियन्त्रण होता है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए जो भी आवश्यक व्यवस्थाएँ होती हैं, उनका वह पूरी तरह से ध्यान रखता है। राष्ट्र की सुरक्षा और विदेश नीति में घनिष्ठ

नोट

संबंध होता है और वह दोनों ही विभागों के कार्यों के संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। देश की हार-जीत उसी की है। उदाहरण के लिए, 1965 के युद्ध में पाकिस्तान की विजय का श्रेय श्री लाल बहादुर शास्त्री को मिला। प्रधानमंत्री राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कैबिनेट से सलाह लेकर यह निर्णय करता है कि किस राष्ट्र से सन्धि की जाए, किस राष्ट्र से किस प्रकार के अस्त्र लिए जाएँ और संकट के समय किस राष्ट्र की सहायता ली जाए।

17. **प्रधानमंत्री का अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण (Control of the Prime Minister over Economy)**—प्रधानमंत्री का देश की अर्थव्यवस्था पर पूरा नियंत्रण होता है। अर्थव्यवस्था की विफलता का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। जुलाई 1969 से जून 1970 तक वित्त विभाग श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने संभाला था।

18. **सरकार का प्रमुख प्रवक्ता (Chief Spokesman of the Government)**—संसद तथा जनता के सामने मन्त्रिमण्डल की नीति और निर्णयों की घोषणा प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है। वह सभी प्रशासकीय विभागों की जानकारी रखता है, और जब कभी कोई मन्त्री संकट में हो, तो उसकी सहायता करके मन्त्रिमण्डल रूपी नौका को ऊबने से बचाने का कार्य प्रधानमंत्री ही करता है।

19. **प्रधानमंत्री तथा जनमत (Prime Minister and the Public Opinion)**—प्रधानमंत्री का जनता से विशेष संबंध होता है। प्रधानमंत्री की भूमिका, कार्यों तथा नीति का प्रभाव जनता पर पड़ता है और जनमत के समर्थन का प्रभाव प्रधानमंत्री पर पड़ता है। संचार के साधनों जैसे रेडियो, टेलीविजन आदि पर सरकार का ही नियंत्रण होता है। इन साधनों के द्वारा प्रधानमंत्री जनमत को अपने पक्ष में कर लेता है। इससे उसकी शक्ति दृढ़ होती है। नेहरू तथा इन्दिरा गाँधी ने जनमत अपने पक्ष में करके महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

20. **राज्यों के कार्यों की समीक्षा (Evaluation of the Work of States of the Prime Minister)**—प्रधानमंत्री को राज्य सरकारों के काम-काज की समीक्षा करने का अधिकार है। प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने जुलाई, 1983 को मध्य प्रदेश के विभिन्न भागों में कार्यों की समीक्षा की।

21. **प्रधानमंत्री की आपातकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers of the Prime Minister)**—भारतीय संविधान के अन्तर्गत धारा 352, 356, 360 के द्वारा भारत के राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही करता है। जैसे अक्टूबर 1962 में चीन के आक्रमण के समय 3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तान के आक्रमण के समय तथा 26 जून, 1975 को आन्तरिक व्यवस्था के खराब होने पर अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री की सलाह से ही आपातकालीन स्थिति की घोषणा की थी। इसी प्रकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यों में राष्ट्रपति शासन भी प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार लगाया जाता है। 44 वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत आपातकाल की घोषणा तभी कर सकता है, यदि मन्त्रिमण्डल आपातकाल की घोषणा करने की लिखित सलाह दे। अप्रैल, 1977 को कार्यवाहक राष्ट्रपति बी. डी. जत्ती ने प्रधानमंत्री की सलाह पर नौ विधानसभाओं को भंग किया।

22. **नियुक्तियाँ करने का अधिकार (Power of making Appointments)**—राष्ट्रपति बड़े-बड़े अधिकारियों की नियुक्तियाँ प्रधानमंत्री की सलाह व स्वीकृति से करता है। दूसरे देशों में भेजे जाने वाले राजदूत, राज्यों के गवर्नर, अटॉर्नी जनरल (Attorney General), कंट्रोलर और ऑडिटर जनरल (Comptroller & Auditor General), संघीय लोक सेवा आयोग व निर्वाचन आयोग आदि के अध्यक्षों व सदस्यों की नियुक्तियाँ प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ही की जाती हैं। राष्ट्रपति द्वारा राज्य सभा में साहित्य, कला, विज्ञान व सामाजिक सेवा के क्षेत्रों में प्रतिष्ठा प्राप्त जो 12 व्यक्ति नामजद किये जाते हैं, वह प्रधानमंत्री की सलाह से ही नामजद किए जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

5. राष्ट्रपति किसे प्रधानमंत्री पद के लिए आमंत्रित करता है?

(a) बहुमत दल के नेता को

(b) सबसे कम सीट पाने वाले दल को

(c) न (a) और न (b)

(d) उपरोक्त में कोई नहीं।

नोट

6. प्रधानमंत्री निम्नलिखित में से किसका अध्यक्ष भी होता है?
- | | |
|----------------|---------------------------|
| (a) लोकसभा | (b) राज्यसभा |
| (c) योजना आयोग | (d) उपरोक्त में कोई नहीं। |
7. भारत में संसदीय सरकार है, जिसमें राष्ट्र का मुखिया राष्ट्रपति है, तथा सरकार का वास्तविक मुखिया है?
- | | |
|------------------|---------------------------|
| (a) मुख्यमंत्री | (b) राज्यपाल |
| (c) प्रधानमंत्री | (d) उपरोक्त में कोई नहीं। |

6.5 प्रधानमंत्री की स्थिति (Position of the Prime Minister)

प्रधानमंत्री का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, गौरवशाली व शक्ति-सम्पन्न पद है। उसे देश के प्रशासनिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थिति प्राप्त है। यदि मंत्रि-परिषद् देश की वास्तविक शासक है तो वह मंत्रि-परिषद् का मालिक है। यह मंत्रि-परिषद् का निर्माता उसके जीवन व मृत्यु का केन्द्र है। वह राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार है। वह देश का विदेशी मामलों में प्रमुख प्रवक्ता है। वह राष्ट्र का लोकप्रिय नेता होता है। उसे इतनी व्यापक व विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त हैं। कि शायद ही संसार के किसी संवैधानिक शासक को प्राप्त हों।

उसकी स्थिति इंग्लैंड के प्रधानमंत्री की स्थिति संवैधानिक है। संवैधानिक दृष्टि से वह मंत्रि-परिषद् का प्रधान है तथा राष्ट्रपति उसकी सलाह से दूसरे मन्त्रियों की नियुक्ति करता है।

उसकी तुलना अमेरिका के राष्ट्रपति से भी की जा सकती है। डॉ० अम्बेडकर के शब्दों में, “यदि हमारे संविधान में किसी, पदाधिकारी की तुलना अमेरिका के राष्ट्रपति से की जा सकती है तो वह व्यक्ति प्रधानमंत्री है, संघ का राष्ट्रपति नहीं।” जब तक भारतीय प्रधानमंत्री को लोक सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त रहे तब तक वह ऐसे कार्य कर सकता है जो अमेरिका का राष्ट्रपति भी नहीं कर सकता। वह संसद से कोई भी कानून पास करवा सकता है, किसी भी देश से कोई सन्धि कर सकता है तथा अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए कोई भी धन-राशि खर्च कर सकता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने प्रधानमंत्री की स्थिति इस प्रकार प्रकट की है, “संविधान प्रधानमंत्री को सरकार के प्रशासनिक ढाँचे में विशेष स्थिति प्रदान करता है। वह केवल मंत्रि-परिषद् का अध्यक्ष नहीं संमक्षों में प्रथम-(First among Equals) ही नहीं, अपितु राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार है। उसकी उच्च पदवी उसे यह विशेष जिम्मेदारी सौंपती है कि वह देखें कि यह संस्था (मंत्रि-परिषद्) एक टीम की तरह कार्य करें।”

निष्कर्ष (Conclusion)—अन्त में हम कह सकते हैं कि प्रधानमंत्री की एक पद एक शक्तिशाली पद है। उसे सरकार की केन्द्रीय धुरी कहा जाता है। उसी के ऊपर सरकार का जीवन अथवा मृत्यु, कुशलता अथवा अकुशलता तथा स्थिरता अथवा अस्थिरता निर्भर करती है। एक अधिकारी के रूप में जितनी अधिक शक्तियाँ उसे प्राप्त हैं, उतनी किसी अन्य अधिकारी को नहीं।

हम डॉ० अम्बेडकर की इस बात से सहमत हैं कि अगर हमारे संविधान के अधीन किसी व्यक्ति की तुलना अमरीकी से की जा सकती है तो वह व्यक्ति प्रधानमंत्री है, राष्ट्रपति नहीं।

भारतीय प्रधानमंत्री को “समान व्यक्तियों में प्रथम” (First amongst equals) नहीं कहा जा सकता। निश्चय ही वह अन्य मन्त्रियों से श्रेष्ठ पदाधिकारी है तथा आज उसे बहुत अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु इससे यह अर्थ कदापि नहीं लिया जाना चाहिए कि भारत में आज प्रधानमन्त्रीय सरकार (Prime Ministerial for of Government) की स्थापना हो चुकी है। प्रधानमंत्री संसदीय शासन व्यवस्था का ही एक अभिन्न अंग है। इस व्यवस्था के अधीन वह एक शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण पद का स्वामी है। भारतीय व्यवस्था को प्रधानमन्त्रीय सरकार का नाम तब ही दिया जा सकता है, अगर संसदीय सरकार अथवा कैबिनेट प्रणाली का नाम बदलकर प्रधानमन्त्रीय प्रणाली कर दिया जाए।

भारत के प्रधानमंत्री की स्थिति महान है। एक प्रसिद्ध लेखक के शब्दों में, “प्रधानमंत्री की अन्य मंत्रियों में वही स्थिति है जो सितारों में चन्द्रमा की होती है।” (“Shining moon among the lesser stars”.) तथा प्रधानमंत्री को “Captain of the ship of the state” कहा जा सकता है। प्रधानमंत्री कोई निरंकुश सीजर (Seizure) नहीं बन सकता। उसके शब्द कोई अन्तिम निर्णय नहीं होते। किसी भी समय उन्हें चुनौती दी जा सकती है। प्रधानमंत्री को सदैव विरोधी पार्टी का ध्यान रखना पड़ता है। एक बार **जार्ज बर्नार्ड शॉ** (George Bernard Shaw) ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री के विरोधी दल के विषय में कहा था, “ब्रिटिश प्रधानमंत्री अपनी विरोधी पार्टी के नेता को अपनी पत्नी से अधिक अच्छी तरह से जानता है।” (“The British Prime Minister knows leader of the opposition better than his own wife”) यही स्थिति भारतीय प्रधानमंत्री पर भी लागू होती है।

हमारे देश में मई-जून, 1991 को मध्यावधि चुनाव हुए जिसमें किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। तत्कालीन राष्ट्रपति श्री रामास्वामी वेंकट रमन ने श्री पी० वी० नरसिम्हा राव को सबसे बड़ी पार्टी का नेता होने के कारण 21 जून, 1991 को प्रधानमंत्री को शपथ दिलवायी तथा विश्वास मत प्राप्त करने का एक मास का समय दिया जो उन्होंने निश्चित समय में प्राप्त कर लिया। जानकारी के लिये यहाँ एक बात भी है कि श्री पी० वी० नरसिम्हा राव उस समय किसी भी सदन के सदस्य नहीं थे, लेकिन छः महीने में उन्होंने लोक सभा की सदस्यता प्राप्त कर ली।

6.6 प्रधानमंत्री की तानाशाही (Dictatorship of the Prime Minister)

वास्तव में भारतीय प्रधानमंत्री के हाथ में अत्यंत विशाल शक्तियाँ केन्द्रित हैं। उसकी इतनी अधिक शक्तियों को देखते हुए कुछ विचारकों ने यह मत प्रकट किया है कि प्रधानमंत्री तानाशाह बन सकता है। श्री **के० टी० शाह** के शब्दों में “संविधान प्रधानमंत्री को इतनी अधिक शक्तियाँ तथा स्थिति प्रदान करता है कि हर समय इस बात का भय बना रहता है कि यदि प्रधानमंत्री चाहे तो वह तानाशाह बन सकता है।” (The Constitution concentrates so much powers and influence in the hands of the Prime Minister that there is every reason to apprehend that he may become a dictator if he chooses to do so.) इसी प्रकार श्री **वी० एन० गाडगिल** ने भी कहा है, “प्रधानमंत्री को इतनी अधिक शक्तियाँ सौंपी गई हैं कि यदि वह स्वभाव से लोकतन्त्रात्मक विचारों का न हो तो उसके तानाशाह बनने की संभावना हो सकती है।” (The Prime Minister is invested with formidable power and influence and unless he be a genuine democrat by nature, he is very likely to become a dictator.)

परन्तु वास्तव में प्रधानमंत्री के तानाशाह बनने की संभावना बहुत कम है।

1. प्रधानमंत्री स्वभाव से अवश्य ही लोकतन्त्रीय विचारों वाला सर्वप्रिय नेता होता है। उसने बहुत लंबे समय तक लोकतन्त्रीय शासन-प्रणाली में प्रशिक्षण प्राप्त किया होता है तथा वह लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास रखता है। स्वर्गीय प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने श्री लाल बहादुर शास्त्री अपने स्वभाव व प्रशिक्षण में पक्के लोकतन्त्रीय विचारों वाले नेता थे तथा उनका लोकतंत्र के सिद्धान्तों में अटूट विश्वास था। उन्होंने कभी भी तानाशाह बनने की कोशिश नहीं की तथा सदा लोकतन्त्रीय परम्पराओं का पालन किया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी को छोड़कर अन्य सभी प्रधानमंत्री भी उन के बाद के स्वभाव व प्रशिक्षण में पक्के लोकतन्त्रीय विचारों वाले नेता थे तथा उनका लोकतन्त्र के सिद्धान्तों में अटूट विश्वास था। उन्होंने कभी भी तानाशाह बनने की कोशिश नहीं की तथा सदा लोकतन्त्रीय परम्पराओं का पालन किया। किन्तु श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 1975 में आपात स्थिति लगवाकर प्रजातंत्र को निलंबित कर दिया था। 1977 के बाद बनें सभी प्रधानमंत्रियों ने जिन में इन्दिरा गाँधी भी शामिल थी, कुल मिलाकर लोकतन्त्रीय परम्पराओं के अनुसार ही कार्य किया। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री श्री डा. मनमोहन सिंह इसी मार्ग पर चल रहे हैं।

नोट

2. प्रधानमंत्री स्वेच्छाचारिता से कार्य नहीं करता। उसे अपने दल की नीतियों और कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना होता है। उसे अपने दल के प्रमुख व्यक्तियों के विचारों व इच्छाओं को ध्यान में रखना पड़ता है। उसकी स्थिति अपने दल के नेता होने की हैसियत से ही है तथा वह सदा अपने साथियों का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश करता है।

3. कोई भी प्रधानमंत्री जनमत के विरुद्ध चलने की कोशिश नहीं करता। उसे जनता की नब्ज पर हाथ रखना पड़ता है। वह कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करता जिससे जनता नाराज हो जाए। यदि प्रधानमंत्री लोकमत की अवहेलना करता हुआ तानाशाह बनने की कोशिश करे तो अवश्य ही उसकी अगले निर्वाचन में हार होगी और उसे अपने पद से हाथ धोना पड़ेगा। श्रीमती इन्दिरा गाँधी की मार्च, 1977 के आम चुनाव में पराजय इस बात का उदाहरण है।

4. संसद के अन्दर और बाहर उसके कार्यों पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। संसद के अन्दर केवल प्रधानमंत्री के समर्थक नहीं होते, विरोधी दलों के सदस्य भी होते हैं। वह प्रधानमंत्री के कार्यों व नीतियों की आलोचना करते हुए लोकमत को अपने पक्ष में करने की ताक में रहते हैं। संसद के बाहर प्रधानमंत्री के कार्यों व नीतियों की स्वतंत्र समाचार-पत्रों द्वारा आलोचना की जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion)—अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साधारण परिस्थितियों में प्रधानमंत्री तानाशाह नहीं बन सकता क्योंकि उसे कुछ सीमाओं के अन्दर रहकर ही कार्य करना होता है। बहुत कुछ प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। डॉ० जेनिंग्स (Dr. Jennings) के अनुसार “प्रधानमंत्री की स्थिति वही होती है जो इस पद को ग्रहण करने वाला बनाना चाहे तथा जो दूसरे मन्त्री उसे बनने दें।” यदि वह दृढ़ व्यक्तित्व का मालिक है और उसमें अपने मन्त्रियों को प्रभावित करने की शक्ति है तो मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को प्रभावित करने की शक्ति नहीं रखता तो वह मन्त्रियों के हाथ की कठपुतली बनकर रह जाता है। संकटकाल शासन-प्रणाली इतनी लचकदार होती है कि संकटकाल के समय प्रधानमंत्री तानाशाह बन जाता है। संविधान में राष्ट्रपति को जो संकटकालीन शक्तियाँ दी गई हैं, उनका वास्तविक प्रयोग प्रधानमंत्री ही करता है, लेकिन अगर संकटकाल के समय प्रधानमंत्री तानाशाह है तो वह संसद में बहुमत की सहमति से ही है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य बताइए।

8. भारतीय प्रधानमंत्री को ‘समान व्यक्तियों में प्रथम’ नहीं कहा जा सकता।
9. साधारण परिस्थितियों में प्रधानमंत्री तानाशाह बन सकता है।
10. जार्ज बार्नर्ड शॉ ने एक बार कहा था, “ब्रिटिश प्रधान मंत्री अपनी विरोधी पार्टी के नेता को अपनी पत्नी से अधिक अच्छी तरह से जानता है।”

6.9 भारतीय प्रधानमंत्री और ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियों में तुलना (Comparison of the Powers of the Indian Prime Minister and British Prime Minister)

भारतीय प्रधानमंत्री तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री की तुलना करते समय हमें सर्वप्रथम इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि भारत तथा ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्थाओं में बहुत कुछ समानता देखने को मिलती है। भारत तथा ब्रिटेन दोनों में ही संसदीय लोकतन्त्र है। दूसरे शब्दों में, भारत ने ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था को आधार मानकर ही अपनी राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप तथा ढाँचे का निर्माण किया है।

ब्रिटेन की भांति भारत में भी नाममात्र के राज्याध्यक्ष का पद विद्यमान है। ब्रिटेन में सम्राट नाममात्र के राज्याध्यक्ष के रूप में विद्यमान है तो भारत में राष्ट्रपति इसका प्रतिनिधित्व करता है। अन्तर केवल इतना है कि ब्रिटेन

में सम्राट का पद पैतृक है जबकि भारत में राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक मण्डल के द्वारा किया जाता है। तथापि दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री की शक्तियों तथा पद को संसदीय व्यवस्था के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। ब्रिटेन तथा भारत के प्रधानमंत्री की शक्तियों के बीच निम्नलिखित समानताएँ देखने को मिलती हैं—

(i) दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री को निचले सदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है। (In both countries, the Prime Minister does have the support of the Majority of the Lower House)—ब्रिटेन तथा भारत दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री वही व्यक्ति चुना जाता है जिसे निचले सदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। ब्रिटेन में आम चुनावों के पश्चात्, सम्राट कामन्स सभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है। यदि कामन्स सभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं है तो ऐसी स्थिति में सम्राट अथवा साम्राज्ञी ऐसे व्यक्ति को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है जो कामन्स सभा के बहुसंख्यक सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने में समर्थ हो। भारत में भी यही परम्परा है। आम चुनावों के पश्चात् राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को अथवा ऐसे व्यक्ति को जो लोक सभा में बहुसंख्यक सदस्यों का समर्थन प्राप्त कर सकता है, सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है।

(ii) दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री वास्तविक कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। (In both countries, the Prime Minister is the Head of the Real Executive)—दोनों ही देशों में संसदीय व्यवस्था होने के कारण, नाममात्र की कार्यपालिका तथा वास्तविक कार्यपालिका अलग-अलग हैं। ब्रिटेन में सभी प्रशासनिक एवं सरकारी कार्य राजा (सम्राट) के नाम में संपन्न होते हैं, परन्तु व्यवहार में ये सभी कार्य प्रधानमंत्री द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। भारत में भी संघ सरकार के सभी कार्य राष्ट्रपति के नाम में संपन्न होते हैं। जबकि व्यवहार में ये सभी कार्य प्रधानमंत्री के द्वारा संपन्न किए जाते हैं।

(iii) ब्रिटेन तथा भारत दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री के त्यागपत्र का अर्थ सम्पूर्ण सरकार के त्यागपत्र से होता है (In both Britain and India, both the resignation of the Prime Minister means the resignation of the whole government)—दोनों ही देशों में संसदीय व्यवस्था होने के कारण प्रधानमंत्री के त्यागपत्र देने का अर्थ सम्पूर्ण सरकार का त्यागपत्र माना जाता है। प्रधानमंत्री के त्यागपत्र देने पर सरकार भंग हो जाती है। प्रधानमंत्री सरकार का मुखिया होता है और उसके त्यागपत्र देने पर सम्पूर्ण सरकार स्वतः भंग हो जाती है।

(iv) दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री अपने समस्त कार्यों के लिए निचले सदन के प्रति उत्तरदायी होता है (In both countries, the Prime Minister is responsible to the Lower House for his acts)—संसदीय व्यवस्था होने के कारण दोनों ही देशों में प्रधानमंत्री अपने कार्यों तथा निर्णयों के लिए निचले सदन के प्रति उत्तरदायी होता है। ब्रिटेन के तथा भारत में यद्यपि सैद्धान्तिक रूप में प्रधानमंत्री की नियुक्ति 'राज्याध्यक्ष' (Head of the State) के द्वारा की जाती है, परन्तु संसदीय परम्परा के अनुसार, राज्याध्यक्ष के प्रति वह उत्तरदायी नहीं है।

भारतीय प्रधानमंत्री तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री की स्थिति में अन्तर

(Distinction between the Position of Indian Prime Minister and British Prime Minister)

भारतीय प्रधानमंत्री तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्तियों तथा स्थिति में बहुत कुछ समानता होते हुए भी कुछ महत्वपूर्ण अन्तर भी पाया जाता है। ब्रिटेन में संसद सर्वोच्च है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री कामन्स सभा में बहुमत के समर्थन के बल पर विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली लोकतांत्रिक शासक है। ब्रिटेन में संसद सामान्य कानून की तरह संविधान में संशोधन कर सकती है। इसका अर्थ यह है कि ब्रिटेन में यदि प्रधानमंत्री को कामन्स सभा (निचले सदन) के बहुमत का समर्थन प्राप्त है तो वह संविधान में कुछ भी संशोधन कर सकता है। ब्रिटेन में न्यायपालिका को 'न्यायिक पुनर्विचार' (Judicial Review) की शक्ति प्राप्त नहीं है अर्थात् संसद द्वारा पारित कानून न्यायालयों की सीमा से बाहर हैं। दूसरी ओर, भारत में संसद सर्वोच्च नहीं है। संविधान सर्वोच्च है तथा संसद एक निश्चित सीमा तक ही संविधान में संशोधन कर सकती है। भारतीय संविधान में संशोधन की प्रणाली भी कठिन है। सामान्य कानून तथा 'संवैधानिक कानून' में अन्तर है।

नोट

नोट: सरकार के तीनों अंग-संसद, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका संविधान द्वारा निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत ही कार्य करते हैं।

नोट

सर्वोच्च न्यायालय को कार्यपालिका के निर्णयों तथा संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के 'न्यायिक पुनर्विचार' (Judicial Review) की शक्ति प्राप्त है। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि भारतीय प्रधानमंत्री लोक सभा में बहुमत का समर्थन होने के बावजूद उतना शक्तिशाली नहीं है जितना कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

11. ब्रिटेन में सम्राट नाम मात्र का क्या होता है?

(a) राज्याध्यक्ष	(b) प्रधानमंत्री
(c) न (a) और न (b)	(d) उपरोक्त में से कोई नहीं।
12. निम्नलिखित में से कौन सरकार को एक अंग भी है?

(a) न्यायपालिका	(b) बी.एस.ई.
(c) कर्मचारी चयन बोर्ड	(d) उपरोक्त में से कोई नहीं।

6.10 भारतीय प्रधानमंत्री की शक्तियों तथा स्थिति की अमेरिकन राष्ट्रपति की शक्तियों तथा स्थिति से तुलना (Comparison of the Powers and Position of Indian Prime Minister with those of American President)

भारतीय प्रधानमंत्री की शक्तियों तथा स्थितियों की तुलना अमेरिकन राष्ट्रपति की शक्तियों तथा स्थिति से तुलना दोनों देशों की पृथक् राजनीतिक व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में ही किया जाना उचित होगा। भारत के विपरीत अमेरिका में अध्यक्षीय राजनीतिक व्यवस्था है। अमेरिकी राष्ट्रपति राज्याध्यक्ष होने के साथ ही साथ शासनाध्यक्ष भी है। अमेरिकी राष्ट्रपति एक निर्वाचित कार्यपालिका अध्यक्ष है। उसे प्रशासन के क्षेत्र में व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। उसके पद में स्थायित्व होता है। एक बार निर्वाचित होने के पश्चात् वह अपने पद पर पूरे कार्यकाल तक रहता है। केवल महाभियोग के द्वारा ही उसके पद से हटाया जा सकता है। दूसरी ओर भारतीय प्रधानमंत्री शासनाध्यक्ष है, राज्याध्यक्ष नहीं। एक बार अपने पद पर चुने जाने के बाद वह उसी समय तक अपने पद पर बना रह सकता है, जब तक उसे लोक सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। लोक सभा के बहुमत के समर्थन के बल पर वह लोक सभा के पूरे कार्यकाल तक अपने पद पर बना रह सकता है।

अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था में संविधान निर्माताओं ने 'नियंत्रण एवं संतुलन के सिद्धान्त' को अपनाया है ताकि सरकार का कोई भी अंग निरंकुश तरीके से कार्य न कर सके। इसके विपरीत भारत में संसदीय व्यवस्था होने के कारण व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका में समन्वय पाया जाता है। भारतीय प्रधानमंत्री लोक सभा के समर्थन के बल पर अपनी नीतियों, निर्णयों तथा विधेयकों को संसद द्वारा आसनी से पारित करा लेता है। लोक सभा के बहुमत का समर्थन रहने पर वह अमेरिकन राष्ट्रपति की अपेक्षा शक्तिशाली कार्यपालक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरे (Fill in the blanks)

13. अमेरिका का राष्ट्रपति राज्याध्यक्ष होने के साथ-साथ भी है।
14. अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था में संविधान निर्माताओं ने को अपनाया है।

सारांश (Summary)

- संविधान के अनुच्छेद 74 में केवल मंत्रि-परिषद् की व्यवस्था है और कैबिनेट का कोई वर्णन नहीं है। कैबिनेट एक अतिरिक्त संवैधानिक संस्था है।
- अपनी नियुक्ति के पश्चात् प्रधानमंत्री का पहला कार्य यह होता है कि वह अपने साथी मंत्रियों को चुने।
- इंग्लैण्ड की भाँति भारत का प्रधानमंत्री लोक सभा का नेतृत्व करता है। वह सदन में सरकार की नीति से संबंधित महत्वपूर्ण घोषणाएँ करता है और प्रश्नों का उत्तर देता है।
- भारत में संसदीय सरकार है जिसमें राष्ट्र का मुखिया राष्ट्रपति है तथा सरकार का वास्तविक मुखिया प्रधानमंत्री है।
- भारतीय संविधान के अन्तर्गत धारा 352, 356, 360 के द्वारा भारत के राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही करता है।
- भारतीय संविधान के अन्तर्गत धारा 352, 356, 360 के द्वारा भारत के राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही करता है।
- कि साधारण परिस्थितियों में प्रधानमंत्री तानाशाह नहीं बन सकता क्योंकि उसे कुछ सीमाओं के अन्दर रहकर ही कार्य करना होता है। बहुत कुछ प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है।
- ब्रिटेन की भाँति भारत में भी नाममात्र के राज्याध्यक्ष का पद विद्यमान है। ब्रिटेन में सम्राट नाममात्र के राज्याध्यक्ष के रूप में विद्यमान है तो भारत में राष्ट्रपति इसका प्रतिनिधित्व करता है।
- ब्रिटिश प्रधानमंत्री कामन्स सभा में बहुमत के समर्थन के बल पर विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली लोकतांत्रिक शासक है। ब्रिटेन में संसद सामान्य कानून की तरह संविधान में संशोधन कर सकती है।
- अमेरिकी राष्ट्रपति राज्याध्यक्ष होने के साथ ही साथ शासनाध्यक्ष भी है। अमेरिकी राष्ट्रपति एक निर्वाचित कार्यपालिका अध्यक्ष है।

नोट

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. संघीय मंत्रि-परिषद् के संगठन का वर्णन करते हुए कैबिनेट (मंत्रि-मण्डल) और मंत्रि-परिषद् के बीच अन्तरों को स्पष्ट कीजिए।
2. मंत्रि-मण्डल की शक्तियों का वर्णन कीजिए।
3. भारत के प्रधानमंत्री की शक्तियों तथा स्थिति का वर्णन कीजिए।
4. भारतीय प्रधानमंत्री और ब्रिटिश प्रधानमंत्री के शक्तियों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

- | | | |
|------------------|-------------------------------------|--------------------|
| 1. मंत्रि-परिषद् | 2. राष्ट्रपति | 3. लालकृष्ण आडवानी |
| 4. मंत्रि-परिषद् | 5. (a) | 6. (c) |
| 7. (c) | 8. सत्य | 9. असत्य |
| 10. सत्य | 11. (a) | 12. (a) |
| 13. शासनाध्यक्ष | 14. नियंत्रण एवं संतुलन के सिद्धांत | |

संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था— एन. छाबरा।
2. भारतीय शासन और राजनीति— पी. रस्तोगी।
3. भारतीय राजनीतिक प्रणाली— यू. आर. घई।

नोट

अध्याय 7: राज्य सरकार: राज्य-विधानमण्डल, राज्यपाल, मंत्रि-परिषद् और मुख्यमंत्री (State Government: State Legislature, Governor, Council of Ministers and Chief Minister)

संरचना (Structure)

- 7.1 उद्देश्य (Objectives)
- 7.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 7.3 राज्य-विधानमण्डल के कार्य तथा शक्तियाँ (Functions and Powers of the State Legislature)
- 7.4 राज्य का राज्यपाल (Governor of a State)
- 7.5 राज्यपाल की भूमिका (Role of Governor)
- 7.6 राज्य मन्त्रि-परिषद् (State Council of Ministers)
- 7.7 राज्य का मुख्यमंत्री (State Chief Minister)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
 - सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

7.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- राज्य-विधानमण्डल की रचना, कार्य तथा शक्तियों का वर्णन करने में।
- राज्यपाल की नियुक्ति, कार्यकाल, शक्ति तथा स्थिति को समझने हेतु।
- राज्य मंत्रि-परिषद् के संगठन कार्य और स्थिति को समझने हेतु।
- राज्य के मुख्यमंत्री की नियुक्ति, उसकी शक्तियाँ, कार्यों तथा स्थिति का वर्णन करने हेतु।

नोट

7.2 प्रस्तावना (Introduction)

संविधान ने देश के सभी 25 राज्यों के लिए एक विधानमंडल की स्थापना की है। अनुच्छेद 168 के अनुसार, “हर राज्य का एक विधानमण्डल होगा, जिसमें बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, जम्मू-कश्मीर और उत्तर प्रदेश के राज्यों में दो सदन हैं तथा अन्य राज्यों में एक सदन है।” संविधान के अनुच्छेद 169 के द्वारा विधान-परिषदों (Legislative Council) के गठन (Creation) और समाप्ति (Abolition) के लिए जो विशेष प्रक्रिया तय की गई है, उसके अनुसार किसी राज्य की विधानसभा अपने कुल सदस्यों के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से अपने राज्य के लिए संसद की मंजूरी लेकर विधान-परिषद् (Legislative Council) बनवा सकती है या उसे भंग करा सकती है। इसके लिए संविधान में संशोधन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

विधानसभा (Legislative Assembly)

रचना (Composition)—विभिन्न राज्यों में विधानसभा के सदस्यों की संख्या उन राज्यों की जनसंख्या के अनुपात पर आधारित है। किसी भी विधानसभा की सदस्य-संख्या अधिक-से-अधिक 500 और कम-से-कम 60 रखी गई है। लेकिन 1976 में 42वें संशोधन कानून द्वारा 1971 की जनगणना के आधार पर हर विधानसभा की जो सदस्य संख्या तय की गई है, उसमें सन् 2000 तक कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। इस समय हरियाणा विधानसभा की सदस्य संख्या 90 है।

विधानसभा के सभी सदस्यों का चुनाव आमतौर पर बालिग मताधिकार की व्यवस्था में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के आधार पर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली द्वारा किया जाता है। पहले मतदान का अधिकार 21 वर्ष या उससे अधिक आयु के लोगों को प्राप्त था। अब उसे घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विधानसभाओं में स्थान सुरक्षित किए गए हैं। जिन राज्यों में ऐंग्लो-इंडियन समुदाय के लोग उल्लेखनीय संख्या में हों और उनका कोई प्रतिनिधि चुनाव में चुनकर न आ सका हो तो राज्यपाल उस समुदाय के एक सदस्य को मनोनीत (Nominate) कर सकता है।

विधानसभा का सदस्य चुना जाने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ होनी जरूरी हैं—

- (i) वह भारत का नागरिक हो,
- (ii) उसकी आयु 25 वर्ष से कम न हो,
- (iii) वह किसी सरकारी लाभ के पद पर न हो,
- (iv) समय-समय पर संसद द्वारा निश्चित की गई योग्यताओं को पूरा करता हो,
- (v) वह पागल, कोढ़ी या दिवालिया न हो,
- (vi) अनुसूचित जाति या जनजाति के लिए सुरक्षित स्थान से चुने जाने के लिए उस जाति का सदस्य होना जरूरी है।

लोकसभा की तरह ही राज्यों की विधानसभाओं का चुनाव भी पाँच वर्ष के लिए होता है। 42वें संशोधन कानून ने इनकी अवधि बढ़ाकर 6 वर्ष कर दी थी। लेकिन 44वें संवैधानिक संशोधन ने यह अवधि फिर 5 वर्ष ही कर दी है। इस अवधि से पहले भी विधानसभा भंग की जा सकती है।

राज्यपाल को विधानसभा का अधिवेशन किसी भी समय बुलाने का अधिकार है। लेकिन दो अधिवेशनों के बीच छः मास से अधिक का समय नहीं बीतना चाहिए।

नोट

विधानसभा का एक अध्यक्ष (speaker) और एक उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) होता है, जिनका कार्य सदन में शान्ति बनाए रखना तथा सदन के काम को सुचारू रूप से चलाना है। ये दोनों अधिकारी विधानसभा के सदस्यों द्वारा अपने में से चुने जाते हैं। सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा कई विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं।

क्या आप जानते हैं: भारत के 25 राज्यों में से केवल 5 राज्यों में विधान-परिषद् की स्थापना की गई है।

विधान-परिषद् की रचना (Composition of Legislative Council)—संविधान के अनुसार किसी भी राज्य में विधान-परिषद् के सदस्यों की संख्या विधानसभा के सदस्यों के 1/3 से अधिक तथा 40 से कम नहीं हो सकती। परन्तु जम्मू व कश्मीर राज्य (जिसे संविधान द्वारा विशेष स्थिति प्राप्त है) में विधान-परिषद् के कुल 36 सदस्य हैं।

विधान-परिषद् के सदस्यों का चुनाव निम्नलिखित तरीके से किया जाता है—

1/3 सदस्य राज्य की विधानसभा के द्वारा चुने जाते हैं।

1/3 सदस्य राज्य में स्थापित स्थानीय संस्थाओं (नगरपालिका, पंचायत, पंचायत समिति आदि) के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं।

1/12 सदस्य राज्य में रहने वाले कम-से-कम तीन वर्ष पुराने स्नातकों (Graduates) के द्वारा चुने जाते हैं।

1/12 सदस्य राज्य की माध्यमिक तथा उससे उच्च स्तर की शिक्षा-संस्थाओं के कम-से-कम तीन वर्ष पुराने अध्यापकों के द्वारा चुने जाते हैं।

शेष 1/6 सदस्य राज्य के राज्यपाल द्वारा ऐसे व्यक्ति मनोनीत किये जाते हैं, जिन्होंने साहित्य, कला, विज्ञान तथा समाज-सेवा आदि के क्षेत्रों में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली हो।

विधान-परिषद् का सदस्य बनने के लिए निम्नलिखित योग्यतायें निश्चित की गई हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. वह 30 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,
3. वह किसी सरकारी लाभ के पद पर न हो,
4. उसमें वह सब योग्यताएँ होनी चाहिए जो संसद् के कानून द्वारा निश्चित की गई हैं,
5. उसमें कोई ऐसी अयोग्यता नहीं होनी चाहिए, जो कानून द्वारा निश्चित की गई हो।

विधान-परिषद् एक स्थायी सदन है तथा इसके सदस्य 6 वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते हैं। विधान-परिषद् का भी एक सभापति (Chairman) तथा एक उपसभापति (Deputy Chairman) होता है, जिसका चुनाव इसके सदस्य अपने में से करते हैं। सभापति सदन की अध्यक्षता करता है तथा अनुशासन को बनाए रखता है। सदन के सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा कुछ विशेषाधिकार भी प्रदान किए गए हैं।

7.3 राज्य-विधानमण्डल के कार्य तथा शक्तियाँ (Functions and Powers of the State Legislature)

राज्य विधानमण्डल को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं—

1. **वैधानिक शक्तियाँ** (Legislative Powers)—राज्य विधानमण्डल को राज्यसूची में दर्ज विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है। इसके साथ ही इसे सांझी सूची में दर्ज विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है। सांझी सूची में दिए गए विषय संघ-संसद तथा राज्य विधानमण्डल के संयुक्त क्षेत्राधिकार में जाते हैं। या समवर्ती

नोट

सूची में विषयों से संबंधित किसी कानून के बारे में राज्य तथा संघ में मतभेद हो, तो संघ का कानून मान्य समझा जाता है।

साधारण विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं, परन्तु वित्तीय विधेयक पहले विधानसभा में ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं, विधान-परिषद् में नहीं। साधारण विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत होने के बाद ही अधिनियम बनता है। विधान-परिषद् विधेयक को विधानसभा से प्राप्त करने की तिथि से केवल 3 महीने तक के लिए अपने पास रोक सकती है। इस अवधि के बीत जाने पर, उस विधेयक को उसके मूल स्वरूप में राज्यपाल के पास उसकी स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। विधान-परिषद् द्वारा अस्वीकृत या संशोधित विधेयक को विधानसभा उसके मूल रूप में फिर से पास करके विधान-परिषद् के पास भेज सकती है, जिसे विधान-परिषद् एक महीने तक रोक सकती है, पर इस अवधि के समाप्त होने पर यदि विधान-परिषद् उसे पास नहीं कर देती तो ऐसे बिल को विधानमण्डल के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत समझा जाता है और उसे राज्यपाल के स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। इसे पता चलता है कि विधानसभा ही राज्य का विधानमण्डल है।

विधानमण्डल से बिल पास होकर राज्यपाल के पास भेज जाता है। राज्यपाल को निषेधाधिकार (Veto Power) भी प्राप्त है। वह बिल पर एक बार अपनी स्वीकृति देने से इनकार कर सकता है। लेकिन अगर विधानमण्डल उस बिल को दोबारा पास करके भेज दे तो राज्यपाल को अपनी स्वीकृति अवश्य देनी पड़ती है। राज्यपाल किसी बिल को राष्ट्रपति की अन्तिम स्वीकृति के लिए भेज सकता है। कुछ बिल तो अवश्य ही राज्यपाल को राष्ट्रपति के पास भेजने पड़ते हैं।

2. **वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)**—प्रान्तीय बिल पर राज्य विधानमण्डल का ही अधिकार होता है, लेकिन वास्तव में विधानसभा ही इस अधिकार का प्रयोग करती है। धन बिल केवल पहले विधानसभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता है तथा इसे विधान-परिषद् में पहले प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। विधानसभा को प्रान्त के वित्त पर पूर्ण अधिकार होता है। उसकी अनुमति के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है और न एक पैसा भी व्यय किया जा सकता है। धन विधेयक स्वीकृति हो जाने के बाद विधान परिषद् के पास भेज दिया जाता है, पर विधान-परिषद् की स्वीकृति आवश्यक नहीं होती।

नोट: विधान-परिषद् धन विधेयक के पास होने में 14 दिन का विलम्ब कर सकती है।

इससे अधिक समय के लिए वह इसे रोक नहीं सकती और न ही रद्द कर सकती है। विधान-परिषद् में पेश होने के 14 दिन बाद राज्यपाल के हस्ताक्षर होने पर कोई भी धन विधेयक विधि बन जाता है, चाहे विधान-परिषद् ने उसे इस अवधि में पास कर दिया हो अथवा न किया हो।

3. **कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control Over the Executive)**—प्रान्तों में संसदीय व्यवस्था के अनुकूल कार्यपालिका को विधानपालिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। वास्तव में कार्यपालिका का यह उत्तरदायित्व विधानसभा के प्रति ही होता है। मन्त्री अपने पद पर तभी तक रह सकते हैं, जब तक उन्हें विधानसभा में बहुमत का विश्वास प्राप्त रहता है। ज्यों ही उन पर से बहुमत का विश्वास हट जाता है, उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दिया जाता है तो वह त्याग-पत्र दे देते हैं। विधानसभा कुछ अन्य प्रकार से भी नीति के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए कोई भी प्रश्न पूछ सकता है, उत्तर को स्पष्ट करने के लिए पूरक प्रश्न भी पूछ जा सकते हैं। 'काम रोको' प्रस्ताव पेश करके भी सरकार से स्पष्टीकरण माँगा जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि विधानसभा को कार्यपालिका पर पूरा-पूरा नियन्त्रण प्राप्त है।

4. **अन्य कार्य (Other Functions)**—(i) राज्य विधानमण्डल का निचला सदन (विधानसभा) राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेता है।

(ii) राज्य के संसद के ऊपर सदन (राज्यसभा) में चुने जाने वाले सदस्य भी विधानसभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं।

नोट

(iii) यद्यपि संविधान में संशोधन करने की शक्ति और उसमें पहले करने का अधिकार संसद को ही प्राप्त है, फिर भी अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 54, 55, 73, 162 और 241 तथा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों से संबंधित अनुच्छेदों एवं केन्द्र और राज्यों के संबंधों का निर्धारण करने वाली संवैधानिक व्यवस्थाओं में संसद तभी संशोधन कर पाती है जब ऐसे संशोधन विधेयक को संसद के पास होने के बाद आधे राज्यों की विधानसभाओं ने मंजूर कर लिया हो। विधान-परिषद् को इस मामले में भी कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।

(iv) विधानसभा यदि विधान-परिषद् को बनाने का प्रस्ताव या समाप्त करने का प्रस्ताव पास करे तो इस प्रस्ताव के आधार पर संसद कानून बनाकर विधान-परिषद् की स्थापना या समाप्ति करती है।

स्थिति (Position)—विधानमण्डल की शक्तियाँ तथा कार्यों के इस वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि अपने राज्य के प्रशासन में इसका बड़ा महत्वपूर्ण हाथ है। राज्य विधानमण्डल की शक्तियों का वास्तविक रूप में प्रयोग विधानसभा ही करती है। विधान-परिषद् इसकी जल्दबाजी पर रोक लगा सकती है पर इसके मार्ग में बाधा बनकर खड़ी नहीं हो सकती। इसके द्वारा पास किए किसी साधारण विधेयक को 3 मास तक और वित्तीय विधेयक को केवल 14 दिन तक विधान-परिषद् रोक सकती है। वित्तीय विधेयक पहले विधानसभा में ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं, विधान-परिषद् में नहीं। कार्यपालिका भी केवल इसके प्रति उत्तरदायी है, विधान-परिषद् के प्रति नहीं। सत्य तो यह है कि विधान-परिषद् का अस्तित्व ही विधानसभा की अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है। वह जब चाहे उसे बना सकती है और जब चाहे उसे तोड़ सकती है। इसको इतना महत्व दिए जाने के कारण यह है कि इसका चुनाव राज्य की जनता द्वारा सार्वजनिक मतदान के आधार पर प्रत्यक्ष रूप में होता है और यह उसका प्रतिनिधि सदन है।

प्रांतीय संवैधानिक व्यवस्था में राज्य विधानमण्डल को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है परन्तु इसकी शक्ति केन्द्रीय संसद की अपेक्षा काफी कम होती है। इसे केवल राज्यसूची के 66 विषयों तथा सांझी सूची के 47 विषयों पर ही कानून-निर्माण का अधिकार होता है, परन्तु इस पर भी कई एक प्रतिबन्ध हैं।

(i) राज्यसभा 2/3 बहुमत से एक प्रस्ताव पास कर किसी भी राज्यसूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का विषय घोषित कर सकती है तथा इस रूप में उस विषय पर कानून निर्माण का अधिकार केन्द्रीय संसद को प्राप्त हो जाता है।

(ii) साँझी सूची के विषयों पर भी अन्तिम अधिकार संसद को ही प्राप्त होता है।

(iii) राज्यपाल इस द्वारा पास किसी भी बिल को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये सुरक्षित रख सकता है।

(iv) कुछ बिल राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से ही इसमें पेश किए जा सकते हैं।

(v) इस द्वारा निर्मित कानूनों पर न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार न्यायपालिका को प्राप्त है तथा न्यायपालिका किसी कानून के अधिकार बहुत बढ़ जाते हैं तथा राज्य विधानमण्डल के अधिकार कम हो जाते हैं।

(vi) राष्ट्रपति कभी भी संवैधानिक आपातकाल (Art. 356) की घोषण कर इसे भंग कर सकता है।

अतः इन सब प्रतिबन्धों के कारण राज्य विधानमण्डल की स्थिति केन्द्रीय संसद की अपेक्षा कुछ कमजोर है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इसकी स्थिति महत्वहीन है। राज्य प्रशासन में इसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

टास्क: राज्य विधानमंडल की शक्तियों की विवेचना कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

1. विधान परिषद् धन-विधेयक के पास होने में का विलम्ब कर सकती है।
2. विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।
3. विधान सभा का सदस्य बनाने के लिए न्यूनतम आयु सीमा है।

7.4 राज्य का राज्यपाल (Governor of a State)

राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का मुखिया होता है। इसको राज्य में वही स्थिति होती है जो केन्द्र में राष्ट्रपति को प्राप्त है। परन्तु उसकी स्थिति एक ढंग से, थोड़ी-सी अधिक श्रेष्ठ होती है। भारत का राष्ट्रपति संघ की कार्यपालिका का नाममात्र का मुखिया होता है और उसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने की शक्ति नहीं प्राप्त होती क्योंकि उसे निरन्तर संघीय मन्त्रिपरिषद् की सलाह अनुसार कार्य करना होता है। इसके विपरीत राज्य का राज्यपाल संवैधानिक संकटकाल की स्थिति में तथा कुछ परिस्थितियों में अपनी इच्छानुसार निर्णय करने का अधिकारी होता है। संविधान ने राज्यपाल को कुछ स्वैच्छिक अधिकार भी प्रदान किए हैं:

1. नियुक्ति (Appointment) : अनुच्छेद 153 के अधीन भारत का संविधान यह व्यवस्था करता है कि, “प्रत्येक राज्य का एक राज्यपाल होगा।” परन्तु साथ ही यह व्यवस्था भी की गई है कि एक व्यक्ति दो या इससे अधिक राज्यों के राज्यपाल के रूप में कार्य कर सकता है।

जब संविधान निर्माण सभा में राज्यपाल के पद की व्यवस्था के बारे में विचार किया जा रहा था तो राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कई प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए। परन्तु अन्ततः इस बात पर सहमति हो गई कि क्योंकि राज्यपाल ने राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में ही कार्य करना था, इसलिए राज्यपाल की राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्ति की व्यवस्था करना सबसे उपयुक्त बात होगी। यह भी अनुभव किया गया कि यदि राज्यपाल और मुख्यमंत्री दोनों निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे तो दोनों के बीच टकरावा की संभावना बन सकती थी, क्योंकि एक निर्वाचित राज्यपाल नाममात्र के शासक के रूप में कार्य करना पसंद नहीं करेगा। इस बात के लिए सहमति हुई कि संसदीय प्रबन्ध में एक निर्वाचित राज्यपाल एक गोल छिद्र में चौरस वस्तु के समान होगा। यह भी प्रस्ताव किया गया था कि राज्य के विधानकार चार सदस्यों, जोकि राज्य के निवासी हों, के एक पैनल का चयन करें और देश का राष्ट्रपति इन चारों में से किसी एक को राज्यपाल नियुक्त करे। परन्तु यह अनुभव किया गया कि राज्य के विधायकों के द्वारा चार उम्मीदवारों का पैनल बनाते समय व्यवहार में राजनीति का खेल खेला जा सकता था। इससे राज्यपाल को संघ और राज्य के बीच एक सम्पर्क सूत्र बनाने की आवश्यकता परोक्ष हो जाएगी।

इसलिए यह निर्णय किया गया कि राज्यपाल भारत के राष्ट्रपति के द्वारा नियुक्त किया जाएगा। इसके अनुसार संविधान के अनुच्छेद 155 में लिखा गया कि “राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा अपने हस्ताक्षरों और मोहर से जारी आदेश के द्वारा की जाएगी।”

2. दो महत्वपूर्ण परम्पराएँ जिनके आधार पर राज्यपाल की नियुक्ति की जाती है (Two Important Conventions which govern the appointment of a Governor) : पहली परम्परा यह है कि राज्यपाल उस राज्य का निवासी नहीं होना चाहिए जिस राज्य में उसकी राज्यपाल के रूप में नियुक्ति की जाती है।

इस परम्परा का आधार यह विचार है कि यदि राज्यपाल उस राज्य का निवासी होगा तो वह स्वतंत्र और निष्पक्ष ढंग से कार्य नहीं कर सकेगा। उसकी राज्य में अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धताएँ होंगी और इस बात की प्रत्येक संभावना विद्यमान होगी कि वह राज्य के आंतरिक मामलों और राजनीति में हस्तक्षेप करेगा। प्रायः राष्ट्रपति के द्वारा इस परम्परा का सम्मान किया जाता है, परन्तु इस परम्परा से संबंधित कुछ अपवाद भी रहे हैं जैसे उदाहरण के लिए डॉ० एच० सी० मुखर्जी को उनके पैतृक राज्य पश्चिमी बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया गया था। इसी प्रकार कुछ समय के लिए सरदार उज्जल सिंह को पंजाब का राज्यपाल नियुक्त किया गया था। पंजाब के भूतपूर्व राज्यपाल लैफ्टिनेंट जनरल (रिटायर्ड) बी० के० एन० छिब्र भी पंजाबी थे, परन्तु इनको परम्परा का अपवाद कह कर उपेक्षित किया जा सकता है।

राज्यपाल नियुक्त किए जाने के संबंध में दूसरी परम्परा यह है कि किसी विशेष राज्य का राज्यपाल नियुक्त करने के लिए किसी व्यक्ति के चयन को अंतिम रूप देने से पहले केन्द्र सरकार को उपेक्षित कर दिया जाता है। उदाहरण के रूप में 1967 में हरियाणा के मुख्यमंत्री राव बीरेन्द्र सिंह के राज्यपाल की नियुक्ति से संबंधित विचारों

नोट

नोट

को केन्द्र सरकार ने स्वीकार नहीं किया था। बिहार के मुख्यमन्त्री महामाया प्रसाद सिन्हा के श्री एन० एन० कानगो की बिहार के राज्यपाल के रूप में नियुक्ति का विरोध किया था। परन्तु केन्द्र ने मुख्यमन्त्री के परामर्श को स्वीकार नहीं किया था। पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडू की सरकारों ने सदैव ही राज्यपाल की नियुक्ति से संबंधित अपनी भूमिका (सिफारिश करने की) पर बल दिया है।

परन्तु अब यह स्थायी रूप में निर्णय कर लिया गया है कि राज्यपाल की नियुक्ति करते समय केन्द्र सदैव संबंधित राज्य की मन्त्रि-परिषद् का परामर्श लेगा और जहां तक हो सकेगा, ऐसे परामर्श को स्वीकार भी करेगा।

इन दो अच्छी परम्पराओं के साथ-साथ देश में एक बुरी परम्परा भी विद्यमान रही है और वह है कि चुनाव में पराजित हुए राजनीतिक नेताओं की अलग-अलग राज्यों के राज्यपाल के रूप में नियुक्ति करना। एक और बुरी परम्परा यह पड़ रही है कि केन्द्र सरकार बदलने के पश्चात् राज्यपालों का थोक में हस्तांतरण या उनको हटाया जाना। आवश्यकता इस बात की है इन बातों से ऊपर उठा जाए और योग्यता के आधार पर ही राज्यपाल की नियुक्ति की जाए।

3. राज्यपाल के पद के लिए योग्यताएँ (Qualification for the Office of the Governor) : संविधान का अनुच्छेद 157 यह शर्त रखता है कि कोई भी व्यक्ति राज्यपाल की नियुक्ति के लिए योग्य नहीं हो सकता जोकि भारत का नागरिक न हो और जिसकी आयु 35 वर्ष से कम हो।

अनुच्छेद 158 कुछ अन्य योग्यताओं का वर्णन रखता है : (1) राज्यपाल संसद के किसी भी सदन का या किसी राज्य की विधानसभा का सदस्य नहीं होना चाहिए और यदि संसद के किसी भी सदन के सदस्य या किसी भी राज्य की विधानपालिका के सदस्य को राज्यपाल नियुक्त किया जाता है तो उसी दिन से यह समझा जाएगा कि उसकी सदन की सदस्यता समाप्त हो गई है जिस दिन से वह राज्यपाल के रूप में पद संभाल लेगा। (2) राज्यपाल कोई लाभदायक पद ग्रहण नहीं कर सकता। (3) वह किसी भी न्यायालय के द्वारा घोषित दिवालिया नहीं होना चाहिए।

अधिकतर सार्वजनिक जीवन में अच्छे व्यक्तित्व और मान-सम्मान वाले व्यक्ति या सक्रिय राजनीति छोड़ चुके किसी वरिष्ठ राजनीतिक नेता या सेवानिवृत्त सिविल या सैनिक अफसरों को ही राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया जाता है।

4. वेतन और भत्ते (Emolument and Allowances)—इस समय राज्यपाल रुपए मासिक वेतन के रूप में प्राप्त करता है, बिना किराए का मुफ्त सरकारी निवास और संचार तथा यातायात की सुविधा मिलती है, उसके स्तर, कर्तव्यों और पद की श्रेष्ठता को देखते अलग-अलग प्रकार के कई अन्य भत्ते मिलते हैं। राज्यपाल के पद के संबंध में किया जाने वाला व्यय, संबंधित राज्य के धन में से किया जाता है।

जहां कभी एक ही व्यक्ति को दो या इससे अधिक राज्यों का राज्यपाल बनाया जाता है वहां उसको मिलने वाले वेतन और भत्ते राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार उसी अनुपात में संबंधित राज्यों में बाँट दिए जाते हैं।

राज्यपाल का वेतन और भत्ते उनके कार्यकाल के दौरान कम नहीं किए जा सकते।

5. कार्यकाल (Term)—राज्यपाल की नियुक्ति पांच वर्ष के लिए की जाती है परन्तु वह तब तक अपने पद पर रह सकता है जब तक कि राष्ट्रपति चाहे। राष्ट्रपति उसको किसी समय पद से हटा सकता है या उसका हस्तांतरण कर सकता है। यहां तक कि 5 वर्ष की अवधि पूरी होने के पश्चात् भी राज्य का राज्यपाल तब तक अपने पद पर बना रह सकता है जब तक कि उसके स्थान पर नया नियुक्त हुआ व्यक्ति अपना पद नहीं संभाल लेता। 1999 में पंजाब में ऐसा ही देखने को मिला। भूतकाल में हरियाणा और पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल का पद अस्थायी रूप में रिक्त हो जाता है या उसकी मृत्यु के कारण रिक्त हो जाता है तो राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश कार्यवाहक राज्यपाल के रूप में कार्य करता है। राज्यपाल किसी भी समय अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है। जून, 1991 में पंजाब के राज्यपाल जनरल (सेवानिवृत्त) ओ० पी० मल्होत्रा ने पंजाब में चुनाव स्थगित किए जाने के विरोध में अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया था। मार्च, 1995 में तमिलनाडू विधानसभा ने एक प्रस्ताव पास करके मांग की थी कि राज्यपाल श्री चन्ना रैडी को वापस बुलाया जाए परन्तु केन्द्र ने राज्य विधानसभा तथा सरकार की ऐसी मांग प्रस्तुत करने का अधिकार को स्वीकार नहीं किया था।

नोट

6. **राज्यपाल के द्वारा शपथ लेना या प्रतिज्ञा लेनी (Oath or Affirmation by the Governor)**—प्रत्येक राज्यपाल और राज्यपाल के कर्तव्य निभा रहे प्रत्येक व्यक्ति को अपना पद संभालने से पहले राज्य के उच्च न्यायालय के चीफ जस्टिस की उपस्थिति में अपने पद की शपथ उठानी अथवा प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है।

7. **राज्यपाल की कानूनी छूटें (Legal Immunities of the Governor)**—राज्य के राज्यपाल को राज्य का मुखिया होने के नाते अपने कार्य निपटाने के संबंध में हुए कुछ विशेष कानूनी छूटें प्राप्त हैं। संविधान के अनुच्छेद 361 के अधीन राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री या किसी राज्य का राज्यपाल उनके पद के अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करने के प्रति या अपने उन अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करते समय किए गए किसी कार्य के प्रति किसी भी न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी नहीं होता। इसी प्रकार उसके कार्यकाल के दौरान राज्यपाल के विरुद्ध कोई भी फौजदारी या सिविल कार्यवाही नहीं की जा सकती। राज्यपाल के कार्यकाल के दौरान उसकी गिरफ्तारी या कैद करने के लिए किसी भी न्यायालय के द्वारा कोई भी आदेश जारी नहीं किया जा सकता।

राज्यपाल : शक्तियां और कार्य (Governor : Powers and Functions)

राज्य का मुखिया होने के नाते राज्यपाल को बहुत-सी शक्तियां और सम्मान मिलता है जिसकी तुलना भारत के राष्ट्रपति को प्राप्त शक्तियों और सम्मान से की जा सकती है। जैसा कि डी० डी० बसु लिखते हैं, “राज्य के राज्यपाल की शक्तियां देश के राष्ट्रपति की शक्तियों के समान ही हैं। अन्तर केवल यह है कि राज्यपाल के पास कोई कूटनीतिक (डिप्लोमैटिक) सैनिक या संकटकालीन शक्तियां नहीं होती।” परन्तु जबकि भारत के राष्ट्रपति के पास कोई स्वैच्छिक शक्तियां नहीं होतीं, राज्यपाल के पास कुछ स्वैच्छिक शक्तियां होती हैं, जो राज्य में उसकी स्थिति को सुदृढ़ बनाती हैं।

राज्यपाल की शक्तियों का निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन वर्णन किया जा सकता है:

1. **कार्यकारी शक्तियाँ (Executive Powers)**—राज्यपाल राज्य का मुखिया होता है। संविधान राज्य की कार्यपालिका शक्तियां राज्यपाल को सौंपता है जिनका प्रयोग उसने प्रत्यक्ष रूप में या अपने अधीन कर्मचारियों के द्वारा करना होता है। वह मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है और मुख्यमंत्री की सिफारिश पर अन्य मन्त्रियों को नियुक्त करता है। मन्त्री तब तक पद पर रह सकते हैं जब तक राज्यपाल चाहे। यदि राज्यपाल अनुभव करे कि सरकार को बहुमत का विश्वास प्राप्त नहीं या वह उचित ढंग से कार्य नहीं कर रही तो वह राज्य के मुख्यमंत्री को पद से हटा सकता है जैसा कि जुलाई, 1984 में जम्मू और कश्मीर के राज्यपाल श्री जगमोहन ने किया था जब उन्होंने डॉ० फारूक अब्दुल्ला को मुख्यमंत्री के पद से हटा दिया था। राज्य में सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियां (एडवोकेट जनरल, राज्य लोक सेवा आयोग का चेयरमैन और सदस्य, विश्वविद्यालय के उपकुलपति) राज्यपाल के द्वारा की जाती हैं। परन्तु ऐसा करते समय, राज्य में राष्ट्रपति राज्य लागू होने की स्थिति को छोड़कर, राज्यपाल राज्य के मुख्यमंत्री और मन्त्रि-परिषद् की सिफारिशों पर निर्भर करता है। मुख्यमंत्री को राज्य के प्रशासन और मन्त्रि-परिषद् के द्वारा लिए गए निर्णयों से राज्यपाल को सूचित करते रहना पड़ता है। राज्यपाल राज्य के प्रशासन से संबंधित मुख्यमंत्री से जानकारी मांग सकता है। वह मुख्यमंत्री से यह मांग कर सकता है कि मन्त्रि-परिषद् में निर्णय लेने से पूर्व किसी मन्त्री ने कोई निर्णय लिया हो तो उस पर मन्त्रि-परिषद् के द्वारा विचार किया जाए। राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति समय राज्यपाल से परामर्श भी लेता है। राज्यपाल राज्य के सभी विश्व-विद्यालयों के चांसलर के रूप में कार्य करता है।

राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम पर चलाया जाता है। वह उन सभी विषयों जोकि राज्य की विधान पालिका के अधिकार क्षेत्र में आते हैं, का प्रशासन चलता है। वह मन्त्रि-परिषद् के कार्य-व्यवहार को उचित ढंग से चलाने के लिए नियम बनाता है। वह राज्य सरकार को यह कह सकता है कि वह अपने किसी निर्णय पर पुनः विचार करें। असम और सिक्किम के राज्यपालों को अनुसूचित कबीलों के हितों की रक्षा करने के लिए विशेष शक्तियां प्राप्त हैं।

सामान्य रूप में राज्यपाल अपने सभी कार्यपालिक शक्तियों का प्रयोग राज्य मन्त्रि-परिषद् की सिफारिश के अनुसार करता है। राज्यपाल के सभी कार्यों के लिए मन्त्री उत्तरदायी होते हैं। परन्तु घोषित संकटकाल स्थिति में राज्यपाल कार्यकारिणी का वास्तविक कार्यपालक मुखिया बन जाता है।

नोट

2. **वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers)**—राज्यपाल राज्य विधानपालिका का सदस्य नहीं होता परन्तु इसके बावजूद वह इसका एक अंग माना जाता है। राज्य विधानपालिका के द्वारा पास किए बिल तब ही कानून बनते हैं जब इन पर राज्यपाल हस्ताक्षर कर देता है। वह राज्य विधानसभा के अधिवेशन बुला सकता है और इनको स्थागित कर सकता है। वह राज्य विधानपालिका को भंग कर सकता है। सामान्य रूप में उसके द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग राज्य के मुख्यमन्त्री के परामर्श के साथ किया जाता है। राज्य विधानसभा का अधिवेशन राज्यपाल के भाषण से आरंभ होता है। वह आम चुनावों के पश्चात् विधानपालिका के प्रथम अधिवेशन में भाषण देता है और विधानपालिका का प्रत्येक वर्ष का प्रथम अधिवेशन राज्यपाल के प्रथम अधिवेशन में भाषण देता है और विधानपालिका का प्रत्येक वर्ष का प्रथम अधिवेशन राज्यपाल के भाषण से आरंभ होता है। यदि वह अनुभव करे कि आंग्ल-भारतीय भाईचारे को राज्य विधानसभा में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला तो वह इस भाई-चारे का सदस्य राज्य विधानसभा में मनोनीत कर सकता है। वह किसी भी बिल पर अपनी सहमति रोक सकता है या किसी भी एक बिल (वित्तीय बिल को छोड़कर) को राज्य विधानसभा को पुनः विचार के लिए वापस कर सकता है। परन्तु यदि वह बिल दूसरी बार पास हो जाता है तो राज्यपाल इस पर अपनी सहमति प्रकट कर अपने अर्थात् हस्ताक्षर करने से इन्कार नहीं कर सकता। वह राज्य विधानपालिका के द्वारा पास कुछ बिलों को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए सुरक्षित रख सकता है। इनमें अनिवार्य सम्पत्ति ग्रहण करने से या उच्च न्यायालय के अधिकारों को ठेस पहुंचाने से संबंधित बिल शामिल होते हैं। जब राज्य विधानपालिका का अधिवेशन न चल रहा हो तो राज्यपाल अध्यादेश जारी कर सकता है। राज्यपाल के द्वारा जारी ऐसे अध्यादेश की शक्ति वैसी ही होती है जोकि विधानसभा के द्वारा पास कानून की होती है। जब राज्य विधानपालिका का अधिवेशन जिस दिन से आरंभ होता है उससे 6 सप्ताह पश्चात् यह अध्यादेश लागू नहीं रहता। यह तो भी समाप्त हो जाता है यदि राज्य विधानपालिका इस अध्यादेश को अस्वीकार करने का प्रस्ताव पास कर देती है।

3. **वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)**—राज्य विधानपालिका में एक वित्तीय बिल राज्यपाल की पूर्ण स्वीकृति लेकर ही प्रस्तुत किया जा सकता है। वह वार्षिक बजट राज्य विधान पालिका में प्रस्तुत करने के लिए कहता है। राज्य का आकस्मिक घटना फंड (Contingency Fund) उसके अधिकार में होता है और वह इसमें से किसी भी व्यय के आदेश दे सकता है और बाद में इसकी स्वीकृति राज्य विधानसभा से प्राप्त की जाती है वास्तव में इन सभी शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल राज्य मन्त्रि-परिषद् की परामर्श के अनुसार करता है।

4. **न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)**—राज्यपाल की कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी हैं। वह जिला न्यायाधीशों और अन्य न्याया अधिकारियों के चयन, उनकी नियुक्तियों और पदोन्नतियों को प्रभावित कर सकता है। अनुच्छेदों 161 के अधीन राज्य की कार्यपालिका के अधिकार-क्षेत्र में पड़ते किसी भी विषय से संबंधित किसी भी कानून के उल्लंघन के कारण दोषी ठहराए और बन्दी बनाए किसी भी व्यक्ति के दण्ड को क्षमा कर सकता है, उसके दण्ड को कम कर सकता है या आम माफी दे सकता है, या उसकी कैद के दण्ड को स्थगित, क्षमा या कम कर सकता है। राष्ट्रपति संबंधित राज्य की उच्च न्यायालय के चीफ जस्टिस और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति समय उस राज्य के राज्यपाल से भी परामर्श करता है।

5. **फुटकल शक्तियाँ (Miscellaneous Powers)**—उपर्युक्त वर्णित शक्तियों के साथ-साथ राज्यपाल कुछ अन्य कार्य भी करता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग (एस० पी० एस० सी०) से वार्षिक रिपोर्ट प्राप्त करता है और इस पर टिप्पणियों के लिए इसको मन्त्रि-परिषद् के पास प्रस्तुत करता है। फिर वह यह रिपोर्ट और इस पर मन्त्रि-परिषद् की टिप्पणियाँ विधानसभा के स्पीकर के सुपुर्द करता है ताकि वह इसको विधानसभा में रख सके। यदि वह यह अनुभव करता है कि राज्य प्रशासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा रहा तो वह अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति राज्य लागू होने की स्थिति में राज्यपाल राज्य प्रशासन के वास्तविक मुखिया के रूप में कार्य करता है। राष्ट्रपति की ओर से वह कानून और नीतियाँ लागू करके राज्य का प्रशासन चलाता है। राष्ट्रपति के राज्य

नोट

का वास्तविक अर्थ राज्यपाल का शासन होता है। वह राज्य सरकार या राज्य विधानसभा भंग करने का भी अधिकार रखता है। अनुच्छेद 356 के अधीन अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय राज्यपाल अपने स्व-विवेक से भी कार्य कर सकता है।

राज्यपाल की स्थिति (Position of the Governor)

राज्यपाल की शक्तियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि उसकी व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं और वह संवैधानिक शासक नहीं होता। परन्तु एक ऐसे राज्य का मुखिया होते हुए, जोकि इस संसदीय प्रणाली वाला राज्य है, राज्यपाल सामान्य स्थितियों में नाम-मात्र के संवैधानिक कार्यकारी के रूप में ही कार्य करता है। संविधान के अनुच्छेद 74(1) की तरह, अनुच्छेद 163 कहता है, “राज्यपाल के कार्यों में उसको सहायता और परामर्श देने के लिए मुख्यमंत्री के नेतृत्व में एक मन्त्रि-परिषद् होगी। परन्तु उन कार्यों को छोड़ कर जिनके संबंध में संविधान ने उसको अपने स्व-विवेक के अनुसार कार्य करने की शक्ति सौंपी हुई है।”

संविधान पूर्ण रूप से उसकी स्व-विवेक की शक्तियों की सीमा निर्धारित नहीं करता। वह केवल कुछ क्षेत्रों में ही अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकता है। वह सामान्य में मन्त्रि-परिषद् की सिफारिशों के अनुसार राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करता है (मन्त्रि-परिषद्) ही उसके सभी कार्यों के लिए राज्य विधानसभा के समक्ष उत्तरदायी होती है। संविधान निर्माता राज्यपाल को राज्य का नाम-मात्र का मुखिया रखना चाहते थे। डॉ० अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा था, “राज्यपाल की शक्तियां इतनी सीमित, इतनी नाम-मात्र और इसकी स्थिति इतनी सजावटी है कि राज्यपाल का चुनाव करावाना लोगों के पैसे की बर्बादी ही होगी।” के० एम० मुन्शी के भी ऐसे ही विचार थे। मद्रास के राज्यपाल श्री प्रकाश ने अपनी स्थिति बयान करते हुए एक बार कहा था, “मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैंने कुछ नहीं करना, बल्कि संवैधानिक राज्यपाल के रूप में कार्य करना है, केवल कागजों पर हस्ताक्षर करने हैं।...” एच० वी० कामथ कहते हैं, “राज्यपाल अधिकारिक रूप में एक ओर मुख्यमंत्री के हाथ में और दूसरी ओर राष्ट्रपति, यदि कहा जाए तो वास्तविक रूप में प्रधानमंत्री, के हाथों में एक कठपुतली के समान होता है।” कुछ विशेष अवसरों को छोड़ कर, राज्यपाल लगभग सदैव ही अपने मन्त्रियों के परामर्श और निर्देश के अनुसार चलता है, जोकि सामूहिक रूप में राज्य विधानसभा के समक्ष उत्तरदायी होते हैं। सुनील कुमार बोस और पश्चिमी बंगाल के मुख्य सचिव के मामले में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने कहा था, “संविधान के अनुसार राज्यपाल केवल राज्य की मन्त्रि-परिषद् के परामर्श के अनुसार ही कार्य कर सकता है।” इस प्रकार राज्य का राज्यपाल मौलिक रूप में राज्य का नाममात्र का मुखिया होता है।

(क) वह क्षेत्र जिसमें राज्यपाल अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकता है (The areas in which the Governor acts under his discretion) : परन्तु राज्यपाल को राज्य का नाममात्र मुखिया बनाने के बावजूद संविधान उसको कुछ स्व-विवेक शक्तियां देता है, जिनका प्रयोग वह राज्य की मन्त्रि-परिषद् की सिफारिश के बिना कर सकता है। असम का राज्यपाल राज्य में अनुसूचित (आदिवासी) क्षेत्रों की स्थिति के बारे में रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेजता है। सिक्किम के राज्यपाल का अतिरिक्त उत्तरदायित्व है कि वह समाज के अलग-अलग वर्गों के सामाजिक-आर्थिक विकास की ओर ध्यान दे, राज्य के अमन और कानून बनाए रखना भी उसका उत्तरदायित्व बनाया गया है।

निम्नलिखित क्षेत्रों में राज्यपाल अपने स्व-विवेक से कार्य कर सकता है:

(1) त्रिशंकु राज्य विधानसभा के अस्तित्व में आने की परिस्थिति में मुख्यमंत्री की नियुक्ति (Selection of C.M. in case the State Legislative Assembly is a Hung House)—जब राज्य विधानसभा में किसी भी एक दल या समूह को बहुमत प्राप्त न हो तो राज्यपाल मुख्यमंत्री नियुक्त करने में सक्रिय और निर्णायक भूमिका निभाता है। उदाहरण के रूप में ऐसा मद्रास और ट्रान्क्वोर कोचीन में 1952 में, केरल और उड़ीसा में 1957 में, पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा में 1970 में पंजाब और हरिणाया में 1967 के चुनावों के पश्चात् घटित हुआ। 1952 में मद्रास के राज्यपाल श्रीप्रकाश ने श्री सी० राजगोपालचारी को इस तथ्य के बावजूद मुख्यमंत्री

नोट

नियुक्त कर दिया चाहे कि उसको राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त नहीं था। 1982 में हरियाणा के राज्यपाल ने श्री देवी लाल को कहा कि वह उनके सामने विधायक प्रस्तुत करके अपना बहुमत सिद्ध करें, परन्तु 22 मई, 1982 को उन्होंने श्री भजन लाल को राज्य का मुख्यमंत्री बना दिया। आंध्र प्रदेश में राज्यपाल ने 1987 में श्री एन० टी० रामा राव की सरकार भंग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1996 में यू० पी० के राज्यपाल रमेश भंडारी ने राज्य विधानसभा में सबसे बड़ा विधायक दल के नेता को सरकार बनाने का निमन्त्रण इस तथ्य के बावजूद नहीं दिया था कि राष्ट्रपति ने मई, 1996 में केन्द्र में सबसे बड़े संसदीय दल के रूप में उभरी भारतीय जनता पार्टी के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को केन्द्र में सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया था। इससे पता लगता है कि त्रिशंकु राज्य विधानसभा अस्तित्व में आने की परिस्थिति में राज्यपाल अपनी इच्छानुसार मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है।

(2) **मन्त्रि-परिषद् को भंग करना (Dismissal of Ministry)**—जब सत्ता में विद्यमान दल बहुमत गंवा बैठे या दल में विद्रोह होने या फूट पड़ने के कारण इसके बहुमत गंवा बैठने की संभावना हो तो राज्यपाल राज्य सरकार को भंग करने के लिए अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है। ऐसा हरियाणा में घटित हुआ जब राव वीरेन्द्र सिंह की सरकार भंग कर दी गई जबकि 78 सदस्यीय सदन में उसको 40 सदस्यों का समर्थन प्राप्त था। राव वीरेन्द्र सिंह ने इस कार्यवाही को उच्च न्यायालय में चुनौती दी, उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि राज्यपाल को अपनी शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार है और उसका निर्णय उचित था। अक्टूबर, 1970 में यू० पी० में चरण सिंह की सरकार को भंग करने का कारण भी राज्यपाल के द्वारा अपने स्व-विवेक के अधिकार का प्रयोग करना था।

(3) **राज्य विधानसभा भंग करना (Dissolution of State Legislative Assembly)**—राज्यपाल राज्य विधानसभा भंग करने के लिए आदेश देने या राष्ट्रपति के पास इसकी सिफारिश करने समय अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकता है। जब नवम्बर, 1967 में लक्ष्मण सिंह गिल ने दल-बदली की थी और जनता पार्टी स्थापित कर ली थी तो पंजाब के राज्यपाल ने मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह की सिफारिश पर राज्य विधानसभा भंग नहीं की थी। पंजाब में दूसरी बार जब प्रकाश सिंह बादल मन्त्रि-परिषद् ने त्याग-पत्र दिया, तो पहले मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह ने सरकार बनाने का अपना दावा प्रस्तुत किया। राज्यपाल श्री पावटे ने अपने स्वविवेक से कार्य करते हुए राज्य विधानसभा भंग कर दी। इसी प्रकार यदि राज्यपाल यह अनुभव करे कि वैकल्पिक सरकार स्थापित की जा सकती है तो राज्यपाल मुख्यमंत्री की विधानसभा भंग करने की सिफारिश स्वीकार करने से इन्कार भी कर सकता है।

(4) **राष्ट्रपति को राज्य में संकटकाल स्थिति लागू करने की सिफारिश करनी (Advising the President for Promulgation of Emergency)**—राज्यपाल अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करते हुए राष्ट्रपति को अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य में संकटकाल स्थिति लागू करने की सिफारिश कर सकता है। वह ही यह निर्णय करता है कि क्या राज्य में संवैधानिक मशीनरी में असफल हुई है या नहीं। ऐसा करते समय वह केन्द्रीय सरकार की इच्छानुसार व्यवहार कर सकता है या स्वतंत्र मार्ग चुनकर अपना निर्णय दे सकता है।

(ख) **राज्यपाल एक सुनहरी शून्य नहीं (Governor is not a Golden Zero)**—इस प्रकार राज्यपाल केवल नाममात्र का ही मुखिया नहीं होता। वह अपने पद के अधीन कुछ अधिकार अपनी इच्छा से प्रयोग कर सकता है और राज्य के मुख्यमंत्री के द्वारा की गई सिफारिशों से स्वतंत्र रह सकता है। संविधान निर्माण सभा में बहुत-से सदस्यों ने राज्यपाल को स्व-विवेक शक्तियां देने को उचित ठहराया था क्योंकि इससे उसको केन्द्र का एक अच्छा एजेंट बनाने के साथ-साथ उसको राज्य का मुखिया बनाने के लिए भी श्रेष्ठ समझा गया। महाबीर त्यागी जैसे सदस्यों ने स्व-विवेक शक्तियों की जोरदार वकालत की थी। डॉ० बी० आर० अंबेडकर ने भी स्पष्ट रूप में कहा था कि राज्यपाल को स्व-विवेक अधिकार प्रदान करके किसी भी तरह एक उत्तरदायी सरकार के विरोध में या उसको नकारने की भावना वाला कार्य नहीं किया गया। यह विचार मौलाना मोहानी, रोहनी कुमार चौधरी और दूसरे उन सदस्यों के विचारों पर हावी हो गया था जोकि राज्यपाल को स्व-विवेक शक्तियां देने का विरोध करते थे क्योंकि वे अनुभव करते थे कि इससे राज्यपाल सत्तावादी हो सकता था और अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर सकता था। बहुमत का विचार यह था कि राज्यपाल को हटाने का आसान ढंग (राष्ट्रपति के द्वारा एक साधारण कार्यवाही) उसके

नोट

द्वारा इन अधिकारों का दुरुपयोग करने के विरुद्ध एक संतुष्टिजनक गारंटी थी। इस प्रकार राज्य के राज्यपाल को कुछ स्व-विवेक शक्तियां दी गईं।

(ग) राज्य प्रशासन में राज्यपाल की भूमिका (Governor's Role in State Administration)–

इस प्रकार संविधान राज्यपाल को राज्य के प्रशासन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला कर्ता बनाता है। यहां तक कि सामान्य स्थितियों में जब वह राज्य के नाम-मात्र मुखिया के रूप में कार्य करता है, तब भी वह अपनी कुछ स्व-विवेक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। अप्रैल 1995 में तमिलनाडू के राज्यपाल ने डॉ० सुब्रह्मण्यम स्वामी को प्रांत का मुख्यमंत्री कुमारी जय ललिता के विरुद्ध भ्रष्टाचार के मामले में मुकदमा चलाने की आज्ञा दे दी। यह कार्यवाही बहुत ही अधिक वाद-विवाद वाली थी और इससे राज्यपाल का पद एक विवादित पद बन गया था। तमिलनाडू विधानसभा ने प्रस्ताव पास करके मांग की कि राज्यपाल को वापस बुलाया जाए। उसने मांग की कि केन्द्र विधानसभा की यह मांग स्वीकार कर ले। केन्द्र के लिए इस संबंध में स्पष्ट स्टैंड लेना असंभव हो गया और इसके कारण संवैधानिक संकट पैदा हो गया। इस प्रकार राज्यपाल का पद एक विवाद का कारण भी बन सकता है। अनुच्छेद 356 के अधीन संकटकाल स्थिति में वह बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संकटकाल स्थिति लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। वह राज्य में राष्ट्रपति शासन के दौरान सरकार का वास्तविक कार्यपालिका (सरकार) मुखिया बनकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1970 के हरगोविंद बनाम रघुकुल केस में मुख्य न्यायाधीश वाई० पी० चन्द्रचूड, और न्यायाधीश पी० एन० भगवती, एन० एल० अन्तावालिया, एस० मुर्तजा फजल अली और आर० एस० पाठक पर अधिकृत सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने यह पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया कि “राज्यपाल ने राज्य के प्रशासन में वास्तविक भूमिका निभानी होती है और यहां तक कि वह भारत सरकार के निर्देशों पर निर्भर नहीं, न ही वह अपने कार्यों और कर्तव्यों को निभाने के ढंगों के प्रति सरकार के समक्ष उत्तरदायी होता है और उसका पद एक स्वतंत्र संवैधानिक पद है।”

(घ) राज्यपाल केन्द्र और राज्य सरकार के बीच एक सम्पर्क सूत्र के रूप में (Governor as a

link between the Union and the State)–राज्यपाल केन्द्र और राज्य के बीच सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करता है, साधारण समय में राज्य के नाम-मात्र और संवैधानिक मुखिया के रूप में और जब राज्य अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन के अधीन आता है तो राज्य के वास्तविक मुखिया के रूप में। इन तीन भूमिकाओं के कारण ही कई बार राज्यपाल एक विवादग्रस्त व्यक्ति बन जाता है। वह एक ही समय में केन्द्र के एजेंट के रूप में और राज्य के प्रशासन के मुखिया के रूप में कार्य करने का प्रयत्न करता है और इसके साथ ही अपने कुछ स्व-विवेक अधिकारों का भी प्रयोग करता है। अलग-अलग राज्यों के अलग-अलग राज्यपाल अलग-अलग समय पर विवादों का केन्द्र बनते रहे हैं। राज्यपाल की वास्तविक भूमिका निर्धारित करने के लिए स्थापित की गई समितियों की अनेकों रिपोर्टों में उसकी बहुमुखी भूमिका को कुछ दिशा-निर्देश देने के लिए व्यावहारिक कदम सुझाए हैं। परन्तु इसके बावजूद राज्यपाल के पद वैसा है जैसा पहले था और इसलिए आज भी यह कुछ विवादग्रस्त पद ही बना हुआ है।

7.5 राज्यपाल की भूमिका (Role of Governor)

भारत में प्रत्येक राज्य का एक राज्यपाल होता है जो राज्य की कार्यपालक (सरकार) का मुखिया होता है परन्तु साथ ही राज्य में केन्द्र के एजेंट या प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। राज्य का मुखिया होने के नाते उसके पास व्यापक कार्यकारी शक्तियां होती हैं जोकि निःसन्देह उसके द्वारा मन्त्रि-परिषद् और मुख्यमंत्री के परामर्श के अनुसार प्रयोग की जाती हैं। सामान्य स्थितियों में वह राज्य के संवैधानिक और नाम-मात्र कार्यपालक मुखिया के रूप में कार्य करता है, जैसा कि राज्य में लागू संसदीय स्वरूप की सरकार के कार्य-व्यवहार के लिए आवश्यक होता है।

नोट

परन्तु, राज्यपाल कुछ वास्तविक अधिकार भी रखता है जिनका प्रयोग वह अपनी इच्छा या स्व-विवेक के अनुसार कर सकता है। यदि किसी भी एक दल या गठबन्धन समूह को राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त न हो तो मुख्यमंत्री की नियुक्ति में राज्यपाल महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। वह कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य की मन्त्रि-परिषद् को भंग कर सकता है और राज्य विधानसभा का भंग कर सकता है। वह राज्य सरकार के कार्य के बारे में राष्ट्रपति की रिपोर्टें भेजता है। ऐसी रिपोर्टें भेजते समय वह अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता है। संवैधानिक मशीनरी की असफलता की परिस्थिति में वह राज्य की मन्त्रि-परिषद् को भंगकर सकता है और वैकल्पिक सरकार स्थापित कर सकता है जैसा कि पंजाब के राज्यपाल ने 1967 में गुरनाम सिंह की मन्त्रि-परिषद् भंग करके लक्ष्मण सिंह गिल की सरकार स्थापित कर दी थी। वह राष्ट्रपति की सहमति से या सहमति के बिना ही राज्य विधानसभा भंग या स्थगित कर सकता है। जब राज्य में संकटकाल स्थिति (अनुच्छेद 356) लागू हो तो राज्यपाल सरकार के वास्तविक मुखिया के रूप में कार्य करता है और राज्य का प्रशासन चलाता है। वह राज्य में राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में कार्य करता है। उसकी नियुक्ति और पदमुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। वह राष्ट्रपति की इच्छा तक अपने पद पर रह सकता है। अनुच्छेद 200 के अधीन वह राज्य विधानसभा के द्वारा पास किसी प्रांतीय बिल को राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के लिए रोक सकता है। उसका यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि संघीय कानून राज्य में पूर्ण रूप से लागू किए जा रहे हैं कि नहीं। वह राज्य सरकार के द्वारा की जा रही किसी अवहेलना को राष्ट्रपति के ध्यान में ला सकता है। अनुच्छेद 355 उसको यह विश्वसनीय बनाने के लिए कहता है कि राज्य सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार चलाई जाए।

राज्यपाल की दोहरी भूमिका (Dual Role of the Governor)—राज्य के राज्यपाल को राज्य के संवैधानिक मुखिया होने के साथ-साथ केन्द्र का प्रतिनिधि होने की दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। 1968 में केन्द्र-राज्य संबंधों का मूल्यांकन लेने के लिए स्थापित किए गए प्रशासकीय सुधार आयोग (ए० आर० सी०) ने कहा, “राज्यपाल अधिकतर राज्य के एक अंग के रूप में कार्य करता है, परन्तु इसके साथ ही उसको केन्द्र से भी संपर्क रखना पड़ता है। यह सम्पर्क और उसका केन्द्र के प्रति उत्तरदायित्व संविधान के अनुसार मुख्य रूप में इन व्यवस्थाओं के कारण है कि उसकी नियुक्ति और पद-मुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है... इसीलिए यह स्पष्ट है कि संविधान निर्माण करने वाले यह नहीं चाहते थे कि राज्यपाल राज्य स्तर पर सरकार का केवल एक अंग ही बना रहे। वह चाहते थे कि वह केन्द्र के साथ एक महत्वपूर्ण सम्पर्क सूत्र भूनी बने। इस प्रकार की भूमिका भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण और अनोखी विशेषता है जो राज्यपाल की भूमिका को निश्चय ही कठिन बना देती है। उसको दोनों भूमिकाएँ साथ-साथ निभानी पड़ती हैं और इनको निभाने में किसी एक में थोड़ी-सी असफलता उसकी कठिनाई में डाल सकती है। प्रशासकीय सुधार आयोग (ए० आर० सी०) ने राज्यपाल की ऐसी दोहरी भूमिका पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि “इस पद पर आसानी व्यक्ति साधारण बुद्धि वाला नहीं चाहिए और उसका चरित्र सामर्थ्य और अनुभव ऐसा होना चाहिए कि वह केन्द्र के प्रति और राज्य की कार्यपालिका (सरकार) के प्रति अपना दोहरा उत्तरदायित्व निभाने के समर्थ हो जिसका कि वह संवैधानिक मुखिया है... उसके चरित्र के इस पहलू पर दूसरे पहलू की कीमत पर बल देना गलत होगा और इसकी भूमिका निभानी दोनों पहलुओं की संभावनाओं और सीमाओं की उचित व्याख्या करने पर निर्भर करती है।” एक राज्यपाल को केन्द्र और राज्य दोनों को संतुष्ट करना पड़ता है। केन्द्र सरकार उससे यह आशा करती है कि वह उसके हितों, कई बार राजनीतिक हितों का पालन करें और राज्य सरकार यह चाहती है कि वह सदैव ही मुख्यमंत्री और मन्त्रि-परिषद् की इच्छाओं के अनुसार कार्य करे। जब केन्द्र में किसी अन्य दल का शासन हो और राज्य में कोई अन्य दल शासन चला रहा हो तो राज्यपाल की स्थिति कठिनाई वाली और जटिल बन जाती है। राज्यपाल के पद का 1950 से लेकर कार्य-व्यवहार की संक्षिप्त समीक्षा इस बिन्दु को स्पष्ट रूप में प्रकट कर देता है:

राज्यपाल के पद का 1950 से लेकर अब तक का कार्य-व्यवहार (Working of the Office of Governor since 1950) : संविधान के लागू होने के प्रथम 15 वर्षों में, जबकि कांग्रेस केन्द्र और लगभग सभी राज्यों में सत्ता में थी, राज्यपालों की स्थिति, भूमिका और कार्य-व्यवहार से संबंधित कभी कोई विशेष विवाद नहीं

नोट

पैदा हुआ था। सन् 1964 तक पंडित नेहरू की प्रधानमंत्री के रूप में विद्यमानता, कांग्रेस की एकाधिकार वाली स्थिति और भूमिका, स्वतंत्रता के संग्राम के महत्वपूर्ण नेताओं की राज्यपालों के रूप में नियुक्ति और भारत के संघीय ढांचे में राजनीतिक एकात्मकता (केन्द्र और राज्यों में एक ही दल की सरकार) के अस्तित्व के कारण राज्यपाल की भूमिका से संबंधित विवाद पैदा होने की कम ही संभावना थी। यह चौथे आम चुनावों (1967), जबकि कुछ राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें अस्तित्व में आईं, और कांग्रेस को केन्द्र में धक्का लगा, के पश्चात् ही राज्यपाल की भूमिका सार्वजनिक चर्चा का विषय और विवाद का विषय बना और राज्यपाल का पद अधिक-से-अधिक दबाव और बोझ वाला बनता गया, जिसके बारे में संविधान निर्माताओं ने कभी सोचा भी नहीं था। 1967 के चुनावों ने, जैसा कि एच० एम० सीरावाय कहते हैं, ने तीन प्रकार की स्थितियां पैदा कीं:

(1) कांग्रेस पार्टी बहुमत प्राप्त कर गई और इसको आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और मैसूर (अब कर्नाटक) में सरकार बनाने का निमंत्रण दिया गया।

(2) जबकि मद्रास (चेन्नई) (जिसको अब तमिलनाडू कहा जाता है) में डी० एम० के० और केरल में वामपंथी दलों का गठबन्धन सत्ता में आया।

(3) कुछ अन्य राज्यों में कोई भी एक दल बहुमत की स्थिति में नहीं था और यह समस्या बड़ी संख्या में स्वतंत्र सदस्यों की अस्तित्व और परिणाम के रूप में दलबदलियों और दलबदली की राजनीति के कारण और जटिल हो गई।

ऐसी स्थिति में राज्यपाल की भूमिका पर भारी दबाव पड़ गया और यह बात इससे सिद्ध हो गई जब एक जैसी स्थिति में अलग-अलग राज्यपालों ने अलग-अलग निर्णय किए। कांग्रेस शासित राज्यों के राज्यपालों का व्यवहार उन राज्यों के राज्यपालों के व्यवहार से अलग था जिनमें दूसरे राजनीतिक दलों की साझी सरकारें सत्ता में थीं। चौथे आम चुनावों के पश्चात् अपनी दोहरी भूमिका (केन्द्र के एजेंट के रूप में और राज्य प्रशासन के मुखिया के रूप में) के कारण राज्यपाल का पद एक विवादपूर्ण पद बन गया। कई प्रान्तों के राज्यपालों ने अपने-अपने राज्य में राज्य सरकार के गठन के संबंध में अलग-अलग तरह के कार्य किया। उन्होंने अनुच्छेद 365 के अधीन भी अलग-अलग प्रकार के निर्णय लिए। कहीं तो राज्य सरकार के साथ-साथे राज्य विधान सभाओं को भंग कर दिया गया और कहीं राज्य-विधानसभा को स्थगित ही किया गया। यह समझा गया कि राज्यपालों ने उस समय की संघीय सरकार (श्रीमती इंदिरा गाँधी की कांग्रेस सरकार) के इशारों पर ही अलग-अलग निर्णय लिए थे। इसी कारण 1967 से 1971 के दौरान राज्यपाल का पद काफी विवादपूर्ण पद बन गया।

प्रथम ऐसे राज्यपाल थे राजस्थान के श्री संपूर्णानंद। 1967 के चुनावों में कांग्रेस अपना बहुमत के स्तर गंवा बैठी परन्तु राज्य विधानसभा में सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। श्री एम० एल० सिंह के नेतृत्व में विरोधी दलों का गठबन्धन बना और उन्होंने बहुमत प्राप्त कर लिया। इसका राष्ट्रपति एस० राधाकृष्णन के आगे प्रदर्शन भी किया गया। परन्तु राज्यपाल संपूर्णानंद ने अनोखा निर्णय लिया कि वह स्वतंत्र विधायकों को मान्यता नहीं देते। क्योंकि कांग्रेस के नेता मोहन लाल सुखाडिया ने सरकार बनाने में असमर्थता प्रकट की थी, राज्यपाल ने राज्य में राष्ट्रपति राज्य लागू करने की सिफारिश कर दी, जोकि मार्च 1967 में लागू हो गया, परन्तु यह केवल एक महीना ही लागू रहा। इस एक महीने के दौरान श्री सुखाडिया 'दलबदलियों' के द्वारा अपनी अल्पसंख्या को बहुमत में बदलने की स्थिति में पहुँच गए। इसके पश्चात् राज्यपाल ने राज्य में से राष्ट्रपति राज्य समाप्त करने की सिफारिश की और इससे सुखाडिया के नेतृत्व में राज्य में कांग्रेस सरकार स्थापित करने के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। राज्यपाल का ऐसा व्यवहार सचमुच ही अनैतिक और पक्षपाती था और इसी कारण कांग्रेस विरोधी और राज्यपाल विरोधी प्रदर्शन भी हुए थे।

केन्द्र का पक्ष पूर्ण करने वाला दूसरा राज्यपाल पश्चिमी बंगाल का श्री धर्मवीर बना। 1968 में उसने अजय मुखर्जी के नेतृत्व वाली संयुक्त वामपंथी सरकार को भंग कर दिया, यद्यपि यह बहुमत में थी। इस कार्यवाही का उद्देश्य "राज्यों में साम्यवादियों की प्रभुता वाली सरकार को हटाना था जिसको कि केन्द्र पसंद नहीं करता था।"

नोट

जनवरी 1971 में उड़ीसा के राज्यपाल एस० एस० अंसारी ने केन्द्र का पक्ष पूर्ण करने से हिचकिचाहट न की। जब सिंह देव मन्त्रिपरिषद् ने त्याग-पत्र दे दिया और राज्य विधानसभा भंग करने की सिफारिश की, उसने त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया परन्तु मुख्यमन्त्री को निगरानी मुख्यमन्त्री बने रहने के लिए न कहा। प्रशासन दो दिन तक शून्यता में रहा। राज्य विधानसभा को स्थगित स्थिति में रखा गया। श्री अंसारी ने वैकल्पिक सरकार की संभावनाओं का पता लगाया परन्तु असफल रहे और उन्होंने 20 जनवरी 1971 को राज्य विधानसभा भंग करने की सिफारिश कर दी।

17 फरवरी 1970 को भारतीय क्रान्ति दल के नेता चौधरी चरण सिंह ने यू० पी० में कांग्रेस की भागीदारी से सरकार स्थापित की। परन्तु 26 सितम्बर को मुख्यमन्त्री चौधरी चरण सिंह ने राज्यपाल के पास कांग्रेस पार्टी से संबंधित 26 मन्त्रियों को पद से हटाने की सिफारिश की। इसके विपरीत राज्यपाल ने चौधरी चरण सिंह को त्याग-पत्र देने के लिए कह दिया। जब उन्होंने त्याग-पत्र देने से इनकार कर दिया तो राज्यपाल ने सरकार भंग कर दी, यद्यपि एक तथ्य है कि मुख्यमन्त्री चौधरी चरण सिंह ने राज्य विधानसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने की पेशकश की थी जिसका अधिवेशन 6 अक्टूबर, 1970 को होने वाला था। राज्य में राष्ट्रपति राज्य लागू कर दिया गया और वह भी केवल 16 दिन के लिए जिसके पश्चात् कांग्रेस के नेता श्री कमलापति त्रिपाठी को राज्य का मुख्यमन्त्री नियुक्त कर दिया गया। इस संबंध में राज्यपाल की भूमिका की भारी आलोचना हुई।

1967 में पंजाब के मुख्यमन्त्री जस्टिस गुरनाम सिंह ने राज्य विधानसभा भंग करने की सिफारिश की। राज्यपाल ने यह सिफारिश स्वीकार न की। परन्तु बाद में जब मुख्यमन्त्री लक्ष्मण सिंह गिल, जोकि एक अल्पसंख्यक सरकार का नेतृत्व करते थे, ने राज्य विधानसभा भंग करने की सिफारिश की, तो राज्यपाल ने यह सिफारिश मान ली।

इस प्रकार 1967-71 के दौरान राज्यपाल का व्यवहार बहुत आलोचना का विषय बना रहा। एक राज्य के राज्यपाल की वास्तविक भूमिका के बारे में चर्चा और विवाद बढ़ता ही गया। 1972 के आम चुनावों के पश्चात् अधिकतर राज्यों में और केन्द्र में कांग्रेस की सरकारें पुनः अस्तित्व में आने के कारण देश का राजनीतिक वातावरण बदल गया जिसने राज्यपाल की भूमिका में परिवर्तन किया। इसके बावजूद बहुत से राज्यपालों के द्वारा बहुत-से विवादग्रस्त निर्णय लेने के कारण राज्यपाल की भूमिका के बारे में बहस निरन्तर जारी रही।

क्या आप जानते हैं: मार्च, 1973 में, उड़ीसा के राज्यपाल श्री बी० डी० जती के द्वारा श्री बीजू पटनायक को सरकार बनाने का अवसर देने की अपेक्षा राज्य विधानसभा भंग कर देने के कारण उनकी बहुत अधिक आलोचना हुई।

दिसम्बर, 1981 में केरल के राज्यपाल ने कांग्रेस के नेता के० करुणाकरन को राज्य का मुख्यमन्त्री नियुक्त कर दिया और राज्य में साझे लोकतन्त्रीय मोर्चे की अल्प-संख्यक सरकार संगठित कर दी। इस निर्णय के विरुद्ध जोरदार रोष प्रकट किया गया। जब स्पीकर के निर्णायक वोट डालने के अधिकार का प्रयोग करने से भी सरकार बच न सकी तो राज्यपाल ने विरोधी पक्ष को सरकार बनाने का अवसर न दिया। इसकी सभी विरोधी दलों ने कड़ी आलोचना की। 1982 में असम के राज्यपाल ने श्री गोगोई को मुख्यमन्त्री नियुक्त कर दिया जिसको बहुमत का विश्वास प्राप्त नहीं था। उसने विरोधी पक्ष का दावा स्वीकार न किया कि उनको 64 विधायकों का समर्थन प्राप्त था जबकि श्री गोगोई को 48 विधायकों का ही समर्थन प्राप्त था। गोगोई मन्त्रिमण्डल सत्ता में टिक न सका और इसको विरोधी पक्ष का सामना करने के बिना ही त्याग-पत्र देना पड़ा। वाम लोकतन्त्रीय मोर्चे ने गैर-संवैधानिक ढंग से एक दल का एजेंट बनकर कार्य करने के लिए राज्यपाल की कठोर निंदा की।

1982 में, हरियाणा के राज्यपाल जी० डी० तपासे ने पक्षपाती ढंग से कार्य करते हुए पहले तो लोक दल के नेता श्री देवी लाल, जिनको भाजपा का समर्थन प्राप्त था, को 24 मई, 1982 को अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए अपने समर्थक विधायक अपने सामने प्रस्तुत करने के लिए कहा। परन्तु फिर 23 मई, 1982 को उन्होंने राज्य विधानसभा में सबसे बड़े दल के रूप में उभरी कांग्रेस के नेता श्री भजन लाल के दावे को स्वीकार करते हुए उसको

नोट

सरकार बनाने का निमन्त्रण दे दिया। चाहे कि श्री भजन लाल को अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए 30 दिन का समय दिया गया परन्तु श्री देवी लाल को निर्धारित समय में अपना बहुमत सिद्ध करने का अवसर न देने के कारण राज्यपाल का व्यवहार विवादपूर्ण बन गया।

1983 में कर्नाटक और सिक्किम के राज्यपालों के व्यवहार से उनकी पक्षपाती और विवादपूर्ण भूमिका की झलक मिली। अगस्त 1984 में आंध्र प्रदेश के राज्यपाल श्री राम लाल ने मुख्यमंत्री श्री एन० टी० रामा राव को सदन में अपना बहुमत सिद्ध करने का अवसर देने के बिना ही पद से हटा दिया उन्होंने श्री भास्कर राव को मुख्यमंत्री बना दिया। राज्यपाल के इस व्यवहार के कारण इतना शोर-शराबा हुआ कि राष्ट्रपति को राज्यपाल का हस्तांतरण करके उसके स्थान पर डॉ० शंकर दयाल शर्मा को राज्यपाल नियुक्त करना पड़ा। जिन्होंने श्री एन० टी० रामा राव की सरकार पुनः स्थापित कर दी। अप्रैल, 1989 में कर्नाटक के राज्यपाल ने श्री एस० आर० बोमई की सरकार को बहुमत सिद्ध करने का उचित अवसर देने के बिना ही भंग कर दिया परन्तु साथ ही राज्य विधानसभा भंग कर दी।

इससे भी अधिक 1971-2011 के दौरान कुछ राज्यपाल तो थोक में राज्य सरकारें भंग करने के कारण केन्द्र के मोहरे बनकर ही रह गए। केन्द्र सरकार ने अपनी इच्छानुसार राज्यपालों की नियुक्ति की, उनको हटाया, बदला और उनका हस्तांतरण किया। राज्यपाल का पद किसी न किसी वाद-विवाद का कारण बना रहा। 1967 से लेकर निरन्तर चले आते वाद-विवाद कारण, यह मांग पकड़ गई कि राज्यपाल का पद समाप्त किया जाए या राज्यपाल को उचित दिशा-निर्देश (एक संहिता) दिए जाने या राज्यपाल को हटाने के ढंग को बदला जाए (ताकि उसको केन्द्र से स्वतन्त्र बनाया जा सके) या अन्य सुधार किए जाएँ। वास्तव में गवर्नर का पद अभी भी एक विवाद का केन्द्र बना हुआ है। 1998-99 के दौरान बिहार के गवर्नर श्री सुन्दर सिंह भण्डारी का व्यवहार विवादपूर्ण बना रहा। उससे पहले 1996-97 के दौरान यू. पी. के गवर्नर श्री रमेश भण्डारी का पद एक बड़े विवाद का कारण बना रहा। 1999 में पश्चिमी बंगाल के नए गवर्नर की नियुक्ति के समय भी एक विवाद खड़ा हो गया। मई 2004 में बिहार के गवर्नर बृता सिंह ने एन.डी.ए. के नीतीश कुमार की सरकार बनाने का अवसर दिए बिना बिहार विधानसभा को रातों-रात भंग कर दिया। निश्चय ही उनका व्यवहार वस्तुनिष्ठ न था। कर्नाटक के राज्य पाल हंस राज भारद्वाज पर भी दलगत भावना से प्रेरित होकर काम करने के आरोप लगे। गुजरात की वर्तमान राज्य पाल कमला बैनी वाल के द्वारा लोक युक्त की नियुक्ति भी विवाद का कारण बनी। ये सभी तत्त्व स्पष्ट करते हैं कि भारतीय राजनीतिक प्रणाली में गवर्नर का पद एक विवादपूर्ण पद रहा है। इस विवाद के पीछे मुख्य कारण यह रहा है कि राज्यपाल को एक दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है—राज्य में केन्द्र के एजेन्ट के रूप में और प्रांत के कार्यपालिक मुखिया के रूप में। इसका एक अन्य प्रमुख कारण यह भी है कि केन्द्रीय सरकार अपने समर्थक राजनीतिक नेताओं की नीति पर चलती रही है। केन्द्र में सरकार परिवर्तन के पश्चात् राज्यपालों को हटाने/परिवर्तन करने की प्रक्रिया यह स्पष्ट दिखलाती है कि राज्यपाल के पद को एक राजनीतिक स्वरूप प्राप्त हो चुका है तथा राज्यपाल अपने उच्च पद पर आसीन होने के बावजूद राजनीति में शामिल रहते हैं तथा केन्द्र सरकार राज्यपालों में राजनीतिक भूमिका की आशा भी करती है। बहुत बार राज्यपाल इन दोनों भूमिकाओं को निभाते समय एक सन्तुलन बनाने में असमर्थ रहता है और इसी कारण उसका पद विवादपूर्ण पद बन गया है। आज भी गवर्नर के पद के सम्बन्ध में कई एक सुधारों की मांग की जा रही है क्योंकि यह आवश्यक समझा जाता है कि गवर्नर के पद को विवाद रहित बनाया जाए। राज्यपालों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अब एक निर्णय यह लिया गया है कि किसी राज्य का राज्यपाल नियुक्त करते समय संघ सरकार सम्बन्धित राज्य को सरकार के परामर्श पर सदैव ध्यान देगी।

राज्यपाल की भूमिका के बारे राजामन्नार समिति की रिपोर्ट

(Role of Governor : Report of Rajamannar Committee)

राजामन्नार समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि राष्ट्रपति को चाहिए कि वह राज्यपाल को निर्देश जारी करे जिनके द्वारा राज्यपाल को वह दिशा-निर्देश या सिद्धान्त दिए जाएँ जिनके अनुसार राज्यपाल अपने स्व-विवेक के अधिकारों का प्रयोग करते समय अपने सभी कार्य अच्छी तरह और निरपेक्षता से निभाए। इससे आगे, रिपोर्ट में कहा गया कि दिशा-निर्देशों में इन बातों का विशेष रूप में वर्णन होना चाहिए कि—

(क) राज्यपाल को उस नेता को ही मुख्यमंत्री नियुक्त करना चाहिए जो राज्य विधानसभा में पूर्ण बहुमत वाले दल का नेता हो।

(ख) जब राज्यपाल को इस बात का विश्वास हो कि राज्य विधानसभा में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं, इसको अपने-आप विधानसभा का अधिवेशन बुलाना चाहिए जोकि मुख्यमंत्री का चुनाव और इस प्रकार चुने गए व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाना चाहिए।

(ग) मुख्यमंत्री के द्वारा किसी भी मन्त्री को पद से हटाने की सिफारिश राज्यपाल के द्वारा स्वीकार की जानी चाहिए।

(घ) जब राज्यपाल को किसी भी समय पैसा लगे कि मुख्यमंत्री विधानसभा के सदस्यों के बहुमत का विश्वास गंवा चुका है तो राज्यपाल को तुरंत अपने रूप में विधानसभा का अधिवेशन बुलाना चाहिए और मुख्यमंत्री को निर्देश देना चाहिए कि वह विधानसभा में विश्वास का मत प्राप्त करे।

(ङ) यदि मुख्यमंत्री विश्वास का प्रस्ताव पास करवाने में असफल हो जाता है तो राज्यपाल को चाहिए कि वह मुख्यमंत्री और उसके नेतृत्व वाली मन्त्रि-परिषद् को भंग कर दे। परन्तु वे सिफारिशें स्वीकार नहीं की गईं।

कुछ सुझाव (Some Suggestions)

राज्यपाल के पद से सम्बन्धित संवैधानिक व्यवस्थाओं में संशोधन के लिए कई अन्य सुझाव दिए जा सकते हैं जैसे—

(i) राजनीति से संन्यास ले चुके नेताओं, सक्रिय राजनेताओं, भूतपूर्व मन्त्रियों, भूतपूर्व मुख्यमन्त्रियों, सेवानिवृत्त हुए विवादों से घिरे रहे सरकारी अफसरों और जो व्यक्ति संसदीय प्रणाली के नियमों और कानूनों के बारे में अनजान हों, को राज्यपाल के पद पर नियुक्त कभी नहीं किया जाना चाहिए। राज्यपाल की नियुक्ति समाज सेवकों, कानून-शास्त्रियों, बुद्धिजीवियों, राजनीति सूझ-बूझ वाले व्यक्तियों, वकीलों, सेवा मुक्त सैन्य अधिकारियों आदि में की जानी चाहिए।

(ii) संघ के नियन्त्रण से राज्यपालों को मुक्त करने के लिए राज्यपाल के पद की अवधि राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर रहने के स्थान पर या तो उसके पद की अवधि निश्चित समय के लिए कर देनी चाहिए या उसको हटाने के लिए महाभियोग प्रणाली लाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(iii) राज्यपाल को अपने स्व-विवेक अधिकारों का प्रयोग राज्य प्रशासन की कार्यकुशलता के हित में और लोकतन्त्रीय परम्पराओं के अनुसार वस्तुनिष्ठ रूप में करना चाहिए।

(iv) एक राज्यपाल को 'केन्द्रीय रेखा' के अनुसार चलने से इन्कार कर देना चाहिए और सदैव संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार कार्य करना चाहिए।

(v) संघ सरकार को राज्यपालों को अपमानजनक ढंग से पद से हटाने की कार्यवाही से संकोच करना चाहिए। इसको राज्यपालों को राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग करने से दूर रहना चाहिए। राज्य सरकार के प्रशासन में राज्यपालों के पद को प्रयोग करके केन्द्र के हस्तक्षेप का सदैव ही विपरीत प्रभाव होता है। इन हस्तक्षेपों ने क्षेत्रीय दलों के उभरने तथा क्षेत्रवाद को उभरने में सहायता की है।

(vi) राज्य सरकारों के विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग कठिन बनाया जाना चाहिए। इससे राज्यों में केन्द्र के हस्तक्षेप के अवसर कम हो जाएंगे परन्तु साथ ही राज्यपाल के स्व-विवेक अधिकारों के प्रयोग के अवसर भी कम किए जाने चाहिए।

(vii) सामान्य रूप में राज्य की कार्यपालिका (सरकार) का संवैधानिक और नाम-मात्र का मुखिया होने के कारण राज्यपाल को राज्य के मुख्यमन्त्री के परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिए।

(viii) संघ राज्य संबंधों के क्षेत्र में राज्यपाल को राज्य का मुखिया होने के नाते अधिक-से-अधिक संभव सीमा तक राज्य के हित सुरक्षित करने चाहिए और राज्य में केन्द्र के एजेंट के रूप में कार्य करने से संकोच करना चाहिए।

नोट

(ix) केन्द्र में सरकार बदलने के साथ ही राज्यपालों के बदलने के व्यवहार के कारण इस पद पर एक विशेष प्रकार का पक्षपाती सा प्रभाव पड़ा है और इससे राज्यपालों के केन्द्र में राजनीतिक ढांचे के एक भाग का स्वरूप मिला। इससे राज्यपाल के पद का स्तर कम हुआ है और इसका राजनीतिकरण हो गया है। इस कारण ऐसी एक नीति अथवा व्यवहार को एकदम रोक देना चाहिए। राष्ट्रपति को इस संबंध में अपने पद की गरिमा के आधार पर कार्य करना चाहिए और संघीय मन्त्रिपरिषद् को ऐसा न करने का परामर्श और निर्देश देना चाहिए।

(x) संविधान के अनुच्छेद 200 और 201 जो राज्यपाल को राज्य के कुछ प्रकार के बिलों को राष्ट्रपति की सहमति के लिए सुरक्षित करने का अधिकार देते हैं, केन्द्र राज्य टकराव और राज्यपाल के पद को विवादग्रस्त बनाने का स्रोत रहे हैं। इसलिए इनको समाप्त कर देना चाहिए।

(xi) सेवा-निवृत्त राज्यपालों के सक्रिय राजनीति में पुनः शामिल होने के व्यवहार पर संवैधानिक प्रतिबन्ध लगाना चाहिए। किसी भी सेवा-निवृत्त राज्यपाल को कोई राजनीतिक पद नहीं दिया जाना चाहिए।

यह सुझाव और कम-से-कम इनमें से कुछ सुझाव राज्यपाल के पद को उन विवादों और टकरावों से मुक्त करने का सामर्थ्य रखते हैं जोकि पिछले लगभग छः दशकों से इस पद से जुड़े चले आ रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इनकी आवश्यकता और लाभ का विश्लेषण लिया जाए। इस दौरान प्रत्येक राज्यपाल को स्वयं इनमें से कुछ सुझावों और उन सिद्धान्तों के रूप में व्यवहार आरंभ कर देना चाहिए जिनके आधार पर उनको केन्द्र और राज्यों के बीच सम्पर्क सूत्र (राज्य में केन्द्र के एजेंट के रूप में नहीं) के रूप में और राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में अपने निर्णय स्वयं लेने चाहिए तथा संविधान द्वारा स्थापित संसदीय स्वरूप की सरकार के नियमों और परम्पराओं के अनुसार कार्य करना चाहिए।

राज्यपाल के पद के संबंध में सभी राज्यों के राज्यपालों को मिलकर एक व्यवहार-संहिता अपनानी चाहिए और इसके अनुसार कार्य करना चाहिए। राज्यपाल का पद एक गौरवशाली और सम्मानजनक पद है और प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को अपने-आप संविधान के द्वारा निर्धारित व्यवहार के अनुसार निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ रूप में कार्य करने के लिए आगे आना चाहिए। उनको राजनीति से ऊपर उठकर अपने निर्णय लेने चाहिए। ऐसा करके वह भारतीय संसदीय लोकतंत्र और संघात्मक व्यवस्था को और सफल बनाने में बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। अब औपचारिक रूप में यह निर्णय किया गया है कि केन्द्र सरकार किसी राज्य के राज्यपाला की नियुक्ति करते समय संबंधित राज्य के मुख्य-मन्त्री और मन्त्रि-परिषद् के परामर्श के अनुसार निर्णय लेने के प्रत्येक संभव प्रयास करेगी और केन्द्र के लिए ऐसा परामर्श लेना अनिवार्य होगा। इस निर्णय से राज्यपाल के पद के संबंध में राज्य सरकार का विश्वास बढ़ेगा और गवर्नर के पद के सम्मान में वृद्धि होगी। सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि राज्यपालों को स्वयं आगे आकर अपने पद के उच्च सम्मान को बनाए रखना चाहिए और कोई भी निर्णय किसी भी राजनीतिक पक्ष से प्रभावित होकर नहीं करना चाहिए। प्रत्येक निर्णय संबंधित राज्य के हित और भारतीय संघ के समुचित हित को सामने रख कर वस्तुनिष्ठ ढंग से किया जाना चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

4. 'प्रत्येक राज्य का एक राज्यपाल होगा', यह व्यवस्था संविधान के किस अनुच्छेद के द्वारा की गई है?
(a) अनुच्छेद 152 (b) अनुच्छेद 153
(c) अनुच्छेद 154 (d) अनुच्छेद 159
5. मुख्यमंत्री की नियुक्ति कौन करता है?
(a) राज्य पाल (b) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश
(c) न तो (a) न (b) (d) उपरोक्त में से कोई नहीं

6. राज्यपाल को उस नेता को ही मुख्यमंत्री नियुक्त करना चाहिए—
- | | |
|------------------------------------|---------------------------------|
| (a) जिसके पास सबके ज्यादा सीटे हों | (b) जिसने बहुमत प्राप्त किया हो |
| (c) जिसके पास सबसे कम सीटे हों | (d) उपरोक्त में कोई नहीं। |

7.6 राज्य मन्त्रि-परिषद् (State Council of Ministers)

भारत का संविधान राज्य स्तर पर भी संसदीय स्वरूप की सरकार संगठित करने की व्यवस्था करता है। वह यह व्यवस्था करता है कि राज्य का राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का संवैधानिक और नाममात्र का मुखिया होगा और वास्तविक कार्यपालिक शक्तियों का प्रयोग मुख्यमंत्री के नेतृत्व में राज्य मन्त्रि-परिषद् करेगी। अनुच्छेद 163 के अनुसार, भारत का संविधान प्रत्येक राज्य के लिए एक मन्त्रि-परिषद् की व्यवस्था करता है। यह कहता है, “राज्यपाल की स्व-विवेक शक्तियों को छोड़कर शेष सभी शक्तियों के प्रयोग के संबंध में राज्यपाल के परामर्श और सहायता करने के लिए मुख्यमंत्री के नेतृत्व में एक मन्त्रि-परिषद् होगी।” सामान्यतः राज्यपाल अपने सभी कार्य राज्य मन्त्रि-परिषद् वास्तव में मुख्यमंत्री के परामर्श से करता है।

संगठन (Organisation)

1. **राज्य की मन्त्रि-परिषद् की रचना (Formation of a State Council of Ministers)**—राज्य स्तर पर मन्त्रि-परिषद् का निर्माण संघीय मन्त्रि-परिषद् के समान ही किया जाता है। साधारण चुनावों के पश्चात् जो दल राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त कर लेता है, वह अपना नेता चुनता है। इस पर राज्यपाल उसको मुख्यमंत्री नियुक्त करता है जो अपने मन्त्रियों की सूची तैयार करता है और ऐसी सूची राज्यपाल को दे देता है। फिर राज्यपाल उनको औपचारिक रूप में मन्त्री नियुक्ते कर देता है। सामान्य रूप में मन्त्रिपरिषद् के सभी मन्त्री राज्य विधानपालिका के सदस्य ही होते हैं तथा बहुमत प्राप्त दल अथवा गठबन्धन के दो सदस्य होते हैं। परन्तु अपने मन्त्रियों की टीम तैयार करते समय मुख्यमंत्री उस व्यक्ति को भी मन्त्री बनाने कानिर्णय कर सकता है जो राज्य विधानसभा का सदस्य नहीं भी होता। परन्तु ऐसे व्यक्ति को अपने मन्त्री के रूप में नियुक्ति से 6 महीनों के भीतर राज्य विधानसभा का सदस्य बनना पड़ता है। यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो उसको अपने मन्त्री के पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है। कुछ समय के पश्चात् उसको पुनः मन्त्री नियुक्त किया जा सकता है, परन्तु ऐसा बहुत कम किया जाता है क्योंकि इसको एक अलोकतन्त्रीय और घटिया बात समझा जाता है। यहां तक कि एक बाहरी व्यक्ति, अर्थात् वह व्यक्ति जो राज्य विधानसभा का सदस्य नहीं, को मुख्यमंत्री भी नियुक्त किया जा सकता है बशर्ते कि वह राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त करने वाले दल या समूह को नेता चुना गया हो। ऐसा ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर जोकि उस समय संसद के सदस्य थे, के मुद्दे में घटित हुआ जब उनको नवम्बर, 1966 में पंजाब का मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया था। इसी प्रकार शेख अब्दुल्ला को एक बार राज्य विधानसभा का सदस्य न होने के बावजूद जम्मू और कश्मीर का नियुक्त किया गया था। श्री एन० डी० तिवारी, इसी प्रकार 1987 में यू० पी० के मुख्यमंत्री बने थे। परन्तु ऐसे मुख्यमंत्री को 6 माह के अंदर-अंदर राज्य विधानसभा या राज्य विधान परिषद् की सदस्यता प्राप्त करनी पड़ती है। अगर वह ऐसा नहीं कर पाता तो उसे मुख्यमंत्री पद से एकदम त्याग-पत्र देना पड़ता है।

सामान्य रूप में मुख्यमंत्री राज्य विधानसभा में से बनाया जाता है चाहे कि ऐसी कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है। मुख्यमंत्री और उसकी मन्त्रि-परिषद् के संगठन के समय तब कुछ कठिनाई पेश नहीं आती है जब राज्य विधानसभा के चुनावों में किसी भी एक दल या गठबन्धन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है। परन्तु राज्य विधानसभा के चुनावों में किसी भी एक दल को बहुमत प्राप्त न होने की परिस्थिति में राज्यपाल अपनी स्वैच्छिक शक्ति का प्रयोग कर सकता है और उस दल के किसी भी नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है जिसके बारे में समझा जाता हो कि वह विधानसभा में बहुमत प्राप्त करने के समर्थ होगा। सामान्य रूप में राज्यपाल ऐसे ढंग से नियुक्त किए गए मुख्यमंत्री को एक निर्धारित समय अंदर जैसा कि एक महीने या 15 दिन में, अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहता है। जून, 1995 में सुश्री मायावती के नेतृत्व में बी० एस० पी० सरकार ने मुलायम सिंह यादव की

नोट

बसपा-सपा गठबन्धन की सरकार के स्थान पर सत्ता प्राप्त कर ली। सुश्री मायावती की सरकार के अस्तित्व में आने का कारण भाजपा के द्वारा बाहर रह कर इसका समर्थन करने का निर्णय लेना था। बाद में सुश्री मायावती ने यू० पी० विधानसभा के अधिवेशन में अपना बहुमत सिद्ध कर दिया और इस प्रकार अपनी सरकार को वैधता प्रदान कर ली। सामान्य रूप में ऐसा ही होता है। ऐसी स्थिति में दो या इससे अधिक समूह गठबन्धन कर लेते हैं, जिसका सामान्य रूप में साझा मोर्चा कहा जाता है, और अपना नेता चुन लेते हैं और इसकी सूचना राज्यपाल को दे दी जाती है कि इस समूह का या तो बहुमत का समर्थन विधानसभा में प्राप्त हो गया है या फिर विधानसभा के कुछ राजनीतिक दलों, समूहों या सदस्यों ने इस साझे समूह को समर्थन देने का निर्णय कर लिया है। इस स्थिति में इस समूह के नेता को राज्यपाल के द्वारा मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया जाता है। मई 2002 में यू० पी० में बी० एस० पी०-बी० जे० पी० गठबंधन की नेता सुश्री मायावती को मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया और उसको यू० पी० विधानसभा में बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा गया। सुश्री मायावती के नेतृत्व वाली साझी सरकार ने यह शर्त पूरी कर दी और उसकी सरकार विधिवत् रूप में सत्ताधारी सरकार बनी। आजकल सामान्य रूप में बार-बार अलग-अलग राज्यों में इसी ढंग से मुख्य-मंत्रियों की नियुक्ति हो रही है। मई 2004 को कर्नाटक में कांग्रेस तथा जनता दल (एस) के बीच गठबन्धन होने के पश्चात् ही राज्य सरकार को संगठित किया जा सका। नियम तो यह है कि जिस दल को बहुमत प्राप्त हो उसके नेता को मुख्य मंत्री नियुक्त कर दिया जाता है। परन्तु जब किसी दल को बहुमत प्राप्त न हो तो किसी ऐसे दल या समूह के नेता को मुख्य-मंत्री नियुक्त कर दिया जाता है जोकि विधानसभा में बहुमत सिद्ध करने के योग्य समझा जाता है। राज्यपाल ऐसे मुख्यमंत्री इस शर्त को पूरा करने के पश्चात् ही अपने पद पर बना रहता है और राज्य में अपने द्वारा गठित सरकार को चला सकता है। यदि कोई भी दल सरकार न बना सके तो गवर्नर अनुच्छेद 356 के अधीन संकट काल की घोषणा करके राज्य में राष्ट्रपति राज्य लागू करवा देता है। फरवरी 2005 में बिहार में ऐसा ही हुआ।

राज्य में मन्त्रिपरिषद् का गठन मुख्यमंत्री की नियुक्ति से आरंभ होता है और सरकार बनाना मुख्य-मंत्री का ही उत्तरदायित्व होता है। मुख्यमंत्री अपनी सोच और समझ के साथ मन्त्रि-परिषद् का गठन करता है। यदि वह एक साझे मोर्चे की सरकार का मुख्यमंत्री हो तो उसको साझे मोर्चे के अलग-अलग घटकों के नेताओं के मन्त्रि-परिषद् में शामिल करना पड़ता है परन्तु यदि मुख्य-मंत्री के पास विधानसभा में स्पष्ट बहुमत हो तो वह अपने राजनीतिक दल के नेताओं में से ही मन्त्री नियुक्त करता है। वह किसी ऐसे व्यक्ति को भी मन्त्री नियुक्त कर सकता है जोकि राज्य विधानपालिका का सदस्य नहीं होता परन्तु ऐसे मन्त्री को 6 महीने के भीतर राज्य विधानपालिका की सदस्यता प्राप्त करनी आवश्यक होती है नहीं तो उसको त्याग-पत्र देना पड़ता है। मुख्यमंत्री ही मन्त्रियों में विभागों का बंटवारा करता है और मन्त्रि-परिषद् को स्वरूप प्रदान करता है।

2. **मन्त्रि-परिषद् में मन्त्रियों की श्रेणियां** (Categories of Ministers in the Council of Ministers)—मन्त्रिपरिषद् में मन्त्रियों की निम्नलिखित श्रेणियां होती हैं:

(क) **कैबिनेट मन्त्री** (Cabinet Ministers)—कैबिनेट मन्त्री वे मन्त्री होते हैं जिनको कैबिनेट का दर्जा दिया जाता है। उनके पास वित्त, गृह, शिक्षा आदि जैसे महत्वपूर्ण विभागों का स्वतंत्र चार्ज होता है। वह राज्य की नीतियां निर्धारित करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। उनको मुख्यमंत्री के बहुत निकट सहयोगी समझा जाता है। सामान्य रूप में सत्ताधारी दल के महत्वपूर्ण नेताओं को ही कैबिनेट मन्त्री बनाया जाता है।

(ख) **राज्य मन्त्री** (State Ministers)—इनको मन्त्रि-परिषद् में दूसरा दर्जा मिलता है, यह कैबिनेट बैठकों में शामिल नहीं होते और सामान्य रूप में नीति-निर्माण की प्रक्रिया में भाग नहीं लेते। वे कैबिनेट मन्त्रियों की सहायता करते हैं और उनको कैबिनेट मन्त्रियों के संबंधित विभागों से जोड़ा जाता है। कुछ मुद्दों में उनको कुछ विभागों के स्वतंत्र चार्ज भी दिए जा सकते हैं।

(ग) **उप-मन्त्री** (Deputy Ministers)—यह मन्त्रियों की तीसरी श्रेणी में आते हैं। यह मन्त्रि-परिषद् सीढ़ी का सबसे निम्नतम डंडा होते हैं। उनको किसी भी विभाग का स्वतंत्र चार्ज नहीं दिया जाता। वह मन्त्रियों के सहायक होते हैं। इनको या तो कैबिनेट मन्त्री या राज्य मन्त्री या दोनों से ही उनके विभागों के कार्यों में सहायता देने के लिए जोड़ा जाता है। सामान्य रूप में राज्य मन्त्रि-परिषद् में उप-मन्त्री नहीं नियुक्त किए जाते।

नोट

(घ) **संसदीय सचिव (Parliamentary Secretaries)**—बहुत बार मुख्यमंत्री अपने दल अथवा गठबन्धन के नेताओं को संसदीय सचिव नियुक्त कर देता है। संसदीय सचिव मन्त्रि-परिषद् की राज्य विधानपालिका में सहायता करते हैं। परन्तु आजकल इनकी भूमिका और महत्त्व आगे से अधिक हो गया। दल बदली कानून के अधीन अब यह निर्धारित किया गया है कि राज्य मन्त्रि-परिषद् में मन्त्रियों की अधिक-से-अधिक संख्या, विधानसभा की सदस्यता के 15% से अधिक नहीं हो सकती। इसमें राज्य मन्त्रिपरिषदों का आकार छोटा हो गया है। इस स्थिति में अपने दल के सदस्यों/नेताओं के दबाव (मन्त्री बनाए जाने की इच्छा के दबाव) को कम करने के लिए मुख्यमंत्री ने कई एक सचिवों को नियुक्त करना आरंभ कर दिया है।

3. **कार्यकाल (Tenure)**—सैद्धान्तिक रूप में मन्त्री राज्यपाल की इच्छा तक अपने पद पर बने रहते हैं। वास्तविक व्यवहार में इसका अर्थ यह है कि वे तब तक मन्त्री बने रहते हैं जब तक मुख्यमंत्री चाहता है। मुख्यमंत्री किसी भी मन्त्री को त्याग-पत्र देने के लिए कह सकता है और मुख्यमंत्री की यह इच्छा सदैव ही संबंधित मन्त्री के द्वारा पूर्ण की जाती है। यदि वह विरोध करता है तो मुख्यमंत्री राज्यपाल को उसको पद से हटाने की सिफारिश कर सकता है। राज्यपाल सदैव ही मुख्यमंत्री की सिफारिश स्वीकार कर लेता है। मुख्यमंत्री राज्यपाल को अपने स्वयं का त्याग-पत्र देकर मन्त्रि-परिषद् भंग करने के का के कारण बन सकता है। एक मन्त्री तब तक मन्त्री रह सकता है जब तक कि मुख्यमंत्री उसको रखना चाहता है या फिर जब तक उसको मुख्यमंत्री का विश्वास प्राप्त रहता है। मुख्यमंत्री किसी भी समय किसी भी मन्त्री को मन्त्री परिषद् में से निकाल सकता है। वह मन्त्रियों से त्याग-पत्र की मांग कर सकता है, जोकि मन्त्रियों को देने ही पड़ते हैं। मुख्यमंत्री के विभाग बदल सकता है, कुछ मन्त्रियों को निकाल सकता है तथा नए मन्त्री शामिल कर सकता है।

मन्त्री व्यक्तिगत रूप में राज्य विधानसभा के समक्ष उत्तरदायी होते हैं। यदि विधानसभा किसी मन्त्री, जिसके द्वारा उस विभाग के कार्य-व्यवहार में कोई अपेक्षा की जाती है जिसका कि वह मुखिया है, के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव या अविश्वास प्रस्ताव या कटौती प्रस्ताव पास कर देती है तो मन्त्री को अपने पद से त्याग पत्र देना ही पड़ता है। एक मन्त्री तब तक ही मन्त्री बना रह सकता है जब तक कि राज्य विधानसभा में बहुमत के उस पर विश्वास रहे।

राज्य की मन्त्रि-परिषद् राज्य विधानसभा के समक्ष सामूहिक रूप में उत्तरदायी होती है। यदि विधानसभा मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध या इसके मुखिया मुख्यमंत्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर देती है या सरकार के किसी बिल को रद्द कर देती है या सरकार के बजट पर को रद्द कर देती है या सरकार की किसी नीति को रद्द कर देती है या सरकार की निधियों में कटौती कर देती है, तो संपूर्ण मन्त्रि-परिषद् त्याग-पत्र दे देती है। मन्त्रि-परिषद् तब तक पद पर बनी रहती है, जब तक कि उसको राज्य विधानसभा में बहुमत का विश्वास और समर्थन प्राप्त रहता है। कोई भी मन्त्री किसी भी समय स्वयं त्याग-पत्र दे सकता है।

4. **वेतन और भत्ते (Salary and Allowances)**—मन्त्रियों के वेतन और भत्ते राज्य विधानपालिका के द्वारा निर्धारित किए जाते हैं और इसलिए यह अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग होते हैं। परन्तु इनका वेतन राज्य की संचित निधि से दिया जाता है और इसलिए यह राज्य विधानसभा से पास नहीं करवाने पड़ते।

राज्य मन्त्रि-परिषद् की शक्तियां और कार्य

(Powers and Functions of the State Council of Ministers)

राज्य की मन्त्रि-परिषद् राज्य स्तर पर वास्तविक कार्यपालिका (सरकार) होती है। यह व्यापक और वास्तविक कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करती है। राज्यपाल राज्य का नाम-मात्र का मुखिया होता है। राज्य का प्रशासन मन्त्रि-परिषद् के द्वारा उसके नाम पर चलाया जाता है। उसके सभी कार्यवाही अधिकार, केवल उसके बिना जोकि संविधान ने राज्यपाल को उसके स्व-विवेक के रूप में अधिकार विशेष रूप में दिए हैं, राज्य की मन्त्रि-परिषद् के द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। राज्यपाल सामान्य रूप में मन्त्रि-परिषद्, विशेष रूप में राज्य के मुख्यमंत्री के परामर्श और सिफारिश के अनुसार कार्य करता है।

नोट

राज्य की मन्त्रि-परिषद् की विशिष्ट और प्रमुख शक्तियों और कार्यों का निम्नलिखित शीर्षकों के अनुसार वर्णन किया जा सकता है:

(1) **राज्य नीतियों का निर्माण करना** (Formulation of State Policies)—मन्त्रि-परिषद् का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह राज्य की नीतियों का निर्माण करे और निर्धारण करे। सभी नीतियों और नीति मुद्दों पर इसके द्वारा विचार किया जाता है और निर्णय किए जाते हैं। जबकि सैद्धान्तिक रूप में नीति-निर्माण करना समुची मन्त्रि-परिषद् का कार्य है, परन्तु व्यवहार में केवल कैबिनेट ही इस कार्य को सामूहिक रूप में संपूर्ण करती है। इससे भी अधिक प्रत्येक नीति पर मुख्यमन्त्री के विचारों, सोच और धारणाओं की छाप होती है।

(2) **प्रशासन चलाना** (Running of Administration)—मन्त्रि-परिषद् का दूसरा और सबसे महत्वपूर्ण कार्य राज्य का प्रशासन चलाना है। मन्त्री सरकार की नीतियों और विधानपालिका के द्वारा स्वीकृत नीतियों के अनुसार राज्य का प्रशासन चलाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। उनका यह कर्तव्य होता है कि वह यह देखे और विश्वसनीय बनाए कि राज्य का प्रशासन सरकार की नीतियों के अनुसार चल रहा है। मन्त्रियों के पास एक या एक से अधिक विभाग होते हैं जिन पर उनका नियन्त्रण होता है और प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग/विभागों का प्रशासन उचित ढंग से चलाने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

(3) **तालमेल कार्य** (Co-ordination Functions)—कैबिनेट अलग-अलग सरकारी विभागों के कार्यों में तालमेल विश्वसनीय बनाने के लिए भी उत्तरदायी होती हैं। विभागों में तालमेल के बिना, सरकार स्वाभाविक ढंग से नहीं चलाई जा सकती। कैबिनेट का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह अलग-अलग विभागों में पैदा होने वाले टकरावों और विरोधों को दूर करे। सभी मन्त्री कैबिनेट के निर्णयों को स्वीकार करने के लिए पाबंद होते हैं।

(4) **नियुक्तियां करने का अधिकार** (Appointment-making Powers)—कैबिनेट राज्य में सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियां करती है। एडवोकेट जनरल, राज्य की विश्व-विद्यालयों के उपकुलपतियों या प्रो० उपकुलपतियों, राज्य लोक सेवा आयोग (एस० पी० एस० सी०) के चेयरमैन और सदस्य, अलग-अलग नियमों और बोर्डों के चेयरमैन आदि सभी की नियुक्ति राज्य की मन्त्रि-परिषद् की सिफारिश पर राज्यपाल के द्वारा की जाती है।

(5) **कानून-निर्माण में भूमिका** (Role in Law-Making)—कानून निर्माण करना राज्य की विधानपालिका का कार्य होता है, परन्तु राज्य मन्त्रि-परिषद् भी इस व्यवहार में महत्वपूर्ण और प्रमुख भूमिका अदा करती है। यह मन्त्रि-परिषद् ही होती है जो विधानपालिका के कार्यक्रम का निर्धारण करती है। अधिकतर बिल, लगभग 95% मन्त्रियों के द्वारा राज्य विधानपालिका में प्रस्तुत किए और पास करवाए जाते हैं क्योंकि उसको बहुसंख्या सदस्यों का समर्थन प्राप्त होता है। एक निजी सदस्य बिल के पास होने के अवसर बहुत कम होते हैं, यदि उसकी मन्त्रि-परिषद् का समर्थन प्राप्त न हो। जब राज्य विधानपालिका का अधिवेशन न चल रहा हो तो मन्त्रि-परिषद् राज्यपाल से अध्यादेश जारी करवा कर कानून-निर्माण की अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकता है। ऐसे अध्यादेशों में कानूनी शक्ति होती है और इनको विधानपालिका का अधिवेशन आरंभ होने पर कानून में बदला जा सकता है। इस प्रकार व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए मन्त्रि-परिषद् राज्य की कानून निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। क्योंकि मन्त्रि-परिषद् को विधानसभा में बहुमत प्राप्त होता है इसलिए मन्त्रि-परिषद् की इच्छा के बिना विधानपालिका में कोई भी कानून पास नहीं हो सकता। मन्त्रि-परिषद् के सदस्य अर्थात् मन्त्री भी राज्य विधानपालिका के सदस्य होते हैं और कानून-निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। राज्यपाल मन्त्रि-परिषद् की सिफारिश पर ही किसी बिल पर हस्ताक्षर करता है और उसको कानून का स्वरूप देता है। सामान्य रूप में राज्यपाल मन्त्रि-परिषद् के परामर्श पर ही राज्य विधानपालिका की बैठक बुलाता है, बैठक को स्थगित करता है या राज्य विधानपालिका को भंग करता है।

(6) **वित्तीय कार्य** (Financial Functions)—मन्त्रि-परिषद् राज्य के वित्त पर नियन्त्रण रखती है। वास्तव में कैबिनेट ही राज्य की वित्तीय नीति निर्धारित करती है। कैबिनेट राज्य के विकास की सभी नीतियों और योजनाएँ बनाती और लागू करती है। यह राज्य विधानसभा के द्वारा पास नीतियों और बजट के अनुसार राज्य का वित्तीय प्रबन्ध चलाती है। वित्त मन्त्री, जोकि बजट तैयार करने और पेश करने के लिए उत्तरदायी होता है, कैबिनेट

का सदस्य होता है। राज्य के वित्तीय मुद्दों का निपटारा कैबिनेट के निर्णयों के अनुसार किया जाता है। विधानपालिक में वित्त बिल केवल मन्त्री ही पेश कर सकते हैं। मन्त्रि-परिषद् ही राज्य के बजट के अनुसार वित्तीय प्रशासन चलाती है। सैद्धान्तिक रूप में राज्य के वित्त पर राज्य विधानसभा का नियंत्रण होता है, व्यवहार में मन्त्रि-परिषद् ही राज्य के वित्त पर नियन्त्रण करती है।

मन्त्रि-परिषद् और राज्यपाल : संबंध

(The Council of Ministers and the Governor : Relation)

केन्द्र और राज्य स्तरों पर संसदीय प्रणाली अपनाने के कारण एक राज्य के राज्यपाल और राज्य मन्त्रिपरिषद् के बीच संबंध वैसे ही होते हैं जैसे भारत के राष्ट्रपति और संघीय मन्त्रि-परिषद् के बीच होते हैं। राज्यपाल भी राज्य का नाम-मात्र का कार्यपालिक मुखिया होता है और उसके पास भी नाम-मात्र के कार्यकारी अधिकार होते हैं। दूसरी ओर राज्य की मन्त्रि-परिषद् राज्य की वास्तविक कार्यपालिका होती है राज्यपाल और मन्त्रि-परिषद् राज्य की कार्यपालिका के दो भागीदार होते हैं जहां सभी कार्य राज्यपाल के नाम पर मन्त्रिपरिषद् द्वारा किए जाते हैं। संविधान का अनुच्छेद 163 यह व्यवस्था करता है कि राज्य की मन्त्रि-परिषद् राज्यपाल को उसके कार्य निपटाने के लिए सहायता और परामर्श देगी, सिवा उस स्थिति में जबकि राज्यपाल ने अपनी स्व-विवेक की शक्तियों के अनुसार कार्य करना होता है। शक्तियां राज्यपाल को दी गई हैं, परन्तु इनका प्रयोग वह मन्त्रियों के परामर्श से करता है। मुख्यमन्त्री और अन्य मन्त्री राज्यपाल के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। वह तब तक पद पर रहते हैं जब तक राज्यपाल चाहता है। राज्यपाल को एक मन्त्री व संपूर्ण मन्त्रि-परिषद् को ही भंग करने का अधिकार होता है। सैद्धान्तिक रूप में मन्त्री राज्यपाल के अधीन कार्य करते हैं। सरकार के द्वारा की जाने वाली प्रत्येक कार्यकारी कार्यवाही राज्यपाल के नाम पर की जाती है।

तो भी, राज्य प्रशासन के वास्तविक व्यवहार में इसके विपरीत बात सत्य है—राज्यपाल ही है जो परामर्श देता है और मन्त्रि-परिषद् निर्णय करता है। मुख्यमन्त्री और मन्त्रियों के चयन में राज्यपाल का कोई विशेष हाथ नहीं होता। यदि एक ही दल को विधानसभा में बहुमत प्राप्त हो, तो राज्यपाल को उस दल के नेता को बुलाना और उसको मुख्यमन्त्री नियुक्त करना ही पड़ता है फिर सभी शेष मन्त्री मुख्यमन्त्री के द्वारा चयन किए जाते हैं और राज्यपाल के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। परन्तु किसी भी एक दल के द्वारा बहुमत प्राप्त न करने की परिस्थिति में राज्यपाल अपनी कुछ इच्छा का प्रयोग कर मन्त्रि-परिषद् का गठन कर सकता है या यदि एक सरकार विधानसभा में विश्वास मत प्राप्त करने में असफल रहते हैं तो राज्यपाल अपने स्व-विवेक अधिकार का प्रयोग करते हुए या तो किसी भी अन्य नेता को सरकार बनाने का न्यौता दे सकता है या राज्य विधानसभा भंग कर सकता है।

सामान्य रूप में राज्यपाल सभी मुद्दों पर मन्त्रि-परिषद् की सिफारिश के अनुसार कार्य करता है, सिवा उन शक्तियों के जिनके सम्बन्ध में संविधान ने उसको स्व-विवेक शक्तियाँ दी हैं। राज्य में राज्यपाल की स्थिति केन्द्र में राष्ट्रपति जैसी नहीं है, क्योंकि संविधान ने उसको कुछ स्व-विवेक की शक्तियाँ दी हैं (जैसा कि राज्य सरकार को भंग करना, राज्य विधान सभा को भंग करना और धारा 356 के अधीन मिले अधिकार) इसी कारण ही डी. डी. बसु ने राज्यपाल तथा राज्य मन्त्रि-परिषद् से सम्बन्धों, और इनकी राष्ट्रपति और संघीय मन्त्रि-परिषद् के बीच सम्बन्धों से तुलना करते हुए निष्कर्ष में कहा है कि, “सामान्यतः राज्यपाल और उसके मन्त्रियों के बीच सम्बन्ध वैसे ही होते हैं जैसे राष्ट्रपति और उसके मन्त्रियों के बीच होते हैं, महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि जबकि संविधान ने राष्ट्रपति को कोई स्व-विवेक अधिकार नहीं दिए, राज्यपाल को यह अधिकार देता है कि वह अपने स्व-विवेक अधिकारों का प्रयोग करते हुए कुछ कार्य कर सकता है।”

इससे आगे, संविधान कई ऐसे ढंग प्रदान करता है, जिनसे राज्यपाल राज्य के प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। प्रथम बात तो यह है कि यह मुख्यमंत्री का उत्तरदायित्व होता है कि वह मन्त्रि-परिषद् के निर्णयों के बारे में राज्यपाल को जानकारी दे। दूसरा, राज्यपाल को यह अधिकार होता है कि वह राज्य प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी मुद्दे के बारे में मुख्यमंत्री से जानकारी प्राप्त कर सकता है और मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य होता है कि वह

नोट

समस्त जानकारी राज्यपाल को दे। तीसरा, राज्यपाल को यह भी अधिकार है कि वह एक मन्त्री के द्वारा लिए गए निर्णय को विचार के लिए सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है। वास्तव में राज्यपाल मन्त्रियों को परामर्श, चेतावनी और उत्साह दे सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—मन्त्रि-परिषद् वास्तविक कार्यपालिका होने के कारण राज्य में प्रभावशाली और शक्तिशाली स्थिति रखती है। यह राज्य में सबसे सुदृढ़ और शक्तिशाली संस्था है। वास्तविक रूप में मन्त्रि-परिषद् राज्यपाल को दिए गए सभी अधिकारों का प्रयोग करते हुए राज्य का प्रशासन चलाती है। परन्तु अनुच्छेद 356 के अधीन संकटकाल स्थिति के समय राज्यपाल राज्य में स्वतंत्र रूप में और राज्य मन्त्रि-परिषद् के अस्तित्व के बिना, राज्य का प्रशासन चलाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य बताइए।

7. सामान्यतः राज्य पाल अपने सभी कार्य राज्य मन्त्रि-परिषद् वास्वत में मुख्यमंत्री के परामर्श से करता है।
8. राज्य की मन्त्रि-परिषद् राज्य स्तर पर वास्तविक कार्यपालिका (सरकार) नहीं होती।
9. मुख्यमंत्री और मन्त्रियों के चयन में राज्य पाल का विशेष हाथ होता है।

7.7 राज्य का मुख्यमंत्री (State Chief Minister)

केन्द्र में प्रधानमन्त्री के पद की भाँति, राज्य में मुख्यमंत्री का पद भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। मुख्यमंत्री राज्य सरकार को चलाने वाला सबसे शक्तिशाली नेता होता है। वह राज्य की मन्त्रि-परिषद् का मुखिया होता है जोकि वास्तविक कार्यपालिका है। इस प्रकार मुख्यमंत्री को राज्य सरकार का वास्तविक कार्यपालिक मुखिया कहा जा सकता है और इस रूप में वह व्यापक और वास्तविक शक्तियों का प्रयोग करता है। अपने राज्य के नेता, बहुमत प्राप्त दल के नेता, राज्य मन्त्रि-परिषद् के मुखिया, राज्यपाल के मुख्य परामर्शदाता और राज्य के लोगों के प्रतिनिधि होने के नाते मुख्यमंत्री राज्य के प्रशासन में प्रमुख और शक्तिशाली भूमिका निभाता है। वह समान व्यक्तियों में प्रथम नहीं है। अनुच्छेद 163 उसको स्पष्ट रूप में राज्य की मन्त्रि-परिषद् के मुखिया का दर्जा देता है। उसका राज्य की राजनीतिक व्यवस्था में भूमिका और दर्जा काफी सीमा तक वैसा ही है जैसा कि केन्द्र में प्रधानमंत्री का होता है।

(क) मुख्यमंत्री की नियुक्ति का ढंग (Method of Appointment of Chief Minister): संवैधानिक रूप में और कानूनी रूप में मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल के द्वारा की जाती है। संविधान का अनुच्छेद 164 (1) घोषणा करता है कि “मुख्यमन्त्री राज्यपाल के द्वारा नियुक्त किया जाएगा।” परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करने के लिए स्वतंत्र होता है वास्तव में राज्यपाल के पास आमतौर पर कोई विकल्प नहीं होता क्योंकि चुनावों के पश्चात् जो दल राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त करता है वह अपना नेता निर्वाचित करता है और इसकी सूचना राज्यपाल को देता है। इस पर राज्यपाल औपचारिक रूप में उसको सरकार बनाने का न्यौता देता है, उसको मुख्यमन्त्री मनोनीत करता है और उसको अपनी सरकार (मन्त्रि-परिषद्) संगठित करने के लिए कहता है। उदाहरण के रूप में 2005 में हरियाणा विधानसभा के चुनावों में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ और उसके नेता श्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा को हरियाणा के गवर्नर ने मुख्य-मन्त्री नियुक्त कर दिया और उसने अपनी मन्त्रि-परिषद् का गठन किया। राज्य विधान सभाओं के आम चुनावों के पश्चात् प्रत्येक राज्य का गवर्नर ऐसा ही व्यवहार अपनाता है। राज्यपाल के द्वारा एक राज्य का मुख्यमन्त्री नियुक्त करने के संबंध में यह व्यवहार एक मानी हुई परम्परा बन गई है और राज्यपाल विधानपालिका में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही मुख्यमन्त्री नियुक्त करता है।

परन्तु जब, किसी भी दल को राज्य विधानसभा में स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तो सामान्य रूप में राज्यपाल सबसे बड़े दल के नेता को सरकार बनाने का न्यौता देता है। अधिकतर मुद्दों में यदि एक दल को राज्य विधानसभा

नोट

में बहुमत प्राप्त नहीं होता, तो दो या तीन दल मिलकर साझा मोर्चा या साझा समूह या गठबन्धन बना लेते हैं। इसके पश्चात् यह गठबन्धन समूह नेता चुनता है और राज्यपाल को उसके नाम की सूचना दे देता है। इस पर राज्यपाल इसको सरकार बनाने का न्यौता देते हैं। ऐसी स्थिति में राज्यपाल मुख्यमंत्री का चुनाव में कुछ स्व-विवेक अधिकार रखता है। उदाहरण के लिए जब नवम्बर, 1967 में लक्ष्मण सिंह गिल के नेतृत्व में 16 अकाली विधायक दल बदली कर गए तो पद मुक्त हो रहे मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह ने राज्यपाल को मन्त्रिपरिषद् भंग करने की सिफारिश की परन्तु राज्यपाल ने यह सिफारिश स्वीकार न की और अल्प-संख्या समूह के नेता लक्ष्मण सिंह गिल को सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया। इसी प्रकार जब जून 1971 में कुछ अकाली विधायक बादल सरकार से दल बदली कर गए तो उस समय के मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल ने राज्य विधानसभा भंग करने की सिफारिश की। परन्तु दूसरी ओर गुरनाम सिंह ने दावा किया कि उसको दल-बदली करके आए विधायकों और कांग्रेस पार्टी का समर्थन प्राप्त था। उसने दावा किया कि उसको विधानसभा में बहुमत प्राप्त था और राज्यपाल का प्रार्थना की कि उसको मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाए। परन्तु राज्यपाल ने उसके दावे को स्वीकार न किया। 1967 के साधारण चुनावों के पश्चात् बहुत-से राज्यों के राज्यपालों ने राज्य सरकारें स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अलग-अलग राज्यपालों ने अलग-अलग ढंग अपनाए। राज्यपाल के द्वारा अनोखा ढंग अपनाने का एक उदाहरण यू० पी० के राज्यपाल रमेश भंडारी का दिया जा सकता है जिसने यू० पी० राज्य विधानसभा में सबसे बड़े दल के रूप में उभरी भाजपा को बहुमत सिद्ध करने का अवसर न देकर पक्षपाती ढंग से सरकार बनाने का निर्णय किया।

ऐसे, कुछ ऐसे अवसरों को छोड़ कर जैसा कि त्रिशंकु विधानसभा अस्तित्व में आए जब दल बदली/पार्टियों में विभाजनों के कारण राज्य में राजनैतिक अस्थिरता वाली स्थिति हो, राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति में वास्तविक भूमिका निभा सकता है। सामान्य रूप में उसको राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त करने वाली पार्टी/समूह के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करना पड़ता है। यहां तक कि जब बहुमत वाले दल उस व्यक्ति को अपना नेता चुन लेते हैं जो किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता तो राज्यपाल को उस नेता को ही मुख्यमंत्री नियुक्त करना पड़ता है। 1980 में ए० आर० अंतुले और जगन्नाथ पहाड़िया को क्रमवार गुजरात और राजस्थान का मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया जबकि दोनों राज्य विधानपालिकाओं के सदस्य नहीं थे। राज्यपाल अस्थिर स्थिति या संकट समय मुख्यमंत्री का चुनाव करते समय अपने स्वैच्छिक अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

(ख) **कार्यकाल (Tenure)**—सैद्धान्तिक रूप में एक मुख्यमंत्री तब तक अपने पद पर रहता है, जब तक राज्यपाल उसको उस पद पर रखना चाहता है। परन्तु, वास्तविक व्यवहार में मुख्यमंत्री तब तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि वह राज्य विधानसभा में बहुमत वाले दल/समूह का नेता बना रहता है यदि उससे बहुमत का समर्थन समाप्त हो जाए तो राज्यपाल उसको पद से हटा सकता है। राज्य विधानसभा उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास किया समझा जाता है और मन्त्रि-परिषद् को तुरंत त्याग-पत्र देना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, मुख्यमंत्री के त्याग-पत्र को या विधानसभा के द्वारा मुख्यमंत्री को अविश्वास प्रस्ताव के द्वारा हटाए जाने को सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् को हटाया जाना माना जाता है। और पूर्ण मन्त्रि-परिषद् एक टीम की तरह व्यवहार करते हुए अपना त्याग-पत्र दे देती हैं एक बार नियुक्त होने के पश्चात् मुख्यमंत्री अधिक-से-अधिक 5 वर्ष तक (राज्य विधानसभा के कार्यकाल तक) मुख्यमंत्री बना रह सकता है, बशर्ते कि उसको राज्य विधानसभा में निरन्तर बहुमत का समर्थन प्राप्त रहे। यदि नए चुनावों के पश्चात् मुख्यमंत्री का राजनीतिक दल पुनः बहुमत प्राप्त कर लेता है तो भी मुख्यमंत्री की नियुक्ति पुनः की जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुख्यमंत्री के पद का कार्यकाल पांच वर्ष होता है परन्तु वह बार-बार मुख्यमंत्री बन सकता है यदि उसके दल को विधानसभा में बार-बार बहुमत मिले और उसका दल उसको बार-बार अपने नेता निर्वाचित कर ले। श्री ज्योति बसु लगभग 25 से अधिक वर्षों तक पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री बने रहे क्योंकि पश्चिमी बंगाल की राज्य-विधानसभा में सी० पी० एम० गठबन्धन के मुख्यमंत्री बने रहे क्योंकि पश्चिमी बंगाल की राज्य-विधानसभा में सी० पी० एम० गठबन्धन को बार-बार बहुमत प्राप्त होता रहा और बार बार इस गठबन्धन ने श्री ज्योति बसु को अपना नेता निर्वाचित किया था।

मुख्यमन्त्री की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of a Chief Minister)

राज्य के मुख्यमन्त्री को कानूनी रूप में कम और व्यावहारिक रूप में बहुत व्यापक शक्तियों मिली हुई हैं। वह राज्य की सरकार का वास्तविक कार्यपालिका मुखिया होता है। उसकी शक्तियों और कार्यों का निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन वर्णन किया जा सकता है:

1. **मन्त्रि-परिषद् का निर्माण (Formation of the Council of Ministers)**—मुख्यमन्त्री को अपनी इच्छा की मन्त्रि-परिषद् निर्मित करने की शक्ति प्राप्त है। संविधान उसको कानूनी रूप में अपनी इच्छा के मन्त्री चयन करने का अधिकार देता है। संविधान का अनुच्छेद 164 (1) यह व्यवस्था करता है कि, “दूसरे मन्त्री मुख्यमन्त्री की सिफारिश पर राज्यपाल के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।” मुख्यमन्त्री, विशेष रूप में तब जब उसके दल को राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त हो, अपनी इच्छा के मन्त्री चुनने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता है। वह किसी भी सदस्य या गैर-सदस्य को मन्त्री नियुक्त कर सकता है और उसको कोई भी विभाग दे सकता है। अब दल-बदली कानून के द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि उसकी मन्त्रिपरिषद् में विधानसभा की कुल सदस्य संख्या के 15% से अधिक मन्त्री नहीं हो सकते। इसके साथ-साथ बहुत-सी व्यावहारिक सीमाएँ भी विद्यमान हैं। मन्त्री का चुनाव करते समय उसको कई प्रकार के पहलुओं का ध्यान में रखना पड़ता है उसको राज्य के अलग-अलग वर्गों को भी प्रतिनिधित्व देना पड़ता है। इसी प्रकार एक या दो मन्त्री अनुसूचित जातियों में से भी लेने पड़ते हैं। इसे बढ़कर बात यह कि मुख्यमन्त्री अपनी दल या भागीदार दलों के प्रमुख नेताओं के दावों की अवहेलना नहीं कर सकता। कुछ मुद्दों में उसको उस व्यक्ति को भी मन्त्री बनाना पड़ता है जोकि राज्य की विधानपालिका का सदस्य नहीं होता। ऐसे मन्त्री को 6 महीनों के भीतर राज्य की विधानपालिका का सदस्य बनाना पड़ता है। साझी सरकार अथवा गठबन्धन सरकार की परिस्थिति में मुख्यमन्त्री को गठबन्धन में शामिल अलग-अलग के दलों के नेताओं को मन्त्री बनाना पड़ता है। अधिकतर भागीदार दलों के मन्त्री संबंधित दलों के द्वारा ही चुने जाते हैं और मुख्यमन्त्री उनको अपनी सरकार में ले लेता है। राज्य के राज्यपाल की सरकार बनाने में कोई विशेष भूमिका नहीं होती। यह मुख्यमन्त्री की इच्छा पर ही निर्भर होती है।

2. **मन्त्रियों को विभागों का बंटवारा करना (Distribution of Portfolios among the Ministers)**—मन्त्रियों की नियुक्ति के पश्चात् मुख्यमन्त्री के सामने जो महत्वपूर्ण कार्य होता है, वह है अपने साथी मन्त्रियों में विभागों का बंटवारा करना। वह यह निर्णय करता है कि कौन कैबिनेट मन्त्री होगा, कौन राज्य मन्त्री और कौन-सा उप-मन्त्री होगा। यह विभागों का बंटवारा करता है। ऐसा करते समय उसको अपने मन्त्रियों की वरिष्ठता और राजनीतिक दर्जे को ध्यान में रखना पड़ता है। वित्त विभाग जैसे महत्वपूर्ण विभाग बांटते समय पूर्ण सुयोग्य व्यक्तियों का चुनाव करना पड़ता है। कुछ विभाग वह अपने पास रखता है। यदि मुख्यमन्त्री चाहे तो वह मन्त्रियों के विभागों में कभी भी फेर-बदल कर सकता है।

मुख्यमन्त्री को जब भी वह चाहे, अपने मन्त्रिपरिषद् के पुनर्गठन का भी अधिकार होता है। वह राज्य का प्रशासन व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए अपने मन्त्रियों की टीम को बदल सकता है। वह किसी भी मन्त्री को त्याग-पत्र देने के लिए कह सकता है। वास्तव में इस संबंध में मुख्यमन्त्री को अपना मत केवल प्रकट ही करना होता है और संबंधित मन्त्री अपना त्याग-पत्र पेश कर देता है। यदि मन्त्री उसकी नहीं मानता और अपनी इच्छा प्रकट करता है। तो मुख्यमन्त्री अपना त्याग-पत्र देकर समस्त मन्त्रि-परिषद् में फेर-बदल कर सकता है और फिर नई मन्त्रि-परिषद् बना सकता है। मुख्यमन्त्री मन्त्रिपरिषद् का वास्तविक निर्माता, परिवर्तन कर्ता और उसको भंग करने वाला होता है। वह किसी मन्त्री को राज्यपाल के द्वारा पद से अलग ही करवा सकता है। मन्त्री मुख्यमन्त्री की इच्छा के अनुसार ही कार्य करते हैं।

3. **मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष (Chairman of the Council of Ministers)**—मन्त्रि-परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता राज्यपाल नहीं, बल्कि मुख्यमन्त्री करता है। मुख्यमन्त्री मन्त्रिपरिषद् की प्रत्येक बैठक का एजेंडा तैयार करता है और इसकी सूचना मन्त्रियों को दे देता है। वह कैबिनेट की बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसको

नोट

किसी भी समय कैबिनेट की बैठक आमन्त्रित करने का अधिकार होता है। बैठक का अध्यक्ष होने के नाते वह बैठक में होने वाले विचार-विमर्श और लिए जाने वाले निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राज्य कैबिनेट के प्रत्येक निर्णय पर उसके विचारों, सोच और धारणाओं की छाप होती है। वह त्याग-पत्र देने की धमकी देकर किसी भी निर्णय को वीटो कर सकता है। वास्तव में मन्त्री कभी भी उसको नाराज नहीं करना चाहते।

4. राज्यपाल और मन्त्रि-परिषद् के बीच मुख्य सम्पर्क सूत्र (The Chief Link between the Governor and the Council of Ministers)—मुख्यमन्त्री राज्यपाल और मन्त्रि-परिषद् के बीच मुख्य सम्पर्क सूत्र होता है। यह उसका कर्तव्य होता है कि वह राज्य के प्रशासन और कानून बनाने के प्रस्तावों के संबंध में मन्त्रि-परिषद् के सभी निर्णयों की सूचना राज्यपाल को दे। उसको प्रशासन और कानूनी प्रस्तावों से संबंधित ऐसी समस्त जानकारी देनी पड़ती है जिसकी राज्यपाल के द्वारा मांग की जाए। उसको किसी भी उस मुद्दे को मन्त्रि-परिषद् में विचार के लिए रखना पड़ता है जिससे संबंधित किसी मन्त्री ने व्यक्तिगत रूप में निर्णय लिया हो और राज्यपाल चाहता हो कि इसको समस्त मन्त्रि-परिषद् के सामने रखा जाए। राज्यपाल शेष मन्त्रियों की अपेक्षा मुख्यमन्त्री के परामर्श और सिफारिश को प्राथमिकता देता है। वास्तव में शेष मन्त्री मुख्यमन्त्री के परामर्श से ही राज्यपाल को मिलते हैं।

5. मुख्य ताल-मेल कर्ता के रूप में भूमिका (Role as the Chief Co-ordinator)—मुख्यमन्त्री का यह उत्तरदायित्व है कि वह सरकार के अलग-अलग विभागों में कार्य में तालमेल रखे। उसको यह विश्वसनीय बनाना पड़ता है कि सभी मन्त्री एक टीम के रूप में कार्य करें और एक-दूसरे की सहायता करें। यह उसका कर्तव्य होता है कि वह यह देखे कि सरकार का कोई भी एक विभाग दूसरे विभाग के कार्य को हानि न पहुंचाए। उसको यह भी विश्वसनीय बनाना पड़ता है कि सरकार के सभी विभाग एक टीम के रूप में कार्य करें और राज्य के हित में एक-दूसरे की सहायता को आएँ। वह दो या इससे अधिक विभागों में किसी भी टकरावा या झगड़े का समाधान करता है। उसके निर्णय उसके मन्त्रियों के निर्णयों के स्थान ले लेते हैं। यदि किसी मन्त्री और मुख्यमन्त्री में असहमति बनी रहती है तो संबंधित मन्त्री को त्याग पत्र देना पड़ता है।

6. राज्य विधानसभा के नेता के रूप में भूमिका (Role as a Leader of the State Legislative Assembly)—मुख्यमन्त्री न केवल अपने दल का बल्कि राज्य विधानसभा का भी नेता होता है। बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते उसको यह स्तर मिलता है। इस स्थिति में वह सदन को उचित दिशा की ओर ले जाता है। वह सरकार के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में कार्य करता है और सरकार की ओर से महत्वपूर्ण निर्णयों और नीतियों की घोषणा करता है। यह उसका कर्तव्य है कि यदि उसके साथी कैबिनेट मन्त्री को विरोधी पक्ष के सदस्य प्रश्नों से घेर लेते हैं तो वह उसकी सहायता करे। वह सरकार की नीतियों के पक्ष में खड़ने वाला और उनका बचाव और रक्षा करने वाला मुख्य नेता होता है। वह राज्य विधानसभा से अपने और अपने मन्त्रि-परिषद् के विचार स्वीकार करवाने के लिए भी अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

7. नियुक्तियां करने की शक्ति (Appointment making Powers)

नोट: सभी प्रमुख नियुक्तियां और पदोन्नतियां मुख्यमन्त्री की सिफारिश पर राज्यपाल के द्वारा की जाती हैं।

मन्त्रियों को अपने सिफारिशों स्वीकार करवाने के लिए मुख्यमन्त्री पर निर्भर करना पड़ता है। इस प्रकार मुख्यमन्त्री सुविधाएँ प्रदान करने तथा लाभ पहुंचाने की व्यापक शक्ति रखता है।

8. राज्य विधानसभा भंग करवाने की शक्ति (Power of getting the State Legislature dissolved)—मुख्यमन्त्री यदि यह अनुभव करे कि राज्य सरकार को संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार नहीं चलाया जा सकता या उसके द्वारा बहुमत गंवा बैठने की संभावना है तो ऐसी परिस्थिति में वह राज्यपाल को राज्य विधानसभा भंग करने की सिफारिश कर सकता है। सामान्य रूप में ऐसी सिफारिश मुख्यमन्त्री के द्वारा राजनीतिक स्थिति के आधार पर की जाती है। यदि मुख्यमन्त्री को बहुमत का विश्वास प्राप्त हो तो राज्यपाल ऐसे परामर्श को मानने के लिए पाबंद होता है।

नोट

9. **केन्द्र-राज्य संबंधों में भूमिका (Role in Centre-State Relations)**—राज्य प्रशासन का वास्तविक मुखिया होने के नाते मुख्यमंत्री का यह प्रमुख उत्तरदायित्व होता है कि वह केन्द्र से अच्छे संबंध बनाए रखे। उसको केन्द्रीय ग्रांट और सहायता, जोकि राज्य में विकास के कार्यों के लिए बहुत महत्वपूर्ण समझी जाती है, प्राप्त करने के लिए अपने पद का प्रयोग करना पड़ता है। केन्द्र सरकार, विशेष रूप में प्रधानमंत्री हो उसके अच्छे संबंध राज्य के लिए बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जब वह उसी दल से संबंधित हो जोकि केन्द्र में सत्ता में हो, तो वह राज्य के हितों की सुरक्षा एवं प्राप्ति के लिए अपना प्रभाव प्रयोग कर सकता है। यदि वह उस दल से संबंध नहीं रखता जोकि केन्द्र में सत्ता में है, तो उसको एक अच्छे प्रवक्ता, कई बार कठोर प्रवक्ता के रूप में कार्य करना पड़ता है जैसा कि पश्चिमी बंगाल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु करते रहे थे।

मुख्यमंत्री की स्थिति (Position of the Chief Minister)

एक राज्य के मुख्यमंत्री को राज्य प्रशासन में बहुत शक्तिशाली स्थिति होती है। वह राज्य की मन्त्रि-परिषद् बनाता है जोकि सदैव ही उसके नेतृत्व में कार्य करती है। वह इसके जन्म और मृत्यु का केन्द्रीय बिन्दु है। मन्त्रि-परिषद् बनाने का कार्य मुख्यमंत्री की नियुक्ति या नामजदगी से आरंभ होता है। राज्यपाल मन्त्रि-परिषद् बनाने समय उसकी सिफारिश स्वीकार करता है। वह राज्यपाल का मुख्य परामर्शदाता होता है। राज्य विधानसभा में बहुमत वाले दल का नेता होता है और अपने दल का सबसे महत्वपूर्ण नेता होता है और समस्त राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। वह लाभ पहुंचाने के व्यापक अधिकार रखता है। सामान्य रूप में राज्यपाल उसके परामर्श और सिफारिश पर कार्य करता है। मुख्यमंत्री राज्य की नीतियों का मुख्य निर्माणकर्ता होता है और वही इनको लागू करता है। राज्य का प्रशासन उसके नेतृत्व में कार्य करता है। उसकी राज्य में स्थिति वैसी ही होती है, जैसे केन्द्र में प्रधानमंत्री की। उसका पद एक शक्तिशाली पद या कह लें तो राज्य में सबसे शक्तिशाली पद होता है। परन्तु उसके पद की वास्तविक शक्ति कई तथ्यों पर निर्भर करती है:

(i) **पार्टी स्थिति (Party Set-up)**—उसको एक उस दल का समर्थन, जोकि राज्य विधानसभा में बहुमत वाला दल है, प्राप्त होने की परिस्थिति में मुख्यमंत्री अपने अधिकारों का प्रयोग निर्णायक और शक्तिशाली ढंग से कर सकता है। ऐसी स्थिति में राज्यपाल लगभग प्रत्येक क्षेत्र में उसकी सिफारिश मानने का पाबंद होता है। परन्तु यहां भी अधिकतर उसकी व्यक्तिगत योग्यताओं पर निर्भर करता है। वह उतना कमजोर भी हो सकता है, जितना कि पंजाब का भूतपूर्व मुख्यमंत्री दरबारा सिंह था। परन्तु यदि 'साझे मोर्चे' या एक 'साझी सरकार अथवा गठबन्धन' का नेता है और अपने गठबन्धन या मोर्चे की भागीदारी पर निर्भर करता है, तो उसकी काफी कमजोरी का सामना करना पड़ता है। उसको अपना अधिकतर समय अपने मोर्चे/गठबन्धन को एकजुट रखने में लगाना पड़ सकता है। उसके मन्त्रि-परिषद् में राजनीतिक एकस्वरा की कमी उसके कमजोर होने का स्रोत बन सकती है। राज्य विधानसभा में पूर्ण और अच्छे बहुमत की कमी उसकी क्षमताओं स्रोतों और योग्यताओं पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है। परन्तु यदि उसमें अच्छे गुण और योग्यताएँ हों तो वह अपना दृढ़ प्रभाव दिखा सकता है।

(ii) **केन्द्र में सत्ताधारी दल का स्वरूप (Nature of the Party in Power at the Centre)**—भारत एकात्मकता की भावना वाला एक संघ है और इसलिए राज्यों को कई तरह से केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है। केन्द्र से सद्भावना वाले और सहयोग वाले संबंध एक राज्य सरकार के लिए शक्ति का स्रोत बनते हैं। यदि केन्द्र में भी उसी दल की सरकार हो जिससे राज्य का मुख्यमंत्री संबंध रखता है, तो मुख्यमंत्री को केन्द्रीय सहायता प्राप्त करने में सरलता रहती है। वह केन्द्र से अपने पक्ष में निर्णय करवाने में अपनी दलीय स्थिति और प्रभाव को प्रयोग कर सकता है बशर्ते की वह कमजोर व्यक्तित्व वाला न हो और अपने दल में अधिक अच्छे प्रभाव वाला नेता हो। यदि केन्द्र में किसी अन्य दल की सरकार हो और राज्य में किसी अन्य दल की तो उस राज्य के मुख्यमंत्री को राज्य के राज्यपाल के द्वारा केन्द्र के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दबाव के अधीन कार्य करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री का व्यक्तित्व और चरित्र राज्य प्रशासन में उसकी भूमिका को निर्धारित करते हैं।

(i) **राज्य के राज्यपाल का व्यक्तित्व और भूमिका (The Personality and Role of the Governor of the State)**—राज्यपाल राज्य का नाम-मात्र का संवैधानिक मुखिया होता है परन्तु इसके साथ ही

नोट

संविधान ने इसको कुछ वास्तविक तथा स्व-विवेकी शक्तियां भी दी हैं। वह यह बात निर्धारित करने वाला केवल 'एक न्यायाधीश' होता है कि क्या राज्य में संवैधानिक मशीनरी उचित ढंग से कार्य कर रही है कि नहीं अथवा असफल है कि नहीं या टूटने ही वाली है या नहीं। जब राज्य विधानसभा में किसी भी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो उस समय राज्यपाल राज्य के प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। वह उस मुख्यमंत्री को पद से हटा सकता है जो उसके विचार में राज्य विधानसभा में बहुमत का विश्वास गंवा चुका हो। वह मुख्यमंत्री को सदन में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कह सकता है या ऐसा आदेश अन्य ढंग से दे सकता है। वह अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति को राज्य में संकटकाल स्थिति लागू करने की सिफारिश स्वतंत्र रूप में कर सकता है। यहां तक कि राष्ट्रपति की सहमति की प्रतीक्षा के बिना ही वह राज्य विधानसभा भंग कर सकता है और राज्य सरकार को पदमुक्त कर सकता है। किसी भी बात को न मानने वाला और सत्ता की भूख राज्यपाल मुख्यमंत्री के लिए मुसीबत का कारण बन सकता है। गैर-सहायक राज्यपाल के अस्तित्व के कारण मुख्यमंत्री के अधिकारों पर चोट पहुंच सकती है। परन्तु ऐसी स्थिति में भी मुख्यमंत्री की व्यक्तिगत योग्यताएँ उसका अपने दल/समूह को राज्य विधानसभा में एकजुट रखने की सामर्थ्य, उसकी अपने मन्त्रि-परिषद् में एकता और एकजुटता की भावना स्थापित रखने का सामर्थ्य और उसको प्राप्त बहुमत का समर्थन, उसके बहुमूल्य गुण बन सकते हैं। 1984 में आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री एन० टी० रामा राव राज्यपाल राम लाल की तुलना में अधिक दृढ़ व्यक्ति सिद्ध हुए थे। मुख्यमंत्री राज्य के राज्यपाल के संबंध में अपनी स्थिति शक्तिशाली बनाने के लिए अपने लोकप्रिय आधार का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग कर सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री का पद एक शक्तिशाली पद है, परन्तु इस पद का व्यवहार मुख्यमंत्री का पद धारक व्यक्ति के गुणों और योग्यताओं पर बहुत सीमा तक निर्भर करता है जब तक मुख्यमंत्री को अपने दल के बहुमत का विश्वास प्राप्त रहता है और जब तक उसके दल को राज्य विधानसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त रहता है तो उसका पद एक शक्तिशाली पद के रूप में कार्य करता है। परन्तु जब विधानसभा में उसके दल को बहुमत प्राप्त न हो और वह साझे मोर्चे की सरकार का मुख्यमंत्री हो तो उसकी स्थिति कुछ कमजोर रहती है, परन्तु यहां भी बहुत कुछ मुख्यमंत्री के गुणों और योग्यता पर निर्भर करता है। वास्तव में राज्य का राजनीतिक वातावरण, राज्य के गवर्नर का व्यक्तित्व, उसके अपने दल में एकता, अपने दल की स्थिति आदि तत्त्व मुख्यमंत्री के पद के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। एक शक्तिशाली व्यक्ति ही शक्तिशाली मुख्य-मन्त्री सिद्ध होता है और उसके गुणों पर राज्य प्रशासन की दृढ़ता, योग्यता और कुशलता निर्भर करती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

10. अनुच्छेद 163 स्पष्ट रूप से को राज्य की मन्त्रि-परिषद् के मुखिया का दर्जा देता है।
11. मुख्यमंत्री को जब भी चाहे अपने के पुनर्गठन का भी अधिकार होता है।
12. मुख्यमंत्री मन्त्रि-परिषद् की बैठक का तैयार करता है, और इसकी सूचना मंत्रियों को देता है।

सारांश (Summary)

- संविधान ने देश के सभी 25 राज्यों के लिए एक विधानमंडल की स्थापना की है। अनुच्छेद 168 के अनुसार, "हर राज्य का एक विधानमण्डल होगा, जिसमें बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, जम्मू-कश्मीर और उत्तर प्रदेश के राज्यों में दो सदन हैं तथा अन्य राज्यों में एक सदन है।"
- राज्य विधानमण्डल को राज्यसूची में दर्ज विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है। इसके साथ ही इसे सांझी सूची में दर्ज विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है।
- विधानमण्डल से बिल पास होकर राज्यपाल के पास भेज जाता है। राज्यपाल को निषेधाधिकार (Veto Power) भी प्राप्त है।

- राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का मुखिया होता है। इसको राज्य में वही स्थिति होती है जो केन्द्र में राष्ट्रपति को प्राप्त है।
- राज्यपाल नियुक्त किए जाने के संबंध में दूसरी परम्परा यह है कि किसी विशेष राज्य का राज्यपाल नियुक्त करने के लिए किसी व्यक्ति के चयन को अंतिम रूप देने से पहले केन्द्र सरकार को उपेक्षित कर दिया जाता है।
- भारत में प्रत्येक राज्य का एक राज्यपाल होता है जो राज्य की कार्यपालक (सरकार) का मुखिया होता है परन्तु साथ ही राज्य में केन्द्र के एजेंट या प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है।
- भारत का संविधान राज्य स्तर पर भी संसदीय स्वरूप की सरकार संगठित करने की व्यवस्था करता है। वह यह व्यवस्था करता है कि राज्य का राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का संवैधानिक और नाममात्र का मुखिया होगा और वास्तविक कार्यपालक शक्तियों का प्रयोग मुख्यमंत्री के नेतृत्व में राज्य मन्त्रि-परिषद् करेगी।
- सामान्य रूप में राज्यपाल ऐसे ढंग से नियुक्त किए गए मुख्यमंत्री को एक निर्धारित समय अंदर जैसा कि एक महीने या 15 दिन में, अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहता है।
- मन्त्री सरकार की नीतियों और विधानपालिका के द्वारा स्वीकृत नीतियों के अनुसार राज्य का प्रशासन चलाने के लिए उत्तरदायी होते हैं।
- मुख्यमंत्री को अपनी इच्छा की मन्त्रि-परिषद् निर्मित करने की शक्ति प्राप्त है। संविधान उसको कानूनी रूप में अपनी इच्छा के मन्त्री चयन करने का अधिकार देता है।
- एक राज्य के मुख्यमंत्री को राज्य प्रशासन में बहुत शक्तिशाली स्थिति होती है। वह राज्य की मन्त्रि परिषद् बनाता है जोकि सदैव ही उसके नेतृत्व में कार्य करती है। वह इसके जन्म और मृत्यु का केन्द्रीय बिन्दु है।

राज्य सरकार:
राज्य-विधानमण्डल, राज्यपाल,
मन्त्रि-परिषद् और मुख्यमंत्री

नोट

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. राज्य के विधानमण्डल के शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. भारत में राज्य की राजनीति में राज्यपाल की भूमिका का वर्णन कीजिए।
3. राज्यपाल के शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
4. मन्त्रि-परिषद् के शक्तियों का वर्णन कीजिए।
5. राज्य के मुख्यमंत्री की नियुक्ति कैसे की जाती है? उसके कार्यों एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

- | | | | |
|----------|-----------------|--------------|------------|
| 1. 14 | 2. साधारण | 3. 25 वर्ष | 4. (b) |
| 5. (a) | 6. (b) | 7. सत्य | 8. असत्य |
| 9. असत्य | 10. मुख्यमंत्री | 11. पुनर्गठन | 12. एजेंडा |

संदर्भ पुस्तकें (Further Reading)

1. भारतीय शासन और राजनीति— पी. रस्तोगी।
2. भारतीय राजनीतिक प्रणाली— यू.आर. घई।

नोट

अध्याय 8: न्यायपालिका: सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, न्यायिक पुनर्निरीक्षण (The Judiciary: Supreme Court, High Court, Judicial Review)

संरचना (Structure)

- 8.1 उद्देश्य (Objectives)
- 8.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 8.3 सर्वोच्च न्यायालय : रचना, शक्तियाँ और कार्य (Supreme Court: Formation, Powers and Functions)
- 8.4 राज्य उच्च न्यायालय (State High Court)
- 8.5 न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review)
- 8.6 भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण : विशेषताएँ (Judicial Review in India: Features)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

8.1 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- सर्वोच्च न्यायालय के शक्तियों, रचनाओं एवं कार्यों को समझने हेतु।
- उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति, कार्य और अधिकारों का वर्णन करने हेतु।
- भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रणाली की व्याख्या करते हुए आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में।

8.2 प्रस्तावना (Introduction)

परिचय (Introduction)—एक राज्य में न्यायपालिका की आवश्यकता बताते हुए प्रो. गार्नर ने कहा है कि, “न्याय-विभाग के अभाव में एक सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। कोई भी समाज बिना विधानमण्डल के रहता है, यह बात समझ में आ सकती है। लेकिन ऐसे किसी सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती, जिसमें न्यायपालिका या न्यायाधिकरण की कोई व्यवस्था नहीं हो।” एक संघात्मक राज्य में स्वतंत्र और

नोट

सर्वोच्च न्यायालय की आवश्यकता और अधिक होती है। संघ राज्य में संघीय और राज्य सरकारों के बीच स्पष्ट और लिखित रूप में शक्ति विभाजन किया जाता है, किन्तु फिर भी अनेक विषयों पर संघीय और राज्य सरकारों के बीच या राज्यों सरकारों में ही परस्पर विवाद उत्पन्न हो सकता है, जिनका निबटारा एक सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा ही किया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा संविधान के रक्षक और संविधान के अधिकारिक व्याख्यता के रूप में कार्य किया जाता है। वह संसद द्वारा निर्मित ऐसी प्रत्येक विधि को अवैध घोषित कर सकता है जो संविधान के विरुद्ध हो। अपनी इस शक्ति के द्वारा यह संविधान को प्रभुता और सर्वोच्चता की रक्षा करता है। जब कभी संविधान के किसी अनुच्छेद के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न हो जाता है, तो उसे इस संबंध में निर्णय देने का अधिकार होता है और इस संबंध में उसका निर्णय अन्तिम और सर्वमान्य होता है।

सर्वोच्च न्यायालय संविधान की रक्षा करने के साथ-साथ नागरिकों की स्वतंत्रता और अधिकारों की भी रक्षा करता है। यदि भारत संघ की व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी या अन्य कोई सत्ता नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करती है तो सर्वोच्च न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा या उत्प्रेक्षण जब जैसी आवश्यकता हो, वैसा आदेश जारी कर नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है। इस संबंध में श्री एम. सी. सीतलवाड़ ने अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है कि “संविधान के अन्तिम व्याख्यता के रूप में, चाहे वह मौलिक अधिकारों का क्षेत्र हो अथवा संघ व राज्य के बीच उठने वाले प्रश्न एवं देश के समस्त कानूनों और प्रथाओं पर आधारित नियमों का क्षेत्र राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के यन्त्र स्वरूप, सर्वोच्च न्यायालय के प्रभाव पर बल देना कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

भारत में इकहरी न्याय-प्रणाली की व्यवस्था (Single Judicial System in India)

यद्यपि भारत एक संघीय राज्य है, परन्तु फिर भी संविधान में इकहरी न्याय-प्रणाली की व्यवस्था की गई है। संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति हमारे देश में संघीय और राज्य न्यायालय अलग-अलग नहीं हैं। सभी न्यायालय एक ही न्याय-शृंखला की कड़ियाँ हैं। सबसे ऊपर भारत का सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court of India) है। इसके अधीन राज्यों में उच्च न्यायालय (State High Courts) हैं तथा उच्च न्यायालयों के अधीन जिला स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Courts) हैं। ये सभी न्यायालय संविधान के अन्तर्गत स्थापित किए गए हैं तथा ये संवैधानिक कानून, राज्यों के कानूनों और सामान्य दण्ड विधि (Criminal Procedure Law) व व्यवहार विधि (Civil Procedure Law) के आधार पर मुकदमों के निर्णय करते हैं। इस प्रकार भारत में सुसंगठित इकहरी न्याय-व्यवस्था की स्थापना की गई है।

9.1 सर्वोच्च न्यायालय : रचना, शक्तियाँ और कार्य (Supreme Court : Formation, Powers and Functions)

यह न्यायालय भारतीय न्याय-व्यवस्था की शिरोमणि है। यह भारत का सबसे ऊँचा न्यायालय है तथा इसके निर्णय अन्तिम होते हैं।

क्या आप जानते हैं: संविधान लागू होने से पहले भारत के सर्वोच्च न्यायालय को फेडरल कोर्ट ऑफ इण्डिया (Federal Court of India) कहा जाता है। इसकी स्थापना 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत की गई थी।

इसे प्रारंभिक तथा अपीलीय दोनों प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त थे, लेकिन यह भारत का अन्तिम न्यायालय नहीं था। इसके निर्णयों के विरुद्ध अपीलें इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल (Privy Council of England) के पास की जा सकती थीं।

नोट

सर्वोच्च न्यायालय की रचना (Comparison of Supreme Court)—भारतीय संविधान की धारा 124 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है। (“There shall be a Supreme Court of India.”) सर्वोच्च न्यायालय में प्रारंभ में एक मुख्य न्यायाधीश और 7 अन्य न्यायाधीश होते थे। 1957 में संसद में एक कानून पास हुआ, जिसके अनुसार मुख्य न्यायाधीश को छोड़कर बाकी न्यायाधीशों की संख्या 7 से 10 कर दी गई। सन् 1960 में संसद ने अन्य न्यायाधीशों की संख्या 10 से बढ़ाकर 13 कर दी। परन्तु दिसम्बर, 1977 में संसद ने एक कानून पास किया, जिसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या 13 से बढ़ाकर 17 कर दी गई। अप्रैल, 1986 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 17 से 25 कर दी गई। अतः आजकल सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 25 अन्य न्यायाधीश हैं।

काम की अधिकता होने पर राष्ट्रपति तदर्थ न्यायाधीशों (Adhoc Judges) की भी नियुक्ति कर सकता है। तदर्थ न्यायाधीशों (Adhoc Judges) को भी यही वेतन तथा भत्ते मिलते हैं। आवश्यकता पड़ने पर किसी सेवा-निवृत्त (Retired) न्यायाधीश को काम करने के लिए भी कहा जा सकता है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of Judges)—उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, परन्तु ऐसा करते समय राष्ट्रपति केवल स्वेच्छा से काम नहीं लेता। मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सलाह लेना आवश्यक है। उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय मुख्य न्यायाधीश की सलाह लेनी आवश्यक होती है। तदर्थ न्यायाधीशों (Adhoc Judges) की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश की सलाह से की जाती है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति निष्पक्षता के आधार पर की जाती है। निष्पक्षता बनी रहे, उसके लिए न्यायाधीशों की वरिष्ठता सूची (Seniority List) बनी हुई है, ताकि जब कभी मुख्य न्यायाधीश का पद खाली हो तो जो भी वरिष्ठ न्यायाधीश हो, उसकी नियुक्ति की जा सके। परन्तु 15 अप्रैल, 1973 को जब मुख्य न्यायाधीश सीकरी रिटायर हुए तो वरिष्ठता के सिद्धान्त का उल्लंघन हुआ और न्यायाधीश ए. एन. राय को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। इसके विरोध में न्यायाधीश शीलट (Shelet), हेगडे तथा ग्रोवर ने त्याग पत्र दे दिया। एम. एच. बेग के रिटायर होने पर 22 फरवरी, 1978 को वरिष्ठ न्यायाधीश वाई. वी. चन्द्रचूड़ (Y.V. Chandrachud) को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। इस प्रकार न्यायपालिका की स्वतंत्रता की स्थापना की गई।

28 जनवरी, 1980 को कानून आयोग (Law Commission) की 80वीं रिपोर्ट लोकसभा में प्रस्तुत की गई थी। इस रिपोर्ट में कानून आयोग ने यह सिफारिश की थी कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के लिए वरिष्ठता के सिद्धान्त (Principal of Seniority) को कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए।

सर्वोच्च न्यायाधीशों की योग्यताएँ (Qualification of the Judges)

संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निम्न योग्यताएँ निश्चित की गई हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह किसी उच्च न्यायालय या न्यायालयों में कम-से-कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश रह चुका हो।
अथवा
3. वह किसी उच्च न्यायालय में कम-से-कम 10 वर्षों तक एडवोकेट रह चुका हो। अथवा
4. वह राष्ट्रपति की दृष्टि में कोई प्रसिद्ध विधिवेत्ता (Distinguished Jurist) हो।

न्यायाधीशों की अवधि (Tenure of Judges)—उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर आसीन रह सकते हैं। 65 वर्ष की आयु के पश्चात् उन्हें पद से अवकाश दिया जाता है। संसद न्यायाधीशों की अवकाश प्राप्ति की आयु बढ़ा भी सकती है। रिटायर होने के पश्चात् उन्हें पेन्शन (Pension) दी जाती है। इससे पहले भी वह स्वयं त्याग-पत्र दे सकते हैं। राष्ट्रपति उन्हें अपनी स्वेच्छा से नहीं हटा सकता।

न्यायाधीशों को हटाया जाना (Removal of Judges)—अयोग्यता और दुराचार (“Incapacity or Proved Misbehaviour”) के आधार उन्हें पदच्युत किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट के जज को तभी हटाया

नोट

जा सकता है जब संसद एक प्रस्ताव को दोनों सदनों द्वारा समस्त संख्या के बहुमत तथा उपस्थित और मतदान देने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से पास कर, उसी अधिवेशन में उस न्यायाधीश पर सिद्ध दुराचार अथवा असमर्थता का आरोप लगाकर राष्ट्रपति के पास भेजे और राष्ट्रपति उस प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर कर दे। अनुच्छेद 124 (4)] 1 न्यायाधीशों को हटाने का इतना कठिन तरीका इसलिए अपनाया गया है ताकि न्यायाधीश निष्पक्षता से और निडर होकर कार्य कर सकें।

वेतन तथा भत्ते (Salary and Allowances)—मुख्य न्यायाधीश का वेतन एक लाख रुपये मासिक है और अन्य न्यायाधीशों को वेतन अस्सी हजार रुपये मासिक है। इसके अतिरिक्त हर एक न्यायाधीश को रहने के लिये बिना किराए की सरकारी कोठी दी जाती है और यात्रा भत्ता भी दिया जाता है, जबकि उसको किसी सरकारी कार्य के लिए यात्रा करनी हो। न्यायाधीशों के वेतन तथा भत्ते भारत की संचित निधि में से दिए जाते हैं, जिनको संसद मत लिए बिना पास कर देती है। केवल वित्तीय संकट की घोषणा करने से राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि जजों के वेतन को कम कर सके। मार्च, 1976 में संसद ने एक कानून पास किया था, जिसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पेन्शन में बढ़ोतरी की गई।

सेवानिवृत्त होने पर वकालत प्रतिबन्ध (Prohibition of Practice after Retirement)—सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा-निवृत्त होने के पश्चात् किसी न्यायालय में वकालत करने की मनाही की गई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सरकार उनको कोई विशेष कार्य भी नहीं सौंप सकती। उनको किसी आयोग (Commission) का सदस्य या अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है। अप्रैल, 1977 में जनता सरकार ने आपातकाल की ज्यादतियों तथा अत्याचारों की जाँच करने के लिए भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश जे. सी. शाह (J. C. Shah) को नियुक्त किया था। इसके अलावा न्यायाधीशों को सरकार अन्य पदों पर नियुक्त किया गया था तथा श्री एम. सी. छागला को अमेरिका में भारत का राजदूत नियुक्त किया गया था।

पृथक् स्थापना व्यवस्था (Separate Establishment)—संविधान की धारा 146 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की अलग व्यवस्था है। उसके अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति, उनके सेवा व्यवस्था से संबंधित नियम तथा शर्तें सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश निश्चित करता है। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के प्रशासकीय खर्च देश की संचित निधि से खर्च किए जाते हैं। इस कारण से सर्वोच्च न्यायालय संसद अथवा किसी अन्य संस्था के नियंत्रण से मुक्त है और इसकी स्वतंत्रता सुरक्षित है।

पद की शपथ (Oath of Office)—प्रत्येक वह व्यक्ति, जो भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अथवा अन्य न्यायाधीशों के पद पर नियुक्त किया जाता है, अपना पद ग्रहण करने के समय राष्ट्रपति या उसके द्वारा किसी अन्य अधिकारी के सामने एक शपथ लेता है, जो इस प्रकार है—

“मैं—(नाम)—जो भारत के सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश (अथवा न्यायाधीश) नियुक्त हुआ हूँ, ईश्वर की शपथ लेता हूँ/सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा तथा हर प्रकार से और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों को भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करूँगा तथा मैं संविधान और विधियों की मर्यादा बनाये रखूँगा।”

["I...(Name)... having been appointed Chief Justice (or a Judge) of the Supreme Court of India do swear in the name of God/Solemnly affirm that I will bear true faith and allegiance to the Constitution of India as by law established that I will duty and faithfully and to the best of my ability, knowledge and judgement perform the duties of my office without fear or favour, affection or ill-will and that I will uphold the constitution and the laws."]

सर्वोच्च न्यायालय का स्थान (Seat of Supreme Court)—सर्वोच्च न्यायालय का कार्य-स्थान नई दिल्ली में है। वहाँ इसका तराजू शकल का बना हुआ सुन्दर भवन है, परन्तु मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की अनुमति से इसकी बैठकें अन्य स्थान पर भी कर सकता है।

नोट

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय (Decision of the Supreme Court)—किसी विषय से संबंधित राष्ट्रपति को कानूनी परामर्श देने के लिए 5 न्यायाधीशों का बैंच (मुकदमे की सुनवाई करने वाला न्यायालय) होना अनिवार्य है। शेष मुकदमों में अपील सुनने के लिए वर्तमान नियमों के अनुसार कम-से-कम तीन न्यायाधीशों का होना आवश्यक है। सभी मुकदमों का निर्णय मुकदमा सुनने वाले न्यायाधीशों के बहुमत से किया जाता है। जो न्यायाधीश बहुमत के निर्णय से सहमत नहीं होते, वे अपनी असहमति तथा उसके कारण निर्णय के साथ लिखवा सकते हैं।

न्यायाधीशों की स्वतंत्रता (Immunities of Judges)—न्यायाधीशों की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए न्यायाधीशों के सभी न्याय संबंधी कार्यों तथा निर्णयों की आलोचना से मुक्त रखा गया है। संसद भी किसी न्यायाधीश के आचरण पर वाद-विवाद नहीं कर सकती। वह केवल तभी हो सकता है जब संसद किसी न्यायाधीश को हटाने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद कर रही हो।

ऐसा इसलिए किया गया है ताकि न्यायाधीश बिना किसी भय के अपना कर्तव्य निभा सकें। न्यायालय के मान तथा सरकार को बनाए रखने के लिए तथा इसको आलोचना से मुक्त रखने के लिए, न्यायालय को किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध न्यायालय के अपमान की प्रक्रिया द्वारा उचित कार्यवाही करने का अधिकार (Proceeding of Contempt of Court) है।

सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार एवं शक्तियाँ (Jurisdiction and Powers of Supreme Court)

सर्वोच्च न्यायालय भारत का सबसे ऊँचा और अन्तिम न्यायालय है। इसका क्षेत्राधिकार व शक्तियाँ बड़ी व्यापक हैं तथा संसार के किसी भी सर्वोच्च न्यायालय से कम नहीं। भारत के भूतपूर्व अटार्नी जनरल **श्री एम.सी. सीतलवाड (M.C. Setalvad)** के अनुसार भारत में सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक हैं। इसके क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **प्रारंभिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)**—इस अधिकार क्षेत्र में वे मुकदमे आते हैं जो किसी और न्यायालय में पेश नहीं किए जा सकते तथा जिनकी सुनवाई पहली बार ही सर्वोच्च न्यायालय में होती हो। इस अधिकार क्षेत्र में निम्नलिखित मुकदमे आते हैं—

- (i) ऐसे झगड़े जिनमें एक ओर भारत सरकार तथा दूसरी ओर एक या एक से अधिक राज्य सरकारें हों।
- (ii) ऐसे झगड़े जिनमें एक ओर भारत सरकार और एक या एक से अधिक राज्य तथा दूसरी ओर एक या एक से अधिक राज्य हों।
- (iii) ऐसे झगड़े जो दो या दो से अधिक राज्यों के बीच हों।

प्रारंभिक क्षेत्राधिकार पर पाबन्दियाँ (Limitation on Original Jurisdiction)

- (i) सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार वहीं मुकदमे आते हैं, जिनका संबंध कानूनी प्रश्न या तथ्य से हो, राजनैतिक प्रश्न या तथ्य से नहीं।
- (ii) दूसरे प्रारंभिक क्षेत्राधिकार में ऐसे मुकदमे नहीं आते जिनका संबंध किसी ऐसी सन्धि, करार, समझौते, सनद या अन्य लिखित पत्र से हो, जो संविधान लागू होने से पहले या बाद में लागू किए गए हों तथा जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया हो, जैसे—देशी रियासतों के शासकों के साथ गए किए समझौते और सन्धियाँ।
- (iii) तीसरे संसद कानून बनाकर अन्तर्राज्यीय नदियों (Inter-State Rivers) के पानी के प्रयोग के बारे में उत्पन्न होने वाले झगड़ों के सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रख सकती है।

2. **अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)**—सर्वोच्च न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार में ऐसे मुकदमों आते हैं, जिनका आरंभ निचले न्यायालयों में होता है, परन्तु उनके निर्णय के विरुद्ध अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के इन क्षेत्राधिकारों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—

नोट

(i) **संवैधानिक (Constitutional)**—संविधान की धारा 132 के अंतर्गत यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि मुकदमे में संविधान की व्याख्या से संबंधित कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न उलझा हुआ है, तो उस मुकदमे में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी ऐसी अपील करने की विशेष आज्ञा दे सकता है यदि वह संतुष्ट हो कि मुकदमा इस प्रकार का है (अनुच्छेद 136) और राज्य का उच्च न्यायालय ऐसा प्रमाण-पत्र देने से इन्कार कर दे। इसके परिणामस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक तथा अन्तिम व्याख्यकर्ता बन जाता है।

(ii) **दीवानी (Civil)**—मूल संविधान के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय में किसी उच्च न्यायालय के केवल ऐसे निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती थी जिसमें झगड़े की राशि कम-से-कम 20 हजार रुपया या इस मूल्य की या इससे अधिक मूल्य की सम्पत्ति हो। परंतु संविधान के 30 वें संशोधन द्वारा धनराशि की इस सीमा को हटा दिया गया है और यह निश्चित किया गया है कि उच्च न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय में ऐसे सभी दीवानी मुकदमों की अपील की जा सकेगी जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा यह प्रमाणित कर दिया जाये कि इस विवाद में कानून की व्याख्या से संबंधित कोई महत्वपूर्ण प्रश्न निहित है।

(iii) **फौजदारी (Criminal)**—फौजदारी मुकदमों में उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध निम्न विषयों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है:

- यदि उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत होने पर किसी व्यक्ति की रिहाई के फैसले को बदल दे और उसे मृत्युदण्ड दे दिया गया हो। (अथवा)
- यदि किसी मुकदमे को उच्च न्यायालय ने अपने पास ले लिया हो और उसने उसमें किसी अपराधी को मृत्यु-दण्ड दे दिया हो।
- अगर उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विवाद सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार के योग्य है, तब भी अपील की जा सकती है।

संविधान की धारा 136 के अंतर्गत सैनिक न्यायालय को छोड़कर किसी भी उच्च न्यायालय के फैसले के विरुद्ध अपील की विशेष स्वीकृति देने पर सर्वोच्च न्यायालय पर कोई संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है और यह बात स्वयं सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर है।

3. **परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction)**—संविधान की धारा 143 के अनुसार उच्चतम न्यायालय को परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार भी प्राप्त है। राष्ट्रपति किसी भी संवैधानिक या कानूनी प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की सलाह ले सकता है। संविधान की व्याख्या, देशी रियासतों के साथ सन्धियों की व्याख्या आदि विषयों में भी राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय से उसके विचार पूछ सकता है। राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। अन्य सरकार अंग, व्यक्ति तथा न्यायालय भी उस परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। अन्य सरकारी अंग, व्यक्ति तथा न्यायालय भी उस परामर्श पर चलने और उसके अनुसार अपने निर्णय देने के लिए बाध्य नहीं है। अमेरिका में उच्चतम न्यायालय को परामर्श देने का ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। भारतीय उच्चतम न्यायालय के इस अधिकार की कई लेखकों द्वारा कड़ी आलोचना की गई है। आलोचकों का कहना है कि इससे बड़ी विचित्र समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं और उच्चतम न्यायालय के परामर्श संबंधी क्षेत्राधिकार से लाभ की आशा ही की है।

राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से कई बार सलाह माँगी है तथा सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी राय दी है। जैसे—राष्ट्रपति वी.वी. गिरी ने 1974 में गुजरात विधानसभा भंग होने के कारण सर्वोच्च न्यायालय से सलाह माँगी थी कि अगस्त, 1974 में होने वाले राष्ट्रपति के चुनाव में गुजरात की क्या स्थिति होगी? सर्वोच्च न्यायालय ने 5 जून, 1974 को अपनी सलाह में कहा कि धारा 62 के अन्तर्गत राष्ट्रपति का चुनाव पहले वाले राष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति से पहले होना अनिवार्य है, चाहे उस समय किसी भी प्रान्त की विधानसभा भंग ही क्यों न हो।

4. **मौलिक अधिकारों का संरक्षक (Guardian of Fundamental Rights)**—संविधान में नागरिकों को कई प्रकार के मौलिक अधिकार दिए गए हैं। सर्वोच्च न्यायालय इन मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है। मौलिक

नोट

अधिकारों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय को प्रारंभिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। यदि किसी व्यक्ति या संस्था के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो तो वह व्यक्ति या संस्था अपने मौलिक अधिकारों को मनवाने के लिए सीधे सर्वोच्च न्यायालय से अपील कर सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए कई प्रकार से प्रतिलेख (Write of Habeas Corpus), परमादेश (Write of Mandamus), प्रतिषेध (Write of Prohibition), अधिकार पृच्छा (Write of Quo-Warranto) और उत्प्रेषण (Write of Certiorari) के प्रतिलेख शामिल हैं।

मौलिक अधिकारों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय भारत के सभी न्यायालयों पर लागू होते हैं। 1967 में गोलकनाथ मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद को संविधान में दिए गए नागरिकों के मौलिक अधिकारों में संशोधन करने का अधिकार नहीं है, परन्तु बाद में सुप्रीम कोर्ट ने 24वें, 25वें और 29वें संशोधनों के विरुद्ध की नई रिट याचिकाओं (Writ Petitions) के संबंध में 24 अप्रैल, 1973 को यह ऐतिहासिक निर्णय दिया कि संसद संविधान के मूल ढाँचे के अंतर्गत मौलिक अधिकारों में संशोधन करने का अधिकार रखती है। सुप्रीम कोर्ट ने इस निर्णय ने गोलकनाथ के निर्णय को उल्टा दिया है। 42 वाँ संशोधन 1976 इस बात की व्यवस्था करता है कि संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है तथा अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत किए गए किसी भी संवैधानिक संशोधन को किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती।

5. संविधान की व्याख्या करने का अधिकार (Power to Interpret the Constitution)—सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की अन्तिम व्याख्या करने की शक्ति प्राप्त है। संविधान की धारा 141 के अनुसार “सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित किया गया कानून भारत के क्षेत्र में स्थित सभी न्यायालयों को बाध्य होगा।” भारत में संघात्मक शासन प्रणाली स्थापित की गई है। केन्द्र और राज्यों में संवैधानिक आधार पर शक्तियों का बँटवारा किया गया है। ऐसी शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों में तथा राज्यों में आपस में कई विवाद उठ खड़े होने स्वाभाविक हैं। सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे विवादों को हल करने के लिए संविधान की व्याख्या करनी पड़ती है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई संविधान की व्याख्या सर्वोत्तम और अन्तिम मानी जाती है तथा सभी पक्षों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय स्वीकार करने पड़ते हैं।

6. मुकदमों को स्थानान्तरित करने की शक्ति (Power Regarding Transference of Cases)—1976 के 42वें संशोधन के द्वारा संविधान में एक नयी धारा 139A जोड़ दी गई है। इसके अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय शीघ्र न्याय दिलवाने के लक्ष्य से किसी भी मुकदमे को एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में भेज सकता है। इसके अलावा महा-न्यायवादी (Advocate General) को यह अधिकार दिया गया है कि अगर किसी उच्च न्यायालय में कोई मामला सार्वजनिक हित से सम्बन्धित है तथा उसमें कोई महत्वपूर्ण कानूनी मुकदमा निहित है तो वह सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना करके उस मामले को उच्च न्यायालय से मँगवा कर सर्वोच्च न्यायालय में निपटा सकता है।

7. राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के चुनाव के संबंधित झगड़े (Disputes concerning the Election of President and Vice-President)—संविधान में 39वें संशोधन के पास होने से पहले राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित विवादों का निर्णय करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय के पास था और उसका निर्णय अन्तिम होता था। सन् 1975 में इस संशोधन द्वारा सर्वोच्च न्यायालय से यह अधिकार छीन लिया गया और यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के चुनाव संबंधी विवादों का निपटारा करने के लिए संसद कानून द्वारा किसी संस्था अथवा सत्ता की स्थापना करेगी। परन्तु अब 44वें संशोधन द्वारा राष्ट्रपति अथवा उप-राष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित सभी सन्देहों और विवादों की जाँच सर्वोच्च न्यायालय करेगा, तथा सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम माना जाएगा।

8. सर्वोच्च न्यायालय को न्यायालयों की कार्यवाही तथा कार्यविधि को नियमित करने के लिए नियमों का निर्माण करने की शक्ति (Power to Frame Rules to Regulate the Activities of the Courts)—सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की धारा 145 के अन्तर्गत न्यायालय की कार्यवाही तथा कार्यविधि को

नोट

नियमित करने के लिए समय-समय पर नियमों को बनाने की शक्ति दी गई है। संविधान के 42वें संशोधन के अन्तर्गत एक नई उपधारा शामिल की गई है। इस नई उपधारा के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को धारा 131A तथा 139A के अन्तर्गत की जाने वाली कार्यवाहियों को नियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति दी गई है।

9. **अपने निर्णय के पुनर्निरीक्षण का अधिकार (Power to Review its own Decision)**—सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णयों पर पुनर्विचार करने के लिए उन्हें बदलने का अधिकार है। उदाहरणस्वरूप, 'सज्जनकुमार बनाम राजस्थान राज्य' नामक मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है। सन् 1967 में गोलकनाथ के मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों के संशोधन नहीं कर सकती। 1973 में केशवानंद भारती के मुकदमें में निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है।

10. **अभिलेख न्यायालय (Court of Record)**—भारत के सर्वोच्च न्यायालय को एक अभिलेख न्यायालय में माना जाता है। इसकी सभी कार्यवाहियाँ एवं निर्णय प्रमाण के रूप में प्रकाशित किए जाते हैं तथा देश के समस्त न्यायालयों के लिए यह निर्णय न्यायिक दृष्टान्त (Judicial Precedents) के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय किसी को भी न्यायालय का अपमान (Contempt of Court) करने के दोष में सजा दे सकता है।

11. **विविध कार्य (Miscellaneous Functions)**—सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित अन्य कार्य करने की भी शक्ति प्राप्त है—

(i) सर्वोच्च न्यायालय को अपने पदाधिकारियों की नियुक्तियाँ करने का अधिकार प्राप्त है। ये नियुक्तियाँ वह स्वयं और संघीय लोक सेवा आयोग के परामर्श पर करता है।

(ii) सर्वोच्च न्यायालय देश के अन्य न्यायालयों पर शासन करता है। उसे यह देखना होता है कि प्रत्येक न्यायालय में न्याय ठीक प्रकार से हो रहा है या नहीं।

(iii) संघीय लोक सेवा आयोग के सदस्यों तथा सभापति को हटाने का अधिकार तो राष्ट्रपति के पास है, लेकिन राष्ट्रपति ऐसा तब ही कर सकेगा जब सर्वोच्च न्यायालय उसकी जाँच-पड़ताल करके उसको अपराधी घोषित कर दे।

नोट: राष्ट्रपति अथवा उप-राष्ट्रपति के चुनाव संबंधी अगर कोई मतभेद हो जाएगा तो उसका निर्णय सर्वोच्च न्यायालय करता है तथा इसका निर्णय अन्तिम निर्णय ही माना जाएगा।

सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का विस्तार (Enlargement of the Jurisdiction of the Supreme Court)—संविधान की धारा 138 तथा 139 के अनुसार संसद को कानून पास करके निम्नलिखित विषयों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में विस्तार करने का अधिकार है—

(a) उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध फौजदारी मुकदमों से संबंधित अपीलिय क्षेत्राधिकार। (b) संघीय सूची में दिया गया कोई भी विषय। (c) कोई भी ऐसा मामला जो केन्द्रीय सरकार और किसी राज्य सरकार ने समझौते द्वारा सर्वोच्च न्यायालय का दिया हो। (d) सर्वोच्च न्यायालय को संविधान द्वारा दिए गए क्षेत्राधिकार का ठीक प्रकार से प्रयोग करने के लिए कोई आवश्यक शक्ति, तथा (e) मौलिक अधिकारों को लागू करने के अतिरिक्त किसी और उद्देश्य के लिए निर्देश तथा लेख (Writs) जारी करना।

सर्वोच्च न्यायालय के विस्तृत क्षेत्राधिकार के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक बहुत शक्तिशाली तथा प्रभावशाली न्यायालय है।

उच्चतम न्यायालय की स्थिति (Position of the Supreme Court)—भारत का उच्चतम न्यायालय सरकार का एक प्रभावशाली तथा शक्तिशाली अंग माना जाता है। उच्चतम न्यायालय को अन्य देशों की भाँति व्यापक शक्तिशाली मानते हैं। संविधान द्वारा उच्चतम न्यायालय को अत्यन्त प्रभावशाली शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। उच्चतम

नोट

न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय समस्त देश में सभी न्यायालयों तथा सरकारी अंगों पर लागू होते हैं। इसे कई मामलों पर अपील सुनने की शक्ति प्राप्त है। उच्चतम न्यायालय को अपील की विशेष आज्ञा देने का भी अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय संविधान की रक्षा करता है। संविधान की व्याख्या का भी अन्तिम अधिकार उच्चतम न्यायालय को ही प्राप्त है। इसके द्वारा लोगों के मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) की भी रक्षा होती है। न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की शक्ति ने उच्चतम न्यायालय की स्थिति (Position) को और भी महत्त्वशाली तथा प्रभावशाली बना दिया है।

श्री अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर का कहना है, “भारतीय संविधान का विकास काफी सीमा तक उच्चतम न्यायालयों के कार्यों तथा इस बात पर निर्भर है कि उच्चतम न्यायालय संविधान को किस दिशा में ले जाता है।” (“The future evolution of the Indian Constitution will thus depend to a large extent upon the work of the Supreme Court and the direction given to it by that Court.”) एक और अन्य विधिवेत्ता श्री एम. सी. सीतलवाड के कथनानुसार, “भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिकार तथा क्षेत्राधिकार कॉमनवेल्थ देशों के सुप्रीम कोर्ट के अधिकार या क्षेत्राधिकार से अधिक हैं।” (“The Jurisdiction and Powers of the Supreme Court of India are wider than those exercised by the highest court in the Common Wealth or by the Supreme Court of America.”) इसी सन्दर्भ में पायली (Pylee) ने उचित ही लिखा है कि “सुप्रीम कोर्ट में इतनी विस्तृत तथा विभिन्न शक्तियों का सम्मिश्रण उसे केवल न्याय क्षेत्र में ही महान् सत्ता नहीं बनाता वरन् संविधान और कानून की रखवाली करने वाला भी बना देता है।” (“The combination of such wide and varied powers of the Supreme Court make it not only Supreme authority in the Judicial field but also the guardian of the Constitution and the law of the land.”)

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

1. भारत में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के अंतर्गत की गई थी।
2. 1986 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 17 से बढ़ाकर कर गई थी।
3. 1977 में जनता सरकार ने आपातकाल की ज्यादतियों तथा अत्याचारों की जाँच के लिए को नियुक्त किया था।
4. सर्वोच्च न्यायालय अधिकारों का संरक्षक हो।

8.4 राज्य उच्च न्यायालय (State High Court)

भारत में इकहरी न्याय व्यवस्था है। सबसे ऊँचा न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय है, उसके अधीन राज्यों में उच्च न्यायालय पाए जाते हैं। संविधान की धारा 214 के अन्तर्गत राज्य स्तर पर प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय (High Court) की व्यवस्था की गई है। (“There shall be a High Court of each state.”)

इसके साथ ही अनुच्छेद 231 में यह भी कहा गया है कि संसद दो या दो से अधिक राज्यों और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के लिए एक उच्च न्यायालय की भी व्यवस्था कर सकती है। अतः 1966 के पंजाब पुनर्गठन कानून के द्वारा संसद ने पंजाब और हरियाणा राज्यों एवं चण्डीगढ़ के केन्द्र-प्रशासित क्षेत्र के लिए एक उच्च न्यायालय स्थापित किया, जोकि चण्डीगढ़ में है। राज्यों के उच्च न्यायालय अखिल भारतीय न्याय-व्यवस्था का अंग होते हुए भी अपने आप में स्वतंत्र इकाइयाँ हैं। उनके ऊपर अपने राज्यों के विधानमण्डल या कार्यपालिका का कोई नियंत्रण नहीं है।

नोट

उच्च न्यायालय एक राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय है और एक राज्य के बाकी सभी न्यायालय उसके अधीन होते हैं।

रचना (Composition)—प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice) और कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं। इनकी संख्या संबंधित राज्यों की जरूरत को ध्यान में रखकर राष्ट्रपति द्वारा तय की जाती है। काम की अधिकता होने पर एक उच्च न्यायालय में अधिक-से-अधिक दो वर्षों के लिए अतिरिक्त न्यायाधीश (Additional Judges) भी नियुक्त किए जा सकते हैं। इस समय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 26 अन्य न्यायाधीश हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में इस समय 60 न्यायाधीश हैं।

योग्यताएँ (Qualification)—उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और मुख्य न्यायाधीशों के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ तय की गई हैं—

(i) वह भारत का नागरिक हो।

(ii) वह भारतीय संघ के किसी भी क्षेत्र में कम-से-कम 10 वर्ष तक किसी न्यायिक पद पर रह चुका हो। अथवा

देश के किसी एक उच्च न्यायालय या एक से अधिक उच्च न्यायालयों में 10 वर्षों तक वकालत कर चुका हो।

किसी व्यक्ति की वकालत का 10 वर्ष के समय की शर्त को पूरा करने के लिए उसमें वह समय भी शामिल किया जाता है जिस समय के लिए वह उच्च न्यायालय में वकालत शुरू करने के बाद किसी न्यायिक पद पर किसी न्यायाधिकरण (Tribunal) के सदस्य के पद पर नियुक्त रहा हो अथवा केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन किसी ऐसे पद पर आसीन रहा हो जिसके लिए कानून के विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता हो।

42वें संशोधन के द्वारा यह व्यवस्था की गई थी कि ऐसे व्यक्ति को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है, जो राष्ट्रपति की दृष्टि में प्रसिद्ध न्यायशास्त्री हो अथवा जो किसी ट्रिब्यूनल या केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन कानून की विशेष जानकारी रखने वाले पद पर 10 वर्ष तक कार्य कर चुका हो। लेकिन 44 वे संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को न्यायाधीश नियुक्त नहीं कर सकता, जो उसकी दृष्टि में प्रसिद्ध न्यायशास्त्री हो, जब तक कि वह व्यक्ति ऊपरलिखित अन्य योग्यताओं को पूरा न करता हो।

न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of the Judges)

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा संबंधित राज्य के राज्यपाल की सलाह से करता है। अन्य न्यायाधीशों (मुख्य न्यायाधीश को छोड़कर) की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति को उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की भी सलाह लेनी पड़ती है।

मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति प्रायः वरिष्ठता (Seniority) के आधार पर की जाती है। लेकिन 10 मई, 1974 को पंजाब और हरियाणा के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश डी. के. महाजन (D.K. Mahajan) के सेवा-निवृत्त होने पर जस्टिस नरूला को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया, जिस पर उनसे सीनियर न्यायाधीश प्रेमचन्द पंडित ने अपना त्यागपत्र दे दिया। 27 जनवरी, 1983 को केन्द्रीय सरकार ने यह घोषणा की कि देश के सभी उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश राज्य के बाहर से लिए जाएँगे तथा यह भी निर्णय लिया गया कि भविष्य में सब राज्यों के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश दूसरे राज्यों के उच्च न्यायालयों से वहाँ पर उनकी वरिष्ठता (Seniority) तथा योग्यता (Ability) के आधार पर लिए जाएँगे। 15 जुलाई, 1986 को सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को यह आदेश दिया कि वह मुख्य न्यायाधीश के अन्य राज्यों में से नियुक्त करने की नीति को लागू करे।

कार्यकाल (Term of Office)—उच्च न्यायालय का न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु तक अपने पद पर काम करता है। परन्तु वह इससे पूर्व अपने पद से त्याग-पत्र देकर अलग हो सकता है। अपनी अवधि के समाप्त होने के पश्चात् वह किसी स्थान पर सरकार की स्वीकृति के बिना कोई भी कार्य नहीं कर सकता।

नोट

पदच्युति (Removal)—यदि संसद के दोनों सदन अपने-अपने सदस्यों की कुल संख्या के बहुमत से और सदन की बैठक के उपस्थित सदस्यों के 2/3 बहुमत से किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को सदाचार या अयोग्यता (Misbehaviour or Incapacity) के अपराध में अपराधी ठहराए और इस विषय में राष्ट्रपति को सम्बोधित करे, तो राष्ट्रपति उस न्यायाधीश को पद से हटा देता है।

वेतन (Salary)—उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को अस्सी हजार रुपये मासिक तथा अन्य न्यायाधीशों को सत्तर हजार रुपये मासिक वेतन मिलता है। वेतन के अतिरिक्त उन्हें कई प्रकार के भत्ते मिलते हैं। वित्तीय संकटकालीन की स्थिति को छोड़कर अन्य किसी भी परिस्थिति में उनके वेतन तथा भत्तों में कमी नहीं की जा सकती। मार्च, 1976 में संसद ने कानून पास करके उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए रिटायर होने के पश्चात् पेंशन की भी व्यवस्था की गई।

शपथ (Oath)—धारा 219 के अन्तर्गत प्रत्येक न्यायाधीश को अपना पद ग्रहण करते समय राज्य के राज्यपाल या उसके द्वारा नियुक्त अन्य पदाधिकारी के समक्ष अपने पद की शपथ लेनी पड़ती है कि वह संविधान में आस्था रखेगा, अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करेगा व संविधान तथा कानून की रक्षा करेगा।

न्यायाधीशों का स्थानान्तरण (Transfer of Judges)—राष्ट्रपति न्यायाधीशों का एक राज्य से दूसरे राज्य में तबादला कर सकता है। आन्तरिक आपातकाल के दौरान सात न्यायाधीशों को एक उच्च न्यायालय ने अपने महत्वपूर्ण निर्णय में उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों तथा अन्य न्यायाधीशों के अन्तर्राज्यीय तबादले को वैध करार दिया। केन्द्रीय सरकार ने 27 जनवरी, 1983 को एक महत्वपूर्ण घोषणा की थी कि ऐसे मुख्य न्यायाधीश को, जिसके सेवा-निवृत्त होने में एक वर्ष अथवा कम समय रह गया हो तो उसे दूसरे राज्य के उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित नहीं किया जाएगा।

सामान्य व्यवस्थाएँ—उच्च न्यायालय का न्यायाधीश सेवानिवृत्त होने के पश्चात् सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य राज्यों के सिवाय किसी दूसरे न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता। इसका अभिप्राय यह है कि सेवा से निवृत्त होने वाला न्यायाधीश उस न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता, जहाँ से वह सेवानिवृत्त हुआ हो।

शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and Functions)—उच्च न्यायालयों के अधिकार और उनके क्षेत्राधिकार लगभग वैसा ही है जैसे कि संविधान लागू होने से पहले थे। उच्च न्यायालय का मुख्य काम मुकदमों का निर्णय करना है। परन्तु इसे न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति भी प्राप्त है। इसके अतिरिक्त इसे अपने अधीनस्थ न्यायालयों की देख-रेख करने का प्रशासकीय कार्य भी करना होता है। अतः इसकी शक्तियाँ तथा कार्यों का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है—

(i) **प्रारंभिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)**—(i) कलकत्ता, बंबई और मद्रास उच्च न्यायालयों में कुछ दीवानी व फौजदारी मुकदमे प्रथम बार में ही सीधे पेश किए जा सकते हैं। उनके लिए यह आवश्यक नहीं कि वे पहले अधीन न्यायालयों में पेश किए जायें जैसा कि अन्य राज्यों में पाया जाता है।

(ii) **नौकाधिकरण (Admiralty), इच्छा-पत्र अर्थात् वसीयत (Probate), विवाह विधि, कम्पनी विधि तथा विवाह-विच्छेद आदि के मुकदमे भी सीधे उच्च न्यायालयों के पास जा सकते हैं। उच्च न्यायालयों के अपमान के विषय में भी सभी उच्च न्यायालयों को प्रारंभिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।**

(iii) उच्च न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का भी रक्षक है। यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों पर आघात होता है, तो वह नागरिक सीधा सर्वोच्च न्यायालय में प्रार्थना-पत्र दे सकता है अथवा उच्च न्यायालय में। उच्च न्यायालय कई लेखों (Writs), जैसे—बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Writ of Habeas Corpus), परमादेश (Writ of Mandamus), प्रतिषेध (Writ of Prohibition), उत्प्रेक्षण (Writ of Certiorari), पृच्छा लेख (Writ of Quo-Warranto) के द्वारा नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है। इन लेखों (Writs) को जारी करने का अधिकार अन्य सब कार्यों के लिए भी है।

42 वें संशोधन द्वारा उच्च न्यायालयों को कुछ शक्तियों से वंचित किया गया था, लेकिन अब 44वें संशोधन के अन्तर्गत 42 वें संशोधन से पूर्व की स्थिति को पुनः स्थापित करने की व्यवस्था की गई है।

नोट

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)—सभी उच्च न्यायालयों को अपने अधीन न्यायालयों के फैसलों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है, जिन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) दीवानी (Civil) तथा

(ii) फौजदारी (Criminal)।

(i) **दीवानी (Civil)**—दीवानी मामलों में उच्च न्यायालयों में कोई भी अपील या पहली अपील होगी अथवा दूसरी अपील। पहली अपील का अर्थ यह है कि जिला न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध सीधे उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। ऐसा तभी हो सकता है जब उस मुकदमे में कानून का कोई गहरा प्रश्न उलझा हुआ हो। दूसरे, जब एक अपील जिले का न्यायालय सुन चुका है तो उसके निर्णय के विरुद्ध भी अपील उच्च न्यायालय में हो सकती है परन्तु उसमें कोई कानूनी प्रश्न उलझा होना चाहिए। उच्च न्यायालय में पहली तथा दूसरी अपीलीय क्षेत्राधिकार के अंतर्गत यदि उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने अपील सुनी है तो उसके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में फिर अपील हो सकती है। ऐसी स्थिति में कई न्यायाधीश अपील सुनते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 9 जनवरी, 1980 को पंजाब न्यायालय (संशोधन) अध्यादेश (Punjab Courts [(Amendment Ordinance, 1979)] लागू हुआ था। इस अध्यादेश के अनुसार जिस अभियोग का संबंध 20,000 रुपये से 5 लाख रुपये तक की रकम के साथ है, इस अभियोग संबंधी पहली अपील जिला न्यायाधीश के पास और जिला न्यायाधीश के निर्णय विरुद्ध अन्य अपील राज्य के उच्च न्यायालय (High Court) के पास होगी।

(ii) **फौजदारी (Criminal)**—फौजदारी मुकदमों में निम्नलिखित मामलों में निचले न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में हो सकती है—

(a) यदि सेशन जज ने किसी अपराधी को मृत्यु-दण्ड दिया हो तो उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय से होनी चाहिए। वह अपराधी स्वयं भी उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।

(b) यदि निचले न्यायालय ने किसी अपराधी को 4 वर्ष या इससे अधिक की सजा दी हो।

(c) किसी प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट के निर्णय के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में होगी।

(d) उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) में अपील की जा सकती है। ऐसी अपील प्रत्येक मुकदमे में नहीं हो सकती। कानूनानुसार जिन अभियोगों में अपील की जा सकती है, उनके लिए यह अनिवार्य है कि संबंधित उच्च न्यायालय (High Court) अपील करने की आज्ञा दे। उच्च न्यायालयों की आज्ञा के बिना उसके निर्णयों के विरुद्ध न्यायालय अपनी इच्छा के अनुसार भी किसी मुकदमे संबंधी अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत विशेष अपील करने की आज्ञा दे सकता है।

3. **प्रशासकीय शक्तियाँ (Administrative Powers)**—राज्य की न्याय व्यवस्था में उच्च न्यायालय का स्थान सबसे ऊँचा होता है। वह सभी अधीनस्थ न्यायालयों के काम की देखभाल करता है और उनके कार्य संचालन के नियम व विनियम बनाता है। इसकी प्रशासकीय शक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) वह न्यायालय अपने राज्य की सीमा में स्थित सभी न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों (Tribunals) का निरीक्षण कर सकता है, परंतु सैनिक न्यायालय इसके एक प्रशासनिक क्षेत्र से बाहर हैं।

(ii) इसे अधीनस्थ न्यायालयों के लिए कार्यवाही के नियम (Rules of Procedure) बनाने का भी अधिकार है।

(iii) यह निम्न न्यायालयों के लिए अपनी कार्यवाही का रिकार्ड रखने, हिसाब-किताब तथा कागज-पत्रों को सुरक्षित रखने की विधि के बारे में नियम बना सकता है।

(iv) इसे यह अधिकार प्राप्त है कि किसी भी न्यायालय से कोई कागज-पत्र अथवा रिकार्ड आदि मँगवाकर उसका स्वयं निरीक्षण कर सके।

(v) यह किसी मुकदमे को एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में भी बदल सकता है।

(vi) उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय (Court of Record) है। इसका भाव यह है कि इसके निर्णय और कार्य-पद्धति को दूसरी अदालतों में उदाहरण के रूप में पेश किया जा सकता है।

(vii) इसे राज्य के किसी न्यायालय से किसी मुकदमे को अपने पास मँगवाने अथवा यह आदेश देने का भी अधिकार है कि वह उस मुकदमे का निर्णय शीघ्र करें।

(viii) इसे यह देखने का अधिकार है कि इसके अधीनस्थ न्यायालय अपनी सीमा का उल्लंघन तो नहीं करते तथा अपने कर्तव्यों का पालन निश्चित विधि के अनुसार करते हैं कि नहीं।

(ix) इसे अपने अधीनस्थ न्यायालयों के कर्मचारियों के वेतन, भत्ते तथा सेवा की शर्तों आदि को निश्चित करने का भी अधिकार है। इन न्यायालयों के न्यायाधीशों की पदोन्नति, अवनति, पेंशन इत्यादि के बारे में नियम बनाने की शक्ति भी इसे प्राप्त है।

(x) संविधान के अनुच्छेद 229 के अन्तर्गत मुख्य न्यायाधीश इस न्यायालय के अपने कर्मचारियों तथा अधिकारियों की नियुक्ति करता है तथा उनकी सेवा की शर्तें आदि निश्चित करता है। ऐसा करते समय वह राज्य लोक सेवा आयोग से परामर्श करता है। यह नियम राज्यपाल की स्वीकृति मिलने पर ही लागू होते हैं। यदि उच्च न्यायालय केन्द्रीय क्षेत्र में स्थित है तो इन बातों के लिए स्वीकृति राष्ट्रपति से लेनी होती है।

4. मुकदमों को तब्दील करने का अधिकार (Right to Transfer Cases)—यदि उच्च न्यायालय को यह पता चले कि किसी अधीनस्थ न्यायालय में कोई ऐसी मुकदमा चल रहा है जिस का संबंध कानून की व्याख्या (Interpretation of Law) से है तो वह ऐसे मुकदमे को अपने पास मँगवा सकता है। वह या तो उसी मुकदमे का स्वयं निर्माण करता है या उससे संबंधित कानूनी प्रश्न की व्याख्या करके उसे अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निर्णय करने के लिए वापस भेज देता है। उच्च न्यायालय किसी एक अधीनस्थ न्यायालय में चल रहे मुकदमे को दूसरे अधीनस्थ न्यायालय में तब्दील करने का अधिकार भी रखता है।

5. अभिलेख न्यायालय (Court of Record)—उच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है। इसके सभी निर्णय और अन्तिम आदेश प्रकाशित किए जाते हैं। ये भविष्य के लिए न्याय-दृष्टान्त बन जाते हैं। वकील लोग निचले न्यायालय में बहस के समय इनका हवाला देते हैं। उच्च न्यायालय को अपना अपमान करने वाले व्यक्तियों को दण्ड देने का अधिकार है।

6. मौलिक अधिकारों का संरक्षक (Guardian of Fundamental Rights)—उच्च न्यायालय नागरिकों के मौलिक अधिकार की रक्षा करता है। यदि कोई व्यक्ति या संस्था संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करे तो उनके विरुद्ध उच्च न्यायालय में कार्यवाही की जा सकती है। उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा करने के लिए कई प्रकार के लेख जारी कर सकता है। मौलिक अधिकारों से संबंधित मुकदमे सीधे सर्वोच्च न्यायालय में भी ले जाए जा सकते हैं।

7. संविधान की व्याख्या करने का अधिकार (Right to Interpret the Constitution)—उच्च न्यायालय कुछ मामलों में संविधान की व्याख्या करने का अधिकार भी रखता है। यह संवैधानिक मुकदमों को सुनता है तथा उन पर अपना निर्णय देता है। परन्तु इसके निर्णय अन्तिम नहीं होते। उनके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

यदि राज्य विधानमण्डल कोई ऐसा कानून पास करे या राज्य कार्यपालिका ऐसा आदेश जारी करे जो संविधान का उल्लंघन करता हो तो चुनौती दिए जाने पर, उच्च न्यायालय उन्हें अवैध करार दे सकता है।

42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इस बात की व्यवस्था की गई है कि उच्च न्यायालय ऐसे मुकदमों पर विचार नहीं करेगा जिसमें किसी केन्द्रीय कानून की संवैधानिक वैधता का प्रश्न निहित हो। ऐसे मुकदमे केवल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही सुने और निपटाए जाएंगे।

8. मुकदमों को प्रमाणित करने का अधिकार (Right to Certify Cases)—उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में तभी अपील की जा सकती है जब उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करे

कि अपील करने के लिए संविधान में निश्चित की गई शर्तें पूरी होती हैं, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि वह उच्च न्यायालय के प्रमाणित न करने पर भी अपील करने की विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है।

क्षेत्राधिकार (Extension of Jurisdiction)—संविधान की धारा 230 के अनुसार संसद कानून द्वारा किसी राज्य के उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में न्यायिक कार्यों के लिए किसी केन्द्र-शासित क्षेत्र (Union Territory) को शामिल कर सकता है या उसके क्षेत्राधिकार से बाहर निकाल सकता है।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की स्वतंत्रता (Provisions for the Independence of High Court Judges)

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के स्वतंत्रता के लिए संविधान के द्वारा वैसे ही उपबन्धों की व्यवस्था की गई है जैसे उपबन्धों की व्यवस्था सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए है। संक्षेप में, ये उपबन्ध निम्नलिखित हैं:

1. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और यह नियुक्ति न्यायिक योग्यता वाले व्यक्तियों के परामर्श के आधार पर की जाती है।
2. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय तथा उन उच्च न्यायालयों जिनका वह न्यायाधीश नहीं रह चुका है, को छोड़कर अन्य किसी न्यायालय या पदाधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकता है।
3. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन संविधान द्वारा निश्चित कर दिया गया है और पद ग्रहण के बाद उनके वेतन, भत्ते आदि में कोई कमी नहीं की जा सकती। वेतन, भत्ते, पेंशन तथा छुट्टी के संबंध में नियम निर्माण का अधिकार संसद को प्राप्त है, न कि राज्य के विधानमण्डल को।
4. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल सुरक्षित है। न्यायाधीश अवकाश ग्रहण की आयु तक कार्य करते हैं और इस अवधि के पूर्व न्यायाधीशों को महाभियोग की विशेष प्रक्रिया के आधार पर ही हटाया जा सकता है।
5. उच्च न्यायालय के अधिकारियों की नियुक्ति इस न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश करता है तथा उनकी सेवा शर्तें भी वही निर्धारित करता है।
6. न्यायाधीशों का वेतन तथा उच्च न्यायालय का प्रशासनिक व्यय संघ या राज्य सरकार की संचित निधि पर भारित है, इसलिए उन पर संसद या राज्य विधानमण्डल में मतदान नहीं हो सकता।

इस प्रकार भारतीय संविधान द्वारा उच्च न्यायालयों की पूर्ण स्वतंत्रता की व्यवस्था की गयी है और भारतीय संघ के विभिन्न उच्च न्यायालयों के अब तक के कार्य के आधार पर कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय अपने कर्तव्यपालन में पूर्णतया स्वतंत्र और निष्पक्ष रहे हैं।

स्थिति (Position)—उपर्युक्त कार्यों तथा शक्तियों से ज्ञातव्य है कि वह अपने राज्य में सबसे बड़ा न्यायालय होता है। राज्य के अन्य सभी न्यायालय इसके अधीन होते हैं। स्वयं इस पर राज्य सरकार का कोई नियन्त्रण नहीं होता। वह इसकी रचना तथा शक्तियों आदि के विषय में कोई कानून नहीं बना सकती। इसके न्यायाधीशों को अपने पद की पूरी-पूरी सुरक्षा प्राप्त है और सरकार उन्हें किसी प्रकार का कोई प्रलोभन नहीं दे सकती। इसी कारण यह न्यायालय अपने कर्तव्यों को निष्ठा, ईमानदारी, स्वतंत्रता से निभाने में सफल हुए हैं। 42वें संशोधन द्वारा उच्च न्यायालय की शक्तियों को सीमित किया गया था, लेकिन संविधान के 43वें तथा 44वें संशोधन द्वारा इसकी स्थिति बिल्कुल 42वें संशोधन से पूर्व की स्थिति स्थापित की गई है।

सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के न्यायाधीशों की भाँति राज्य के उच्च न्यायालयों (High Court) के न्यायाधीश अपने पद के संबंध में कार्यपालिका तथा विधानपालिका के प्रभाव से पर्याप्त सीमा तक स्वतंत्र है। श्री एम. सी. छागला (M.C. Chhagla) के अनुसार, “हमारे संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के माध्यम से ऐसी न्यायपालिका स्थापित की है जिसे समाप्त नहीं किया जा सकता तथा जो किसी भी

रूप में विधानपालिका एवं कार्यपालिका के नियन्त्रणाधीन नहीं है।” (“Our Constitution has set up a judiciary, both in High Courts and the Supreme Court, which is irremovable and which is no way controlled by the legislature and the Executive”)

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

5. राज्य के न्यायाधीश को अपना पद से ग्रहण करते समय किसके समक्ष शपथ लेनी पड़ती है?

(a) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश	(b) राज्यपाल
(c) राष्ट्रपति	(d) उपरोक्त में कोई नहीं।
6. निम्नलिखित में से कौन दीवानी मुकदमे के शामिल नहीं है?

(a) पति-पत्नी के बीच तलाक का मामला	(b) सम्पत्ति विवाद
(c) लूटपाट का मामला	(d) उपरोक्त सभी
7. संविधान की किस धारा के अनुसार संसद कानून द्वारा किसी राज्य के उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में न्यायिक कार्यों के लिए किसी केन्द्रशासित क्षेत्र को शामिल कर सकता है अथवा क्षेत्राधिकार के बाहर कर सकता है?

(a) धारा 230	(b) धारा 323
(c) धारा 320	(d) धारा 244

टास्क: सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति कैसे होती है, समझाइए।

8.5 न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review)

संभावित वैधानिक और कार्यकारी त्रुटियों और आवश्यकता से अधिक शक्ति प्रयोग किए जाने की संभावना के विरुद्ध आवश्यक उपचार के रूप में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की व्यवस्था के महत्त्व को पूर्ण रूप से मान्यता देते हुए, संविधान निर्माताओं ने इसको भारतीय न्यायिक प्रणाली की एक विशेषता के रूप में अपनाया। परंतु उन्होंने संविधान के किसी एक अनुच्छेद में इस व्यवस्था को लिखने की अपेक्षा, इसको अलग-अलग संवैधानिक व्यवस्थाओं के द्वारा निर्धारित करने का निर्णय किया है। उन्होंने अमरीकी संविधान के उदाहरण की पैरवी करने का निर्णय किया परन्तु उसी समय भारतीय समाज की आवश्यकताओं और स्थितियों के अनुसार इसको परिवर्तित भी किया। भारत का संविधान देश का सर्वोच्च कानून है और भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पास संविधान की व्याख्या और सुरक्षा का सर्वोच्च उत्तरदायित्व है। यह लोगों के मौलिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है। ऐसे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, सर्वोच्च न्यायालय वैधानिक और कार्यकारी कार्यों और कानूनों की संवैधानिकता की जांच करने की शक्ति का प्रयोग करता है। न्यायालय की इस शक्ति को न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति कहा जाता है। न्यायिक पुनर्निरीक्षण में जब किसी भी कानून/आदेश को अथवा इसके किसी भाग को असंवैधानिक पाया जाता है, तो न्यायालय द्वारा उसे रद्द कर दिया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय की इस शक्ति को न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति कहा जाता है। राज्य उच्च न्यायालय भी ऐसी शक्ति का प्रयोग करते हैं परन्तु उनके निर्णयों को सर्वोच्च न्यायालय की ओर से रद्द किया सा सुधारा या रोका जा सकता है। इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय के पास भारत की विधानपालिकाओं और कार्यपालिकाओं के सभी कानूनों/नियमों पर न्यायिक पुनर्निरीक्षण करने की अंतिम शक्ति है।

नोट

न्यायिक पुनर्निरीक्षण : अर्थ और परिभाषा (Judicial Review : Meaning and Definition)

न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायालय की वह शक्ति होती है जिसके आधार पर संविधान की व्याख्या की जाती है और विधानपालिका, कार्यपालिका या प्रशासन के उन कार्यों को रद्द किया जाता है जो सर्वोच्च कानून अर्थात् संविधान के विरुद्ध पाए जाते हैं। डिमॉक और डिमॉक के शब्दों में, “न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायलयों की ओर से उन मुकदमों से किया जाने वाला परीक्षण है जो वास्तव में वैधानिक अधिनियमों और कार्यकारिणी या प्रशासनिक कार्यों से उनके सामने होते हैं और यह निर्णय करने के लिए है कि उनका लिखित संविधान के द्वारा निषेध किया गया है या इसको दी शक्तियों से अधिक है कि नहीं।” लिखित संविधान की न्यायालय की ओर से व्याख्या करने के पश्चात् यदि यह पाया जाता है कि कोई कानून या कानून का कोई भाग संविधान के किसी अनुच्छेद का उल्लंघन करता है तो उस कानून या उस कानून के किसी भाग को न्यायालय असंवैधानिक घोषित करके रद्द कर देता है।

साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायालय की शक्ति है जिसके द्वारा यह:

(i) विधानपालिका और कार्यपालिका के कानूनों का पुनर्निरीक्षण करता है, केवल उन मुकदमों में जो इसके सामने आते हैं।

(ii) कानूनों की संवैधानिक वैधता का निर्धारण करता है।

(iii) उस कानून या इसके किसी भाग को रद्द कर देता है जो असंवैधानिक या संविधान के विरुद्ध पाया जाता है।

न्यायिक पुनर्निरीक्षण स्वचालित नहीं होता है। न्यायालय अपने-आप न्यायिक पुनर्न्यायिक नहीं कर सकता। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा तब ही किया जा सकता है जब किसी मुकदमे के दौरान या किसी विशेष मुकदमे के द्वारा किसी कानून को उसके सामने चुनौती दी जाती है। इससे आगे, यदि न्यायालय किसी कानून या इसके किसी भाग को रद्द करता है, तो निर्णय, निर्णय देने की तिथि से लागू हो जाता है तथा पिछली समस्त कार्यवाही जो इस कानून के आधार पर की जा चुकी हो रद्द नहीं होती। जब न्यायालय किसी कानून को गैर-संवैधानिक घोषित करके रद्द करता है तो उसको यह स्पष्ट करना पड़ता है कि इस कानून ने किस संवैधानिक अनुच्छेद का उल्लंघन किया है। न्यायालय को कानून को रद्द करने के कारणों को भी स्पष्ट करना होता है। इस शक्ति का प्रयोग करके, वैधानिक और कार्यकारिणी के अनावश्यक और आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप के विरुद्ध लोगों के मौलिक अधिकारों और संविधान की सुरक्षा और व्याख्या करने का कर्तव्य न्यायालय निभाता है।

भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review in India)

भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की उत्पत्ति को समझाते हुए, जस्टिस पी. बी. मुखर्जी ने स्पष्ट किया, “भारत में यह संविधान ही है जो सर्वोच्च है और संसद के साथ-साथ राज्य विधान सभाओं को न केवल संविधान की सातवीं सूची में दर्ज तीन सूचियों में वर्णित उन संबंधित क्षेत्रों की सीमाओं के अंदर ही कार्य करना होता है, बल्कि इसके साथ-साथ संविधान के भाग III के अधीन दिए गए मौलिक अधिकारों को दी गई संवैधानिक सुरक्षा को विश्वसनीय बनाना होता है। न्यायालय किसी भी ऐसे कानून को रद्द कर देती है जोकि संविधान का उल्लंघन करने का दोषी पाया जाता है।”

भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण का संवैधानिक आधार (Constitutional Basis of Judicial Review in India)

संविधान का कोई भी एक अनुच्छेद न्यायालय की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की व्याख्या नहीं करता। इसकी संवैधानिक स्थिति और विधि अनुकूलता उन व्यवस्थाओं से उत्पन्न होती है जो यह घोषित करती है कि संविधान देश का सर्वोच्च कानून है और संविधान की सुरक्षा और व्याख्या करने की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय के पास है। संविधान के कई अनुच्छेद न्यायिक पुनर्निरीक्षण संवैधानिक आधार प्रदान करते हैं:

नोट

(i) **अनुच्छेद 13 (Article 13)**—यह अनुच्छेद न्यायालय की न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति को आधार प्रदान करता है। इसमें लिखा गया है : “राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगा जो भाग III के द्वारा दिए अधिकारों को वापस लेता या कम करता हो और इस अनुच्छेद के उल्लंघन में बनाया कानून विरोध के कारण रद्द हो जाएगा।” दूसरे शब्दों में यह निर्धारित करता है कि कानून, जो मौलिक अधिकारों के विरुद्ध हैं, रद्द किए जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के पास उनकी संवैधानिकता का निर्णय करने की शक्ति है।

(ii) **अनुच्छेद 32 (Article 32)**—यह अनुच्छेद संविधान के भाग III में दिए मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंच करने का अधिकार देता है। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग करता है।

(iii) **अनुच्छेद 131 और 132 (Article 131 & 132)**—यह दो अनुच्छेद सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक और अपीलीय अधिकार-क्षेत्रों का क्रमवार वर्णन करते हैं। इसमें केन्द्र-राज्य झगड़ों से निपटने, राज्यों के मध्य झगड़ों को निपटने की शक्ति और संविधान की व्याख्या करने की सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति शामिल है। इन शक्तियों का प्रयोग करते समय, सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग करता है।

(iv) **अनुच्छेद 226 (Article 226)**—अनुच्छेद 226 राज्य उच्च न्यायालयों को न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति का प्रयोग का आधार प्रदान करता है जो संविधान के भाग III की ओर से दिए लोगों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए प्रयोग की जाती है।

(v) **अनुच्छेद 246 (Article 246)**—अनुच्छेद 246 के अधीन संघ और राज्यों में वैधानिक शक्तियों का विभाजन किया गया है। क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय को संघ-राज्य झगड़ों के सभी मुकद्दमों का निर्णय करने की शक्ति दी गई है जो उनके बीच शक्तियों के विभाजन के संबंध में पैदा होते हैं, यह अनुच्छेद भी न्यायिक पुनर्निरीक्षण को आधार प्रदान करता है।

(vi) **अनुच्छेद 124 (6) और 219 (Article 124 (6) & 219)**—इन अनुच्छेदों के अधीन, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को क्रमवार कानून के द्वारा स्थापित संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ उठानी पड़ती है।

इन सभी विशेष लोगों ने न्यायालय की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति को आधार प्रदान किया जाता है। डॉ० एस० सी० डैश के शब्दों में, “न्यायपालिका का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह संविधान को विधानपालिका और कार्यपालिका के आक्रमणों के विरुद्ध सर्वोच्च रखे...”।

यह सभी अनुच्छेद भारत में न्यायालयों के न्यायिक पुनर्निरीक्षण की कानूनी और संवैधानिक आधार प्रदान करते हैं। इनके अतिरिक्त संविधान की कई अन्य विशेषताएँ भी न्यायालयों के न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति को आधार प्रदान करती हैं।

1. **सीमित सरकार का सिद्धान्त (The Principle of Limited Government)**—संविधान स्पष्ट रूप में सरकार की शक्तियों को परिभाषित करता है। सरकार केवल परिभाषित शक्तियों का ही प्रयोग कर सकती है और असीमित शक्तियाँ नहीं। सरकार का कोई अंग अपने निर्धारित अधिकार-क्षेत्र से बाहर नहीं जा सकता। यह देखना न्यायालयों का उत्तरदायित्व होता है कि सरकार और इसका प्रत्येक अंग संविधान के द्वारा परिभाषित अधिकार क्षेत्र के अंदर ही कार्य करें और यदि इस सिद्धान्त का उल्लंघन हो तो न्यायालय उल्लंघन करने वाले कार्य को रद्द कर सकते हैं।

2. **संघवाद (Federalism)**—संघीय प्रणाली में, न्यायपालिका के पास अतिरिक्त उत्तरदायित्व अर्थात् संविधान की सर्वोच्चता की सुरक्षा करना होता है और संघ व राज्य सरकारों द्वारा अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों से बाहर जाने पर प्रतिबन्ध भी होता है। इसके लिए भी न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति का न्यायालय के द्वारा प्रयोग अनिवार्य हो जाता है।

3. **लिखित अधिकार (Written Rights)**—जब कभी संविधान लोगों के लिए लिखित तथा कानून द्वारा लागू करने योग्य अधिकारों की व्यवस्था करता है तो न्यायिक पुनर्निरीक्षण की नींव रखता है। न्यायालयों को इन

नोट

अधिकारों को लागू करने और इनकी सुरक्षा करने की शक्ति मिल जाती है। भारत में संविधान में लिखित अधिकारों का बिल संवैधानिक उपचारों के अधिकार सहित शामिल है जो संविधान की मौलिक संरचना का एक भाग है। इसके लिए यह न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रदान करता है।

4. **न्यायपालिका की ओर से न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति का प्रयोग** (The Exercise of Judicial Review Power by the Judiciary)—1950 में संविधान के लागू होने के पश्चात् से आज तक भारत में न्यायपालिका निरन्तर न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति का प्रयोग करती आ रही है। इसने इस शक्ति को विधानपालिका और कार्यपालिका के कई कानूनों/आदेशों को रद्द करने के लिए प्रयोग किया जिनको इसने असंवैधानिक पाया। सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय जो इन मुकदमों में दिए गए—गोपालन मुकदमा, गोलकनाथ मुकदमा, केशवानंदा भारती मुकदमा, मिनर्वा मिलज्ज मुकदमा और कई अन्यो में भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण के काफी प्रमाण मिलते हैं और इसकी मान्यता सरकार और लोगों की ओर से मिलती है।

5. **42वें और 43वें संशोधन** (42nd and 43rd Amendments)—42वें और 43वें संशोधन ने न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रणाली की संवैधानिक उचित को शक्तिशाली किया है। 42वें संशोधन अधिनियम के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और राज्य उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्तियों पर कोई प्रतिबन्ध लगाए गए और 43वें संशोधन अधिनियम के द्वारा यह प्रतिबन्ध हटा दिया गए। इस प्रक्रिया में, न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रणाली को भारतीय संवैधानिक प्रणाली के मूल्यवान और अभिन्न भाग के रूप में मान्यता मिली है।

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के पास विधानपालिका और कार्यपालिका के कानूनों/आदेशों/नियमों की संवैधानिक उचितता का निरीक्षण करने की शक्ति है और इस शक्ति को न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति कहा जाता है।

9.4 भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण : विशेषताएँ (Judicial Review in India : Features)

भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रणाली की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैं:

1. सर्वोच्च न्यायालय और राज्य उच्च न्यायालयों दोनों न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग करते हैं, परन्तु किसी कानून के संवैधानिक औचित्य का निर्णय करने की अंतिम शक्ति भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पास है।
2. सभी संघीय और राज्य कानूनों, कार्यपालिका आदेशों और संवैधानिक संशोधनों के संबंध में न्यायिक पुनर्निरीक्षण किया जा सकता है।
3. संविधान की 9वीं सूची में दर्ज अधिनियमों के संबंध में न्यायिक पुनर्निरीक्षण नहीं किया जा सकता।

क्या आप जानते हैं: न्यायिक पुनर्निरीक्षण कानून के प्रश्नों पर ही लागू होता है। इसका प्रयोग राजनीतिक मुद्दों के संबंध में नहीं किया जा सकता।

5. न्यायिक पुनर्निरीक्षण स्वचालित नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय कानूनों पर न्यायिक पुनर्निरीक्षण करने की कार्यवाही स्वयं अपने आप नहीं रकता। यह तब ही कार्यवाही करता है जब कानूनों को इसके सामने चुनौती दी जाती है जब किसी मुकदमे की कार्यवाही के दौरान किसी कानून के संवैधानिक औचित्य का प्रश्न इसके सामने उठाया जाता है।

6. सर्वोच्च न्यायालय चुनौती दिए कानूनों/आदेशों के पुनर्निरीक्षण के पश्चात् यह निर्णय कर सकती है:

- (i) कानून संवैधानिक रूप में उचित है। इस मामले में कानून पहले की तरह लागू रहता है, अथवा
- (ii) कानून संवैधानिक रूप में अनुचित है। इस संबंध में कानून निर्णय की तिथि से लागू होना बंद हो जाता है, अथवा

नोट

(iii) कानून के केवल कुछ भाग या एक भाग अनुचित है। इस स्थिति में केवल अनुचित भाग लागू नहीं रहता और दूसरे भाग लागू रहते हैं। परन्तु यदि अनुचित पाए भाग कानून के लिए इतने महत्वपूर्ण हों कि दूसरे भाग इनके बिना न लागू हो सकें, तो समस्त कानून को ही अनुचित ठहराया जाता है और रद्द कर दिया जाता है।

7. न्यायालय की ओर से असंवैधानिक और अयोग्य घोषणा करने के दिन से पहले कानून के आधार पर किए गए कार्य विद्यमान रहते हैं।

8. सर्वोच्च न्यायालय अपने पहले निर्णयों में संशोधन कर सकता है या उनको रद्द कर सकता है।

9. कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया बनाम कानून की उचित प्रक्रिया (Procedure Established by Law vs. Due Process of Law) : भारत में न्यायिक पुनर्निरीक्षण जिस सिद्धान्त के आधार पर शासित किया जाता है वह है : “कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया” न कि “कानून की उचित प्रक्रिया” जो अमेरिका में लागू है। ‘कानून की उचित प्रक्रिया’ के अधीन न्यायपालिका कानून की संवैधानिकता की परख करने के लिए दोहरी परीक्षा करती है। पहला, न्यायालय परख करता है कि क्या कानून बनाने के लिए संस्था ने प्राप्त शक्तियों की सीमाओं के अंदर कार्यवाही की है और निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्य किया है अथवा नहीं। दूसरा, न्यायालय परख करता है कि क्या कानून प्राकृतिक न्याय के उद्देश्यों को पूर्ण करता है कि क्या यह एक उचित कानून है या नहीं। यदि कानून इन दोनों आधारों में से किसी एक पर भी पूरा नहीं उतरता तो इसको असंवैधानिक मान कर रद्द कर दिया जाता है। इससे विपरीत ‘कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया’ के सिद्धान्त के अधीन जैसे भारत के संविधान में दर्ज किया गया है न्यायालय केवल यह तय करता है कि क्या कानून बनाने वाली संस्था ने संविधान के द्वारा दी गई शक्तियों के अनुसार कानून बनाया है और निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया है या नहीं। इस सिद्धान्त के अधीन न्यायिक पुनर्निरीक्षण का क्षेत्र ‘कानून की उचित प्रक्रिया’ सिद्धान्त के अधीन क्षेत्र से सीमित होता है। ‘कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया’ अधीन, न्यायालय केवल कानून का पुनर्निरीक्षण यह निर्णय करने के लिए करता है कि क्या इसको संविधान के द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार बनाया गया है या नहीं, और इसके लिए इसका क्षेत्र सीमित होता है। गोपालन बनाम मद्रास राज्य मुकदमे में दोषी की ओर से यह तर्क दिया गया कि ‘कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया’ और ‘कानून की उचित प्रक्रिया’ में कोई अन्तर नहीं होता। परन्तु भारत के अटारनी जनरल ने यह मत दिया कि कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया की गारंटी ‘योग्य विधानपालिका’ के द्वारा बनाए कानून के द्वारा निर्धारित प्रक्रिया की सुरक्षा या अन्य कुछ नहीं। न्यायालय अटारनी जनरल की ओर से प्रकट किए गए विचार से सहमत हो गया। इस प्रकार भारत में न्यायालय उस समय ही कानून को रद्द घोषित कर सकता है जब वह पाए कि कानून बनाने वाली विधानपालिका ने उचित प्रक्रिया का प्रयोग कानून-निर्माण के समय नहीं किया था। परन्तु वास्तविक व्यवहार में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के औचित्य का निर्णय करने के लिए बहुत बार कानूनों ने औचित्य की जांच व्यापक रूप में की है। इसने कभी भी संवैधानिक संशोधनों या कानूनों के द्वारा मौलिक अधिकारों पर संसद की ओर से लगाए प्रतिबन्धों के औचित्य का पुनर्निरीक्षण करने में झिझक नहीं दिखाई।

‘कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया’ का पालन करते हुए और ‘कानून की उचित प्रक्रिया’ को रद्द करते हुए भारतीय संविधान न्यायिक सर्वोच्चता और संसदीय प्रभुसत्ता के दोनों सिद्धान्तों को रद्द करता है जैसे यह क्रमवार अमरीका और इंग्लैण्ड में प्रचलित हैं। यह केवल मध्य मार्ग ग्रहण करता है। विधानपालिका के पास सर्वोच्चता है, परन्तु संविधान से प्राप्त क्षेत्र के संबंध में ही और इसका प्रयोग यह कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया की सीमाओं के अंदर ही करती है।

नोट: सर्वोच्च न्यायालय विधानपालिका की ओर से बनाए गए कानूनों पर न्यायिक पुनर्निरीक्षण कर सकता है परन्तु संवैधानिक कानूनों के पीछे विद्यमान भावना का पुनर्निरीक्षण नहीं कर सकता।

10. किसी कानून को रद्द घोषित करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की उन व्यवस्थाओं/धाराओं जिनका कानून उल्लंघन करता है, के बारे स्पष्ट बतलाना होता है। इसको उस कानून की अवैधता और असंवैधानिकता को सिद्ध करना होता है जिसको रद्द किया जाता है।

नोट

न्यायिक पुनर्निरीक्षण का व्यवहार और असंवैधानिक घोषित किए विधान की सीमा (Working of Judicial Review and the Extent of legislations declared unconstitutional)

1950 में संविधान के लागू होने के पश्चात् आज तक सर्वोच्च न्यायालय ने कई बार न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग किया है। इसने कुछ बहुत ऐतिहासिक निर्णय सुनाए हैं जिसने भारत के संवैधानिक विकास के व्यवहार को दिशा दी। भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास की सुरक्षा के लिए विधानपालिका की ओर से बनाए कानूनों के विरुद्ध 'प्रतिक्रियावादी तीसरे सदन' के रूप में कार्यवाही करने के बिना, सर्वोच्च न्यायालय ने लोगों के मौलिक अधिकारों और संविधान के संरक्षक के रूप में एक अत्यंत प्रशंसनीय भूमिका निभाई है।

इसने अपने निर्णयों को परिवर्तित करने में भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। यदि इसने देखा कि उनमें कोई त्रुटि हो गई या उनके संबंध में यह आवश्यक हो गया था कि लोगों की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं और वातावरण में परिवर्तन के कारण पहले दिए गए निर्णयों में संशोधन करना आवश्यक था। गोपालन मुकदमा, रमेश थापर मुकदमा, कमेश्वर प्रसाद मुकदमा, संकरी प्रसाद मुकदमा, चंपाकम दोरायराजन मुकदमा, गोलक नाथ मुकदमा, केशवानंद भारतीय मुकदमा, मिनर्वा मिलज्ज मुकदमा और कई अन्य मुकदमों में, न्यायालय ने कठोरता से कई कानूनों या उनके कई भागों को रद्द किया जिनका असंवैधानिक पाया गया था। इसने बहुत कठोर और स्पष्ट बयान दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 368 के अधीन प्रक्रिया के अनुसार संसद के पास संविधान में संशोधन करने की शक्ति है परन्तु यह संविधान की मौलिक संरचना को नहीं बदल सकती। न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त की वकालत करने में नहीं पड़ा। इसने उदार, स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका के रूप में उदारतापूर्ण कार्य किया है। इसने प्रगतिशील कानूनों को रोकने का प्रयास नहीं किया। इसने भारत के लोगों के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय की प्राप्ति के लिए अपनी भूमिका निभाई है। इसने सदैव समाज के कमजोर वर्गों और अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के पक्ष में संवैधानिक निर्देश और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की पैरवी की है।

जब संसद ने संविधान की नौवीं सूची में अधिक-से-अधिक कानून शामिल करके न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति को सीमित करने का प्रयास किया तो सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की इस कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए गोलकनाथ मुकदमे में यह निर्णय दिया कि मौलिक अधिकार पवित्र थे और संसद इनको सीमित या समाप्त करने के लिए संविधान में संशोधन नहीं कर सकती थी। परन्तु, बाद में केशवानंदा भारती मुकदमे में इसने गोलकनाथ मुकदमे में दिए अपने निर्णय को बदल दिया, 24वें और 25वें संशोधन को स्वीकार करके वैध करार दिया परन्तु अनुच्छेद 31 में किए परिवर्तनों के एक भाग को रद्द कर दिया। अपने मिनर्वा मिलज्ज मुकदमे के निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने मौलिक अधिकारों (44वें संशोधन अधिनियम) से सम्पत्ति के अधिकार को निकाला जाना उचित बताना परन्तु 42वें संशोधन के द्वारा दर्ज अनुच्छेद 31-सी की कुछ व्यवस्थाओं को रद्द कर दिया। मौलिक अधिकारों की निर्देशक सिद्धान्तों पर श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने भाग IV में दिए कुछ निर्देशकों को लागू करने के लिए अनुच्छेद 14, 19 और 31 में संशोधन करने की संसद की शक्ति को स्वीकार भी किया। इसने इस प्रकार सामाजिक न्याय के हित में कार्य किया।

इस प्रकार कई वर्षों से, सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्निरीक्षण की अपनी शक्ति का प्रभावशाली और न्यायकारी प्रयोग किया है। इसने इसका प्रयोग वैधानिक और कार्यकारी दमन के विरुद्ध लोगों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं की सुरक्षा के लिए और संविधान की व्याख्या और सुरक्षा के लिए किया है।

न्यायिक पुनर्निरीक्षण का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal of Judicial Review)

कुछ आलोचकों ने न्यायाधिक-पुनर्निरीक्षण के विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियाँ उठाई हैं।

1. **अलोकतन्त्रीय (Undemocratic)** : आलोचक न्यायिक पुनर्न्यायिक की प्रणाली को अलोकतन्त्रीय प्रणाली मानते हैं जो न्यायालय को राष्ट्रीय जनमत और लोगों की प्रभुसत्तापूर्ण इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाली विधानपालिका की ओर से पास किए कानूनों के भाग्य का निर्णय करने के योग्य बनाती है।

नोट

2. **स्पष्टता की कमी (Lack of Clarity)**—भारत का संविधान न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रणाली की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता। यह शक्ति अधिकतर संविधान की कई धाराओं की व्याख्या पर गर्भित शक्तियों (Implied Powers) के सिद्धान्त पर निर्भर करती है।

3. **प्रशासनिक समस्याओं का स्रोत (Source of Administrative Problems)**—यह प्रणाली समस्याओं का एक स्रोत रही है। जब किसी कानून या इसका किसी भाग/भागों को सर्वोच्च न्यायालय की ओर से असंवैधानिक घोषित करके रद्द किया जाता है तो निर्णय उस तिथि से लागू हो जाता है जिस दिन यह दिया जाता है। सर्वोच्च न्यायालयों की ओर से सुने जाते मुकदमे में जब किसी कानून की असंवैधानिकता का प्रश्न उठता है तो ही न्यायिक पुनर्निरीक्षण किया जाता है। कानून के लागू होने के 5 या 10 या अधिक वर्षों के पश्चात् अब ऐसा मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय के सामने आ सकता है। इस प्रकार जब न्यायालय इसको रद्द करता है तो यह प्रशासनिक समस्याएँ पैदा करता है। कई बार न्यायिक पुनर्निरीक्षण एक समस्या समाधान करने से अधिक समस्याएँ पैदा कर देता है।

4. **प्रतिक्रियावादी (Reactionary)**—कई आलोचक न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रणाली को प्रतिक्रियावादी प्रणाली समझते हैं। यह समझते हैं कि किसी कानून के संवैधानिक औचित्य का निर्णय करते समय, सर्वोच्च न्यायालय सामान्य रूप में कानूनी और रूढ़िवादी दृष्टिकोण अपनाता है और सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए विधानपालिका की ओर से निर्मित प्रगतिशील कानून रद्द कर देता है। न्यायिक पुनर्निरीक्षण, इस प्रकार विधानपालिका पर एक रूढ़िवादी रोक है।

5. **देरी करने वाली प्रणाली (Delaying System)**—न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रणाली एक देरी और अकुशलता का एक स्रोत रही है। जब एक कानून अस्तित्व में आ जाता है तो कई बार लोग और विशेषकर कानून लागू करने वाली एजेंसियाँ धीरे चलने का निर्णय करती हैं या किसी कानून को लागू करने के संबंध में हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाती हैं। वह तब तक प्रतीक्षा करने को प्राथमिकता देती हैं जब तक सर्वोच्च न्यायालय अपने किसी मुकदमे में इसके संवैधानिक औचित्य का निर्णय नहीं कर लेता। न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रक्रिया अपने-आप में एक धीमी और देरी करने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार न्यायिक पुनर्निरीक्षण देरी और अकुशलता का प्रायः एक स्रोत बनती है।

6. **संसद को गैर-उत्तरदायी बनाती है (Makes the Parliament Irresponsible)**—आलोचक आगे तर्क देते हैं कि न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रणाली संसद को कई बार गैर-उत्तरदायी बनाती है क्योंकि यह किसी कानून को पास करते समय यह सोच लेती है कि सर्वोच्च न्यायालय अपने-आप इसकी संवैधानिकता/औचित्य का निर्णय कर लेगा।

7. **न्यायिक निरंकुशता (Fear of Judicial Tyranny)**—सर्वोच्च न्यायालय की एक पीठ, संवैधानिक मुकदमा जो इसके सामने आता है, को सुनती है और साधारण बहुमत से इसका निर्णय करती है, बहुत बार इस ढंग से एक ही न्यायधीश का तर्क ही किसी उस कानून के भाग्य का निर्णय देता है जो प्रभुसत्ताधारी लोगों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के बहुमत के द्वारा पास किया गया होता है।

8. **सर्वोच्च न्यायालय की ओर से अपने ही निर्णयों को परिवर्तित करना (Reversal of its Own Decisions by the Supreme Court)**—यह देखा गया है कि कई अवसरों पर सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णयों को स्वयं ही रद्द कर देता है अथवा परिवर्तित कर देता है। गोलकनाथ मुकदमे में दिए निर्णय ने पहले निर्णयों को बदल दिया और केशवानंद भारती मुकदमे में निर्णय ने पहले वाली स्थिति पुनः स्थापित कर दी। उसने एक कानून को पहले उचित ठहराया, फिर इसे अनुचित ठहराया और फिर इसको उचित ठहराया। ऐसे परिवर्तन उसकी एक ही जैसे मुकदमों के संबंध में अलग-अलग पीठों के द्वारा और निर्णयों में व्यक्तिगत सोच के तत्त्व का प्रदर्शन करते हैं।

9. **न्यायालय के सम्मान पर तनाल का एक स्रोत (A Source of Strain on the Prestige of the Court)**—सर्वोच्च न्यायालय कई बार न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग करते हुए राजनीतिक चर्चा का केन्द्र बन जाता है। गोलकनाथ मुकदमे के निर्णय के पश्चात् नाथ पाई बिल पर हुई संसद चर्चा ने स्पष्ट रूप में इस तथ्य

नोट

को उभारा था। न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायालय के सम्मान के सम्मान को कम कर सकता है और इसको राजनीतिक चर्चा के अखाड़े में ला सकता है।

10. **न्यायपालिका और संसद के मध्य गतिरोधों की संभावना (Possibility of Deadlocks between the Judiciary and the Parliament)**—जब सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करके रद्द करता है, तो प्रायः संसद संविधान के संशोधन से या अन्य कानून बनाने के निर्णयों के द्वारा इस पर नियंत्रण करने का प्रयास करती है। इस प्रक्रिया में न्यायपालिका और संसद के मध्य गतिरोध और विवाद पैदा हो जाते हैं। मौलिक अधिकारों (भाग III) और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों (भाग IV) के मध्य संबंधों के मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय और संसद के दृष्टिकोणों और व्यवहार में अन्तर ने दोनों के मध्य गतिरोध उत्पन्न कर दिया था। ऐसे गतिरोध और विवाद भविष्य में भी उत्पन्न हो सकते हैं।

इन सभी आधारों पर आलोचकों ने भारत में चल रही न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रणाली की आलोचना की है।

न्यायिक पुनर्निरीक्षण का औचित्य (Justification of Judicial Review):

न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति के समर्थक, और उनकी संख्या काफी अधिक है, आलोचकों के तर्कों को उचित नहीं मानते। वे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि न्यायिक पुनर्निरीक्षण भारतीय उदारवादी लोकतन्त्रीय और संघीय राजनीतिक प्रणाली की एक आवश्यक विशेषता है जिसने इसके विकास में महत्वपूर्ण, बहुत सहायक और आवश्यक भूमिका निभाई है।

(i) यह संविधान की सर्वोच्चता स्थापित रखने के लिए अनिवार्य है और पिछले लगभग छः दशकों के दौरान इसने यह भूमिका प्रशंसनीय ढंग से निभाई है।

(ii) विधानपालिका और कार्यपालिका के द्वारा शक्ति के संभावित दुरुपयोग को रोकने के लिए न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति आवश्यक है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने इस भूमिका को प्रभावशाली ढंग से निभाया है।

(iii) संघीय संतुलन स्थापित करने के लिए संघ और राज्यों के मध्य एक मध्यस्थ या निर्णायक के रूप में न्यायपालिका के महत्त्व से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संघ के दोनों भागों के मध्य एक न्यायिक मध्यस्थ की भूमिका में न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग के द्वारा संघीय संतुलन को कायम रखने में बहुत अधिक सहायता की है।

(iv) न्यायपालिका को न्यायिक पुनर्निरीक्षक की शक्ति प्रदान करना इसके लिए भी आवश्यक है ताकि सरकार के तीसरे और सबसे कमजोर इस अंग को दूसरे दो अंगों की तुलना में कुछ शक्तिशाली बनाया जा सके। यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए भी आवश्यक है।

(v) न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय को अपने तीन प्रमुख संवैधानिक कर्तव्य निभाने में बहुत सहायता रकती है : (1) संविधान की सर्वोच्चता को स्थापित रखने के लिए, (2) संविधान की व्याख्या करने के लिए, और (3) लोगों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा करने के लिए। न्यायिक पुनर्निरीक्षण मौलिक अधिकारों की वैधानिक और कार्यकारी उल्लंघनाओं के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय को एक उपचार यंत्र के रूप में कार्य करने के योग्य बनाता है।

(vi) सर्वोच्च न्यायालय की ओर से न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति के दुरुपयोग की संभावना को रोकने के लिए संविधान ने इस शक्ति के प्रयोग पर कई प्रतिबन्ध लगाए हैं। इस बात को विश्वसनीय बनाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय कहीं उच्च विधानपालिका या उच्च कार्यपालिका बनने का प्रयास न करे, संविधान निर्माताओं ने न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति पर निम्नलिखित प्रतिबन्ध लगाए हैं:

(क) संविधान के किसी भी अनुच्छेद में न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति के स्पष्ट वर्णन का अभाव।

(ख) न्यायिक पुनर्निरीक्षण कुछ क्षेत्रों पर संभव नहीं। संसद संविधान की 9वीं सूची में सामाजिक-आर्थिक सुधारों को सुरक्षित करने वाले कानून शामिल कर सकती है और इस प्रकार इसको न्यायिक पुनर्निरीक्षण से मुक्त रख सकती है।

नोट

(ग) कानून की उचित प्रक्रिया के सिद्धान्त के स्थान पर कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिद्धान्त को स्वीकार करके भी न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति पर एक प्रतिबन्ध लगाया गया है।

(घ) सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी लिखित संविधान के अनुच्छेदों के अधीन हैं। संसद संविधान में संशोधन कर सकती है और बहुत-से क्षेत्रों में भारतीय संविधान एक लचीला संविधान है।

(ङ) संविधान में स्पष्ट मौलिक अधिकारों को दर्ज करना और इनके क्षेत्र के प्रति कुछ अपवादों (Exceptions) को संविधान में लिखना भी न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाने की ओर किया गया प्रयास है।

(च) संघ और राज्यों में शक्तियों का विभाजन, संघ-राज्य झगड़ों की संभावना को कम करने के लिए स्पष्ट और सूक्ष्म रूप में वर्णित किया गया है और इससे न्यायिक पुनर्निरीक्षण के क्षेत्र को भी सीमित रखा गया है।

(छ) संसद न्यायिक पुनर्निरीक्षण के द्वारा पैदा की गई बाधाओं को आवश्यक संशोधनों के द्वारा दूर कर सकती है।

ये सभी प्रतिबन्ध न्यायिक पुनर्निरीक्षण के संभव दुरुपयोग को रोक सकती हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति को संविधान में शामिल करना एक प्रशंसा योग्य विशेषता है। यह एक उत्तम व्यवस्था है तथा इसका प्रयोग न्यायालय की ओर से अपने संवैधानिक उत्तरदायित्व को निभाने के लिए किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने इसका प्रयोग सामाजिक-आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में बिना हानि पहुंचाए किया है। जहां कहीं इसने अनुभव किया कि निर्णय में कोई गलती हुई थी या साधारण लोगों के हितों पर हानिकारक प्रभाव पड़ा था तो इसने अपने निर्णयों को बदलने में कभी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। इसने अपनी स्वतंत्रता स्थापित रखी है और अपनी शक्ति के प्रयोग और कार्यों को दृढ़ता से और प्रभावशाली ढंग से किया है। कई बार, न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रणाली ने कई विवाद भी उत्पन्न भी किए हैं, परन्तु इनका सरकार के दूसरे दो अंगों और सर्वोच्च न्यायालय दोनों की ओर से समझदारी वाले दृष्टिकोण से समाधान कर लिया गया है।

इस प्रकार न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रणाली को जारी रखने के पक्ष में काफी औचित्य है न्यायिक पुनर्निरीक्षण संविधान के चालू होने के समय से लेकर आज तक व्यवहार में है। कुछ बुद्धिजीवियों और विशेषज्ञों की ओर से कभी-कभी न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति से लैस एक नई और अलग संवैधानिक परिषद् बनाने की मांग की गई है, परन्तु, सर्वोच्च न्यायालय की ओर से न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति के औचित्य और समझदारी भरे प्रयोग ने इस मांग को सदैव ही प्राणहीन कर दिया है। सामान्य सहमति न्यायिक पुनर्निरीक्षण की प्रणाली के बने रहने के पक्ष में है। यह सचमुच भारत के संविधान की 'मौलिक संरचना' का एक अमूल्य भाग है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य बताइए।

8. अनुच्छेद 13 न्यायालय की न्यायिक पुनर्निरीक्षण शक्ति को आधार प्रदान करता है।
9. अनुच्छेद 124 (6) और 219 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को क्रमवार कानून के द्वारा स्थापित संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ उठानी पड़ती है।
10. न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति के दुरुपयोग की संभावना को रोकने के लिए संविधान ने इस शक्ति के प्रयोग पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया है।

सारांश (Summary)

- सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा संविधान के रक्षक और संविधान के अधिकारिक व्याख्यता के रूप में कार्य किया जाता है।

नोट

- सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की धारा 145 के अन्तर्गत न्यायालय की कार्यवाही तथा कार्यविधि को नियमित करने के लिए समय-समय पर नियमों को बनाने की शक्ति दी गई है।
- सन् 1967 में गोलकनाथ के मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों के संशोधन नहीं कर सकती। 1973 में केशवानंद भारती के मुकदमें में निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है।
- 42वें संशोधन के द्वारा यह व्यवस्था की गई थी कि ऐसे व्यक्ति को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है, जो राष्ट्रपति की दृष्टि में प्रसिद्ध न्यायशास्त्री हो अथवा जो किसी ट्रिब्यूनल या केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन कानून की विशेष जानकारी रखने वाले पद पर 10 वर्ष तक कार्य कर चुका हो।
- भारत का संविधान देश का सर्वोच्च कानून है और भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पास संविधान की व्याख्या और सुरक्षा का सर्वोच्च उत्तरदायित्व है। यह लोगों के मौलिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है।
- जब न्यायालय किसी कानून को गैर संवैधानिक घोषित करके रद्द करता है तो उसको यह स्पष्ट करना पड़ता है कि इस कानून ने किस संवैधानिक अनुच्छेद का उल्लंघन किया है। न्यायालय को कानून को रद्द करने के कारणों को भी स्पष्ट करना होता है।
- न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रणाली एक देरी और अकुशलता का एक स्रोत रही है। जब एक कानून अस्तित्व में आ जाता है तो कई बार लोग और विशेषकर कानून लागू करने वाली एजेंसियाँ धीरे चलने का निर्णय करती हैं या किसी कानून को लागू करने के संबंध में हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. भारत के सर्वोच्च न्यायालय की रचना का वर्णन कीजिए।
2. उच्च न्यायालय की शक्तियों एवं स्थिति का वर्णन कीजिए।
3. न्यायिक पुनर्निरीक्षण से आप क्या समझते हैं?
4. न्यायिक पुनर्निरीक्षण का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 1935 के अधिनियम
2. 25
3. न्यायाधीश जे.सी. शाह
4. मौलिक
5. (b)
6. (c)
7. (a)
8. सत्य
9. सत्य
10. असत्य

संदर्भ पुस्तकें (Further Reading)

1. भारतीय शासन और राजनीति— पी. रस्तोगी।
2. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था— एन. छाबरा।

नोट

अध्याय 9: सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था एवं लोक अदालत (Public Interest Litigation and Lok Adalats)

संरचना (Structure)

- 9.1 उद्देश्य (Objectives)
- 9.2 प्रस्तावना (Introduction)
- 9.3 सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था : अवधारणा और प्रकृति (Public Interest Litigation: Concept and Nature)
- 9.4 सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था की विशेषताएँ (Features of Public Interest Litigation)
- 9.5 लोक अदालत (Lok Adalats)
- 9.6 लोक अदालतों का संगठन एवं कार्य करने का ढंग (Organisation and Method of Working of Lok Adalats)
- 9.7 भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता : विशेषताएँ (Independence of Judiciary in India: Features)
 - सारांश (Summary)
 - अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
 - संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

9.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- पी.आई.एल. के बारे में जानने में।
- पी.आई.एल. की विशेषताएँ बताने में।
- लोक अदालत की परिभाषा बताने में।
- लोक अदालतों का कार्य बताने में।
- भारत में न्यायपालिका की विशेषताएँ बताने में।

9.2 प्रस्तावना (Introduction)

सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था कानून की एक नई शाखा है जो भारत में अब काफी वर्षों से व्यवहार में लागू की जा रही है। लोगों को न्याय देना न्यायिक प्रणाली का एक प्रमुख यहां तक कि प्रथम उद्देश्य है और इसके लिए न्यायिक प्रणाली को चुस्त, कुशल और जहां तक संभव हो, कम खर्चीली और सरल बनाना आवश्यक होता है। सार्वजनिक हित प्रणाली जिसका लोकप्रिय नाम पी.आई.एल. है, को प्रायः 'नया कानूनी क्षितिज' (New Legal Horizon) कहा जाता है। यह इन चार उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए अपनाई गई है। आरंभ से ही इस व्यवस्था ने लोकप्रियता प्राप्त करनी आरंभ कर दी और इस प्रक्रिया में जस्टिस पी० एन० भगवती जैसे न्यायाधीशों ने प्रशंसनीय भूमिका अदा की। इसके फलस्वरूप आज यह व्यवस्था भारतीय न्यायिक व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में विकसित हुई है।

नोट

9.3 सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था : अवधारणा और प्रकृति (Public Interest Litigation : Concept and Nature)

सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था को हम एक ऐसी कानूनी व्यवस्था की तरह परिभाषित कर सकती हैं जिसमें कानून के न्यायालय किसी सार्वजनिक या सामान्य हित की सुरक्षा के लिए कार्यवाही अर्थात् मुकदमा आरम्भ कर सकते हैं। जब किसी सार्वजनिक हित को कोई भी व्यक्ति या संस्था बुरी तरह प्रभावित कर रही हो या ऐसा करने का प्रयास कर रही हो तो सार्वजनिक हित मुकदमा प्रणाली के अधीन न्यायालय कार्यवाही आरम्भ कर सकते हैं। अपने एक निर्णय में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था को इस प्रकार परिभाषित किया है : "एक ऐसे सार्वजनिक हित या आम हित को लागू करवाने के लिए न्यायालय के द्वारा कानूनी कार्यवाही का आरम्भ किया जाना जिसमें जनता या जनता के किसी वर्ग के हितों का उल्लंघन किया जा रहा हो या उसको हानि पहुँचाई जा रही हो। ऐसे सार्वजनिक हित आम जनता के अधिकारों के आधार पर उचित माने जाते हैं और यदि किसी तरह से इन हितों के विरुद्ध कोई कार्य हो रहा हो या किया जाने वाला हो न्यायालय कानूनी कार्यवाही आरम्भ करके सार्वजनिक हित की सुरक्षा के लिए उपयुक्त निर्देश दे सकते हैं, दोषियों को दण्ड देकर और जिनके हितों का उल्लंघन हुआ हो उनकी क्षतिपूर्ति (Compensation) देकर सार्वजनिक हितों की सुरक्षा कर सकती है।

सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था के अधीन कोई भी नागरिक या नागरिकों का समूह या कोई भी संगठन लिखित रूप में किसी न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के ध्यान में कोई ऐसा विषय या मुद्दा ला सकता है जोकि सार्वजनिक हित के विरुद्ध हो या सार्वजनिक हित का उल्लंघन कर रहा हो। किसी भी ऐसी सरकारी नीति या आदेश को न्यायालय के ध्यान में लाया जा सकता है जोकि ऐसा समझा जाए कि सार्वजनिक हितों का उल्लंघन कर रहा है। यदि न्यायालय इस लिखित रिपोर्ट में लिखे गए विचार से सहमत होती है तो उस रिपोर्ट को एक पिटीशन मानकर एक मुकदमा आरम्भ कर सकती है और जिस संस्था या सरकारी विभाग के विरुद्ध आरोप लगाया गया हो कि वह सार्वजनिक हितों का उल्लंघन कर रहा है तो न्यायालय उस विभाग या संस्था को नोटिस जारी करके एक मुकदमा आरम्भ कर सकता है।

यहाँ तक कि न्यायालय के न्यायाधीश स्वयं भी समाचार-पत्रों में प्रकाशित समाचारों के आधार पर अपने आप (Suo Moto) एक अदालती कार्यवाही आरम्भ कर सकते हैं यदि वे समझते हैं कि किसी सरकारी या गैर-सरकारी नीति या कार्यवाही से आम जनता के हितों को हानि पहुँचा रही है। वह सम्बन्धित व्यक्ति या संस्था या विभाग या एजेंसी को नोटिस जारी करके सार्वजनिक हित को पहुँचने वाली हानि को दूर करने के लिए उपयुक्त आदेश जारी कर सकते हैं और अदालती कार्यवाही आरम्भ कर सकते हैं।

उदाहरण के रूप में जब मई 1995 में हरियाणा बिजली बोर्ड कर्मचारियों की यूनियन ने एकदम हड़ताल कर दी क्योंकि उनके किसी कर्मचारी का गलत ढंग से स्थानांतरण कर दिया गया था तो पंजाब और हरियाणा उच्च

नोट

न्यायालय के माननीय न्यायाधीश श्री वी. के. झांजी ने अपने आप कार्यवाही आरम्भ करते हुए चंडीगढ़ के गृह सचिव, हरियाणा बिजली बोर्ड के उच्च अधिकारियों, सम्बन्धित अधिकारी और यूनियन लीडरों को अपने न्यायालय में बुला लिया। माननीय न्यायाधीश ने यह आदेश दिया कि बिजली सप्लाई एकदम व्यवस्थित की जाए और सम्बन्धित कर्मचारी के विरुद्ध शीघ्र से शीघ्र छानबीन करके उसके केस का निर्णय किया जाए।

उन्होंने यह भी निर्णय दिया कि यदि यूनियन और कर्मचारी अपने नियोक्ताओं से न्याय प्राप्त न कर सके तो उनको न्यायालय के पास आकर न्याय लेना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट रूप में माननीय न्यायाधीश ने आम जनता के हितों की रक्षा की। अप्रैल 1997 में कांग्रेस के प्रधान और भूतपूर्व कोषाध्यक्ष श्री सीताराम केसरी के विरुद्ध एक सार्वजनिक हित मुकदमा आरम्भ किया गया क्योंकि उनके विरुद्ध यह दोष लगाया गया था कि उन्होंने उपयुक्त अधिकारी से आज्ञा लिए बिना विदेशी मुद्रा में दल के लिए दान एकत्रित किया था।

इस प्रकार सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था में किसी आम हित के उल्लंघन के विरुद्ध कोई भी नागरिक या नागरिक संगठन या नागरिकों का समूह न्यायालय के सामने एक पिटीशन प्रस्तुत कर सकता है और यदि न्यायालय इस बात से सहमत हो जाए कि पिटीशन से लिखी गई शिकायत में कोई सच्चाई नजर आती है तो न्यायालय एक मुकदमा आरम्भ करके सार्वजनिक हित की रक्षा करने का प्रयास कर सकता है। सबसे बढ़िया बात यह है कि सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था में कोई भी न्यायालय अपने आप (Suo moto) भी कार्यवाही आरम्भ कर सकता है।

9.4 सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था की विशेषताएँ (Features of Public Interest Litigation)

सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था एवं लोक अदालत

1. सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था का उद्देश्य है सार्वजनिक हितों की रक्षा और इनके सम्बन्ध में की जाने वाली या संभावित कार्यवाहियाँ जो किसी सार्वजनिक हित को बुरी तरह प्रभावित कर रही हों, के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही करना और इसके द्वारा सार्वजनिक हित की रक्षा करना।

2. सार्वजनिक हित मुकदमे की कार्यवाही कोई भी नागरिक या नागरिकों का समूह या संगठन कर सकता है जोकि न्यायालय के ध्यान में सार्वजनिक हित के किसी भी उल्लंघन का मामला लाता है। एक साधारण पत्र के द्वारा न्यायालय के सामने कोई ऐसा मामला रखा जा सकता है और यदि न्यायालय उचित समझे तो इस पत्र को एक पिटीशन मान कर अदालती कार्यवाही आरम्भ कर सकता है।

3. न्यायालय के न्यायाधीश अपने आप भी समाचार-पत्रों में प्रकाशित रिपोर्टों अथवा सार्वजनिक सूचनाओं के आधार पर या किसी अन्य रिपोर्ट के आधार पर भी अदालती कार्यवाही आरम्भ करके सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए प्रयास कर सकते हैं।

4. सार्वजनिक हित मुकदमे की कार्यवाही आरम्भ करने के लिए कोई औपचारिक पिटीशन की आवश्यकता नहीं होती। एक साधारण पिटीशन के द्वारा सार्वजनिक हित मुकदमे की कार्यवाही आरम्भ की जा सकती है।

5. सार्वजनिक हित मुकदमे में अथवा निर्णय देने के पश्चात् न्यायालय किसी वकील या वकीलों या कुछ अन्य अधिकारियों को यह उत्तरदायित्व सौंप सकता है कि वह देखे कि न्यायालय का निर्णय लागू किया गया था या नहीं। न्यायालय किसी लिखित शिकायत के विरुद्ध छानबीन करने के लिए भी उत्तरदायित्व किसी अधिकारी को सौंप सकता है और छानबीन की रिपोर्ट मिलने के पश्चात् उपयुक्त अदालती कार्यवाही आरम्भ करके सार्वजनिक हित की रक्षा का प्रयास कर सकता है।

6. यदि किसी व्यक्ति या संस्था को किसी सरकारी नीति या अधिकारी के आचरण से हानि पहुँची हो तो ऐसे व्यक्ति को क्षतिपूर्ति (Compensation) देने का आदेश भी न्यायालय जारी कर सकता है। न्यायालय ही यह निर्णय कर सकता है कि क्षति-पूर्ति कितनी और किस रूप में दी जाएगी। न्यायालय के द्वारा दी गई क्षति-पूर्ति न

केवल सरकार को करनी पड़ सकती है बल्कि किसी भी स्थानीय अधिकारी या फिर गैर-सरकारी संस्था को भी करनी पड़ सकती है।

क्या आप जानते हैं: सार्वजनिक हित मुकदमा प्रणाली एक सरल न्यायिक प्रणाली है जिसके अधीन साधारण नागरिक बिना अधिक औपचारिक कागजी कार्यवाहियों से सार्वजनिक हितों को सुरक्षित करवा सकते हैं।

नोट

इन सभी विशेषताओं से सार्वजनिक हित मुकदमा प्रणाली एक नया और क्रान्तिकारी न्यायिक उपकरण बन कर उभरा है जिसने हमारी न्यायिक व्यवस्था को लोगों के हितों की सुरक्षा करने के अधिक योग्य बनाया है। 1970 के दशक से लेकर अब तक इस प्रणाली के अधीन कई लोगों ने न्याय प्राप्त किया है और कइयों ने उचित मुआवजा भी प्राप्त किया है। सामान्य रूप में न्यायाधीश कार्यवाही एक काफी लम्बी देरी करने वाली कार्यवाही होती है परन्तु सार्वजनिक हित मुकदमा प्रणाली एक कुशल और शीघ्र न्याय देने वाली प्रणाली के रूप में उभर कर सामने आई है और इसको भारतीय न्यायिक व्यवस्था की एक नई और अच्छी पहल कहा जा सकता है।

व्यवस्था का सम्भावित दुरुपयोग और रोकथाम (Possible misuse of the System and Preventive Measures): लेकिन इस व्यवस्था का गलत प्रयोग भी हो सकती है। कुछ व्यक्ति अपने विशेष हित अथवा निजी हितों की सुरक्षा के लिए इस व्यवस्था का आश्रय लेने का प्रयास कर सकते हैं। वे इसका प्रयोग व्यक्तिगत या राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करने का प्रयास कर सकते हैं। परन्तु यह बात समझ लेनी चाहिए कि सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था केवल उसी स्थिति में लागू हो सकती है जबकि सार्वजनिक हित की सुरक्षा करने का मुद्दा हो। इसका प्रयोग किसी निजी लाभ के लिए नहीं किया जा सकता।

नोट: जिन मामलों में न्यायालयों में मुकदमे की कार्यवाही चल रही हो उनके सम्बन्ध में भी इस प्रणाली को आरम्भ नहीं किया जा सकता।

इस व्यवस्था के दुरुपयोग को रोकने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि अगर कोई व्यक्ति सार्वजनिक हित के नाम पर इस व्यवस्था द्वारा अपने किसी विशेष अथवा निजी हित की पूर्ति का प्रयास करता है तो उसे दण्डित किया जा सकता है। कुछ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसा किया भी है।

कई आलोचक इस व्यवस्था की आलोचना इस आधार पर करते हैं कि इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं बनाए गए। न्यायालय इस व्यवस्था का प्रयोग करके अपनी मनमानी कर सकते हैं और कार्यपालिका के अधिकार-क्षेत्र की उल्लंघन कर सकते हैं। आलोचक यह भी कहते हैं कि इस व्यवस्था के द्वारा जो निर्णय किया जाता है उसको पूर्ण रूप से लागू करवाने के लिए आवश्यक कार्यवाही कई बार नहीं करवाई जाती। उदाहरण के रूप में बंधुआ मजदूरी के मामले में बंधुआ श्रमिकों को इस व्यवस्था का प्रयोग करके स्वतंत्र तो करवा लिया जाता है परन्तु उनकी रोजी रोटी के साधन देने के सम्बन्ध में बाद में कोई कार्यवाही नहीं की जाती और स्वतंत्र हुए बंधुआ श्रमिक दोबारा फिर बंधुआ मजदूरी के शिकार हो जाते हैं।

हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था एक नई पहल है जिसका धीरे-धीरे विकास हो रहा है और धीरे-धीरे यह व्यवस्था लोकप्रिय हो रही है। न्यायालय भी इस व्यवस्था के अधीन सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए आगे आ रहे हैं। कई एक स्वयं-सेवी संगठन और गैर-सरकारी संगठन इस व्यवस्था का प्रयोग करके आम जनता के हितों की सुरक्षा करने के लिए आगे आ रहे हैं। श्री एच. डी. शौरी जैसे व्यक्तियों के इस व्यवस्था का लाभ उठाकर कई एक सार्वजनिक हितों की सुरक्षा की है। यह समझा जाता है कि धीरे-धीरे यह व्यवस्था विकसित हो जायेगी और संभावित खतरों पर नियंत्रण पाने के लिए उपयुक्त प्रयास करने में सफल होगी। वास्तव में सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था ने आम जनता के लिए न्याय प्राप्त करने का एक अन्य महत्वपूर्ण मार्ग खोला है जिसका प्रयोग करके जनता सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं से न केवल अपने साझे हितों की सुरक्षा कर सकती है बल्कि जिन हितों को हानि पहुंची हो उसके सम्बन्ध में उपयुक्त हानि-पूर्ति भी प्राप्त कर सकती है।

इस व्यवस्था ने विश्वसनीय रूप में न्याय देने के सम्बन्ध में भारतीय न्यायिक व्यवस्था को एक नई दृढ़ता तथा एक नई शक्ति प्रदान की है और इससे न्यायालयों को अपनी सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने के योग्य बनाया है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

1. सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था की एक नई शाखा है, जो भारत में अब काफी वर्षों से व्यवहार में लागू की जा रही है।
2. को प्रायः 'नया कानूनी क्षितिज' कहा जाता है।
3. सार्वजनिक हित मुकदमा प्रणाली के तहत साधारण नागरिक बिना अधिक औपचारिक से सार्वजनिक हितों को सुरक्षित करवा सकते हैं।

9.5 लोक अदालत (Lok Adalats)

पिछले कुछ वर्षों से लोक अदालतों की व्यवस्थाएँ भारत के सभी राज्यों में लोकप्रिय हो रही हैं। लोक अदालतें पूर्ण रूप से न तो न्यायिक व्यवस्था का भाग हैं और न ही उनको बहुत उच्च कानूनी मान्यता प्राप्त है परन्तु यह न्यायिक व्यवस्था की सहायक एजेंसियों के रूप में कार्य करके लोगों को शीघ्र और कम खर्च पर न्याय उपलब्ध करवा रहे हैं। मुकदमेबाजी में लगे पक्षों के मध्य सौदेबाजी/मध्यस्थता करवा कर और उनके बीच परस्पर समझ पैदा करके लोक अदालतें उनके झगड़े निपटारा करती हैं। दूसरे शब्दों में, लोक अदालतों का प्रमुख उद्देश्य है अदालती झगड़ों को विरोधी पक्षों में सहमति पैदा करके निपटारा जाए। बहुत बार कई मुकदमे काफी लम्बे समय से न्यायालयों में लटक रहे होते हैं। लोक अदालतों के माध्यम से इनको कम-से-कम समय में निपटा लिया जाता है। विश्वसनीय रूप में लोक अदालतों ने लोगों के लिए न्याय प्राप्त करना सरल बनाया है। काफी लम्बे समय से क्षति-पूर्ति की आशा कर रहे लोगों के लिए यह संभव बनाया है कि वे अपनी क्षति-पूर्ति के लिए मुआवजा प्राप्त कर सकें। लोक अदालत व्यवस्था की एक और विशेषता यह है कि लोक अदालतों के द्वारा दिए गए निर्णयों के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती क्योंकि इस प्रणाली के अधीन किसी मुकदमे की दोनों पक्षों ने परस्पर सहमति से एक निर्णय स्वीकार किया होता है।

भारत में लोक अदालत व्यवस्था लगभग 30 वर्ष पुरानी है और इस व्यवस्था को आरम्भ करने में भारत के एक भूतपूर्व चीफ जस्टिस श्री पी. एन. भगवती ने बहुमूल्य भूमिका अदा की। गरीब और पिछड़ी श्रेणी के लोगों की मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए गुजरात उच्च न्यायालय ने लोक अदालत व्यवस्था आरम्भ की और धीरे-धीरे भारतीय संघ के सभी राज्यों ने इसको अपना लिया। आज तक लगभग 12 लाख मुकदमे विभिन्न लोक अदालतों के द्वारा निपटाए जा उठाए हैं।

लोक अदालतों का कानूनी और संवैधानिक आधार

(The Legal and Constitutional basis of Lok Adalats)

संविधान के 42वें संशोधन के द्वारा एक नया निर्देशक सिद्धान्त 39(ए) अपनाया गया जिसके द्वारा राज्य को यह निर्देश दिया गया कि वह कानून व्यवस्था को इस प्रकार चलाए कि लोगों को न्याय प्राप्त करने के एक-समान अवसर प्राप्त हों और जरूरतमन्दों को मुफ्त कानूनी सहायता उपलब्ध हो। इस निर्देशक सिद्धान्त के आधार पर संघीय संसद, 1987 में Legal Services Authority Act पास किया जिसके अधीन कई कानूनी सेवा संस्थाओं की स्थापना की गई जिन्होंने गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता या फिर कम-से-कम कीमत पर कानूनी सहायता प्रदान करवानी थी। इस कानून के अधीन एक कानूनी सहायता फंड भी स्थापित किया गया जिसको कि राष्ट्रीय, प्रांतीय और जिला स्तरों पर स्थापित किया गया। ऐसी कानूनी संस्थाओं को यह भी उद्देश्य सौंपा गया कि

वह लोक अदालतों के द्वारा मुकदमों का निपटारा करने को प्रक्रिया को उत्साहित करें। बाद में अलग-अलग राज्यों ने कानून पास करके या कार्यपालिका के आदेशों के द्वारा वे व्यवस्थाएँ स्थापित कीं जिनके आधार पर प्रत्येक प्रांत में लोक अदालतों को संगठित किया जाना था और लोक अदालतों ने मुकदमों का निपटारा करना था।

टास्क: लोक अदालत से क्या अभिप्राय है?

नोट

9.6 लोक अदालतों का संगठन और कार्य करने का ढंग (Organisation and Method of Working of Lok Adalats)

किसी भी लोक अदालत का संगठन प्रांतीय या जिला या तहसील स्तर पर किया जा सकता है परन्तु सामान्यतः जिला स्तर पर ही लोक अदालतों का संगठन किया जाता है। इन लोक अदालतों में एक न्यायिक अधिकारी और उसके से दो से लेकर पांच तक गणमान्य नागरिक बैठते हैं। कोई भी सामाजिक कार्य-कर्ता, स्त्री संगठनों के सदस्य, सेवा-निवृत्त अधिकारी, डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, प्रिंसीपल, पत्रकार या सामाजिक नेता आदि लोक अदालत में मनोनीत किए जा सकते हैं। यह व्यक्ति प्रयास करते हैं कि मुकदमेबाजी में उलझे हुए पक्ष आपस में सहमति से लोक अदालत के सामने अपने मुकदमे को लाएं और लोक अदालत के द्वारा न्याय प्राप्त करें। कई बार राज्य की उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अध्यक्षता में भी लोक अदालतें लगाई जाती हैं और सभी निर्णय मुकदमों में संलग्न पक्षों के मध्य सहमति बनाकर किए जाते हैं।

जहाँ तक लोक अदालतों की कार्य-प्रणाली का प्रश्न है इस सम्बन्ध में कुछ नियम अपनाए गए हैं:

- (क) लोक अदालतों में केवल वही मुकदमे आते हैं जो किसी न किसी न्यायिक न्यायालय में चल रहे होते हैं।
 - (ख) मुकदमे में शामिल पक्ष एक प्रार्थना-पत्र के द्वारा लोक अदालत के सामने अपना मुकदमा ला सकती हैं।
 - (ग) जिला और तहसील स्तर पर कार्य करने के लिए संगठित लोक अदालतों के बारे में जिला सेशन न्यायाधीश को जानकारी होती है।
 - (घ) लोक अदालत जिस दिन बैठनी होती है इसके बारे में सूचना सम्बन्धित पार्टी को दे दी जाती है और निर्धारित समय पर इस मुकदमे में शामिल पक्ष लोक अदालतों में बैठ कर परस्पर सहमति से न्याय प्राप्त करती हैं।
 - (ङ) जब लोक अदालत एक सहमति बनाकर किसी मुकदमे के निर्णय की घोषणा कर देती है तो इसकी सूचना न्यायिक अधिकारी को दे दी जाती है।
 - (च) लोक अदालत के द्वारा किए गए निर्णय के आधार पर फिर न्यायिक अधिकारी की ओर से एक न्यायिक डिक्री (Decree) जारी कर दी जाती है।
 - (छ) लोक अदालत के निर्णयों को क्योंकि मुकदमे में संलिप्त सभी पक्षों ने स्वीकार किया होता है इसके लिए इसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती।
 - (ज) लोक अदालत की कार्य-प्रणाली में न तो कठोरता होती है और न ही कठोर औपचारिकता। निर्णय परस्पर सहमति और सहयोग की भावना के आधार पर परस्पर समझ बना लिए जाते हैं।
 - (झ) सामान्यतः लोक अदालतों के सामने निम्नलिखित स्वरूप के मुकदमे अधिकतर आते हैं—
 - (i) मोटर दुर्घटनाओं में मुआवजे से सम्बन्धित मुकदमे
 - (ii) विवाह और तलाक से सम्बन्धित मुकदमे
 - (iii) श्रमिकों के मुआवजे से सम्बन्धित मुकदमे
- परन्तु जिन मुकदमों में सरकार एक पक्ष हो, वे मुकदमे इन न्यायालयों के सामने नहीं आ सकते।

नोट

लोक अदालतों की व्यवस्था ने विश्वसनीय रूप में एक प्रशंसनीय कार्य किया है इसने न्यायपालिका के भार को घटाया तथा न्याय प्राप्त की प्रक्रिया को आसान और कम खर्चीला बनाया है। अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध अपील करने की प्रक्रिया को कम किया है। गरीबों और कमजोर वर्गों के लोगों को न्याय प्राप्त करने में सहायता दी है। सहमति और सहयोग की स्थापना की ओर एक अच्छा प्रयास किया है, क्योंकि लोक अदालतों में निर्णय मुकदमों में शामिल पक्षों की सहमति और सहयोग से किया जाता है। इस प्रकार कोई भी पक्ष अपने आपको पराजित पक्ष अनुभव नहीं करता। लोक अदालतों ने विश्वसनीय रूप में न्यायिक व्यवस्था में विद्यमान देरी को कम करने में सहायता की है। जो लोक अदालत व्यवस्था पिछले लगभग तीन दशकों से विकसित हो रही है उसको हम एक अच्छा और अनिवार्य न्यायिक विकास कह सकते हैं। चाहे लोक अदालतों के सामने बहुत बड़े मुकदमे नहीं आते और अधिकतर मुआवजे यह क्षति-पूर्ति के मुकदमे ही आते हैं तो भी इस व्यवस्था ने भारतीय न्यायिक व्यवस्था में कुशलता और कम खर्चीलापन लाने का प्रयास किया है।

दूसरी उदार लोकतंत्रीय राजनीतिक प्रणालियों की तरह भारतीय राजनीतिक प्रणाली में भी एक स्वतंत्र और प्रभावशाली न्यायपालिका का अस्तित्व है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय शीर्ष पर, उच्च न्यायालय राज्य स्तर पर और अधीन न्यायालय स्थानक स्तर पर विद्यमान हैं। भारत का संविधान इस उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक शर्तों के रूप में सभी ऐसे गुणों को, जो व्यापक रूप में मान्यता प्राप्त हैं, अपना कर न्यायिक प्रणाली की स्वतंत्रता को विश्वसनीय बनाता है। यह पूर्ण रूप से न्यायपालिका के महत्त्व को संविधान की संरक्षिका और व्याख्याकार के रूप में, लोगों की स्वतंत्रताओं और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में और संघ और राज्यों के मध्य सभी झगड़ों के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली व्यवस्था के रूप में स्थापित करता है। यह भारतीय राजनीतिक प्रणाली में शक्तिशाली न्यायपालिका की विद्यमानता को सुरक्षित करने और उसको विधानपालिका और कार्यपालिका के हस्तक्षेप से दूर रखने के लिए सभी आवश्यक और उचित कदम उठाने की व्यवस्था करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

4. निर्देशक सिद्धांत के आधार पर संघीय संसद ने 'लीगल सर्विसेज अथॉरिटी एक्ट' किस वर्ष पास किया था?

(a) वर्ष 1986	(b) वर्ष 1976
(c) वर्ष 1987	(d) वर्ष 1988
5. लोक अदालतों में कौन-से मुकदमे आते हैं?

(a) जो न्यायिक न्यायालय में नहीं चल रहे होते हैं।	(b) जो न्यायिक न्यायालय में चल रहे होते हैं।
(c) (a) और (b) दोनों	(d) न तो (a) और न तो (b)
6. लोक अदालतों में सामान्यतः इनमें से कौन-सा मुकदमा नहीं आता—

(a) मोटर दुर्घटनाओं में मुआवजे से संबंधित मुकदमे	(b) हत्या संबंधी मुकदमे
(c) विवाह संबंधी मुकदमे	(d) श्रमिकों के मुआवजे संबंधी मुकदमे

9.7 भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता : विशेषताएँ (Independence of Judiciary in India : Features)

नोट

1. **न्यायपालिका की विधानपालिका और कार्यपालिका से पृथक्करण (Separation of Judiciary from the Executive and Legislature):** भारत में न्यायपालिका न तो कार्यपालिका की एक शाखा है और न ही विधानपालिका की एक दासी है। संविधान के अधीन इसकी स्वतंत्र पहचान और अस्तित्व है। सर्वोच्च न्यायालय न्यायपालिका का शिखर है और यह देश में न्यायिक प्रशासन चलाता है। न्यायिक प्रणाली भारत के सर्वोच्च न्यायालय की ओर से बनाए और लागू किए कानूनों, आदेशों, निर्णयों, नियमों और निर्देशनों के आधार पर कार्य करती है। संविधान अपने भाग IV में राज्य को न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने का निर्देश देता है और इसकी प्राप्ति उपयुक्त कानूनों के द्वारा प्राप्त भी किया जा चुका है।

2. **राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of Judges by the President) :** किसी न्यायाधीश की नियुक्ति का ढंग और विधि काफी सीमा तक उसकी स्वतंत्रता का निर्धारण करता है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति दूसरे न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का परामर्श लेता है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में, सामान्य रूप में इस ऊंचे पद के लिए सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश को नियुक्ति करने के व्यवहार का पालन किया जाता है। अधीन न्यायालयों के संबंध में न्यायाधीश पेशावर न्यायाधीश होते हैं। उनकी भर्ती प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा की जाती है और उनकी नियुक्ति से पहले उनको योग्य प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारत के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में वरिष्ठता के सिद्धान्त का अस्तित्व और दूसरे न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में अपनाई गई स्वतंत्र व्यवस्था तथा साथ ही साथ यह सिद्धान्त की राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श पर ही न्यायाधीशों की नियुक्ति, स्थानान्तरण तथा पदोन्नति के संबंध में निर्भर करेगा, ने भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता को और दृढ़ किया है।

3. **उच्च योग्यताएँ (High Qualification)**—संविधान न्यायाधीशों के लिए उच्च और विशेष योग्यताएँ निर्धारित करता है। न्यायाधीश की पदवी के लिए योग्य व्यक्ति भारत का नागरिक होना चाहिए, उसको कम-से-कम पाँच वर्ष के लिए किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में अनुभव अवश्य होना चाहिए, या वह उच्च न्यायालय का कम-से-कम दस वर्षों के लिए वकील रह चुका होना चाहिए या फिर वह एक विलक्षण कानून-शास्त्री होना चाहिए। इस प्रकार केवल वही व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किए जा सकते हैं जो संविधान की ओर से निर्धारित विशेष योग्यताएँ और अनुभव रखते हों।

4. **लम्बा कार्यकाल (Long Tenure)**—संविधान व्यवस्था करता है कि न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु होने तक अपने पद पर रह सकते हैं। आयु की सीमा न्यायाधीशों के लिए लंबी अवधि को विश्वसनीय बनाती है। फिर भी, एक सेवा मुक्त न्यायाधीश को, यदि उसकी सेवाएँ आवश्यक हों, तो राष्ट्रपति की स्वीकृति से मुख्य न्यायाधीश की ओर से उसको पुनः नियुक्त किया जा सकता है।

5. **सेवा की सुरक्षा (Security of Service)**—न्यायपालिका की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए न्यायाधीशों के लिए सेवा की सुरक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता होती है। भारत में न्यायाधीश इस विशेष अधिकार का प्रयोग करते हैं। किसी न्यायाधीश को उसके पद से महाभियोग की प्रक्रिया के द्वारा ही हटाया जा सकता है और यह प्रक्रिया बहुत कठोर है। राष्ट्रपति की ओर से किसी न्यायाधीश को केवल तब ही हटाया जा सकता है जब संसद के दोनों सदन कुल सदस्यों के बहुमत और सदन के विद्यमान सदस्यों से कम-से-कम 2/3 सदस्यों के बहुमत से महाभियोग का प्रस्ताव पास कर दें। इस प्रकार राष्ट्रपति के न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार तो है परन्तु उनको हटाने का अधिकार नहीं।

6. **ऊंचा वेतन (High Salary)**—सर्वोच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश 30,000 रुपए प्रति माह और भारत का मुख्य न्यायाधीश 33,000 रुपए के प्रतिमाह वेतन लेता है। इसके अतिरिक्त वह मुफ्त निवास स्थान डॉक्टरों

सहायता सुविधा और कई अन्य भत्ते लेने के अधिकारी होते हैं। उनके वेतन और भत्तों को वित्तीय संकटकाल के अतिरिक्त उनके पद की अवधि के दौरान कम नहीं जा सकता।

7. सेवा मुक्ति के पश्चात् वकालत की मनाही (Prohibition of Practice after Retirement)—सर्वोच्च न्यायालय के एक सेवा-निवृत्त न्यायाधीश को भारत में किसी न्यायालय या अधिकारी के सामने वकालत करने की मनाही है। फिर भी, सरकार उसकी सेवाओं का लाभ किसी ढंग से जैसे भी अनिवार्य हो, ले सकती है, जैसे प्रारंभिक रूप में विशेष प्रयोजनों के लिए स्थापित आयोगों या जांच-पड़ताल आयोगों के लिए उनकी नियुक्ति की जा सकती है।

8. न्यायालय की मानहानि के लिए दण्ड देने की शक्ति (Power to punish for the Contempt of Court)—सर्वोच्च न्यायालय और दूसरे न्यायालयों को न्यायालय की मानहानि करने से संबंधित सभी मुकदमों में दण्ड देने की शक्ति दी गई है। न्यायालय की मानहानि अधिनियम, 1971 के अधीन, सर्वोच्च न्यायालय किसी भी व्यक्ति या संस्था को दण्ड दे सकता है जो न्यायालय की मानहानि का दोषी पाया जाता है। यह छः महीने की अवधि तक साधारण कैद या जुर्माना 2000 रुपए तक, या दोनों दे सकता है।

9. विशाल अधिकार क्षेत्र और न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति (Wide Jurisdiction and the Power of Judicial Review)—भारत में न्यायपालिक विशाल अधिकार क्षेत्र रखती है। यह संविधान की संरक्षिका और व्याख्याकार, लोगों के मौलिक अधिकारों की रक्षक और राज्यों के मध्य मध्यस्थ के रूप में कार्य करती है। इसके पास कार्यपालिका और विधानपालिका के प्रत्येक कानून/आदेश की संवैधानिक औचित्य की परख करने की शक्ति है। यह सरकार के दूसरे अंगों के किसी भी ढंग के अधीन नहीं है। इसके निर्णय सभी पर लागू होते हैं। ऐसी शक्तिशाली स्थिति न्यायपालिका को अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने में सहायता करती है।

इस प्रकार भारत का संविधान उन सभी विशेषताओं की व्याख्या करता है जो न्यायपालिका की स्वतंत्रता के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनिवार्य हैं। वास्तव में, न्यायपालिका की स्वतंत्रता भारतीय राजनीतिक प्रणाली की एक महत्वपूर्ण और प्रारंभिक विशेषता है।

न्यायिक व्यवहार (Judicial Behaviour)

उन सभी विशेषताओं से जो न्यायपालिका को स्वतंत्र न्यायपालिका बनाने के लिए आवश्यक हैं, भारतीय न्यायिक प्रणाली ने एक स्वतंत्र, प्रभावशाली और कुशल प्रणाली के रूप में कार्य किया है। भारतीय न्यायपालिका अपनी स्थिति और उच्च उत्तरदायित्व के प्रति सदैव सचेत रही है। इसने अपने कार्यों के सभी क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य किया है। इसने संविधान निर्माताओं की ओर से प्रकट किए गए विश्वास को उचित ठहराया है। इसने अपने संविधान की सुरक्षा और व्याख्या, लोगों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा और संघ-राज्य झगड़ों को निपटाने के लिए आवश्यक भूमिका उपयुक्त ढंग से निभाई है। इसने 'उदारवादी' न्यायपालिका के रूप में कार्य किया है जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अनुचित बाधा डालने के बिना कानून को बनाए रखने के प्रति वचनबद्ध रही है। इसने सामाजिक-आर्थिक न्याय की आवश्यकताओं और सार्वजनिक हित में अपने निर्णयों को परिवर्तित अथवा रद्द करने में कभी हिचकिचाहट नहीं दिखाई, जब भी इसने उनमें कोई गलती अनुभव की या सुधार करने या बदलने की आवश्यकता अनुभव की। पिछले वर्षों में इसने कई संवैधानिक, दीवानी और फौजदारी मुकदमों का निर्णय वस्तुनिष्ठ ढंग से किया है। सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे ऊंचे पद जैसे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के संबंध में स्वतंत्रतापूर्ण अपने निर्णय दिए हैं। श्रीमती इन्दिरा गांधी के विरुद्ध चुनाव मुकदमे में इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय जिसने भारत में न्यायिक स्वतंत्रता और अधिकार प्रकाश डाला, यह यादगारी निर्णय था। शिखर के न्यायालय के रूप में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय न्यायिक प्रणाली की शान और स्वतंत्रता को सदैव कायम रखा है। बिना न्यायिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त को अपनाकर सर्वोच्च न्यायालय ने सदैव ही संविधान की व्याख्या और सुरक्षा करने में महत्वपूर्ण और शक्तिशाली भूमिका निभाई है। ऐसा इसने संविधान के द्वारा निर्धारित अपने अधिकार-क्षेत्र के अंदर रह कर ही किया है। इसने एक विचारधारात्मक रूप में वचनबद्ध न्यायालय की तरह कार्य तो नहीं किया परन्तु इसके

साथ इसने भारतीय समाज के सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण करने की प्रक्रिया में कभी भी अवरोध उत्पन्न नहीं किया। कानूनों की व्याख्या करते समय इसने एक सकारात्मक, रचनात्मक और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाया है।

समकालीन समय में न्यायिक सक्रियता भारतीय राजनीतिक प्रणाली की वास्तविक बनी है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने आगे से भी अधिक गतिशील और सक्रिय भूमिका निभानी आरंभ कर दी है। यह अब सार्वजनिक हित और अधिकारों की सुरक्षा की ओर अधिक-से-अधिक सक्रिय बन रही है। सार्वजनिक हित मुकदमा प्रणाली के अधीन लोगों को न्याय प्रदान करने और साथ ही सार्वजनिक अधिकारों और हितों की सुरक्षा के लिए न्यायाधीश अपने आप कार्यवाही कर रहे हैं। लोक अदालतों ने भी न्यायिक गतिशीलता की प्रक्रिया को शक्ति दी है। तेज गति के न्यायालयों की व्यवस्था ने न्यायिक देरी की त्रुटि को कुछ कम करने का कार्य किया है।

नोट

भारत में न्यायपालिका पर प्रतिबन्ध लगाने और इसकी भूमिका को सीमित करने के कुछ प्रयास (Some Attempts at Limiting the Role Judiciary in India)

सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय तथा अन्य जिला स्तर के न्यायालय संविधान द्वारा रचित और बाद में वैधानिक कानूनों के द्वारा बनाई गई न्यायिक प्रणाली के अभिन्न भागों के रूप में कार्य करते रहते हैं और आज भी कर रहे हैं। भारतीय न्यायपालिका वस्तुनिष्ठ ढंग से अपनी भूमिका निभाती रही है। परन्तु, न्यायपालिका के मार्ग में अवरोध अटकाने के कुछ प्रयास भी होते रहे हैं, चाहे ये प्रयास पूर्ण रूप से सफल नहीं हुए। कई बार सरकार ने कानून बनाकर न्यायपालिका के कुछ निर्णयों को अपने पक्ष में परिवर्तित करने के प्रयास किए हैं। निम्नलिखित तथ्य न्यायपालिका की कार्यवाही में बाधा डालने के प्रयासों पर प्रकाश डालते हैं:

1. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्याओं में उदार प्रवृत्ति होने के बावजूद, इसके कई महत्वपूर्ण संवैधानिक मुद्दों पर निर्णयों को कई बार सरकार द्वारा कानून बनाकर निरस्त किया गया, जैसे टी० एस० राजगोपाल आयरंगर ने संवैधानिक संशोधन के उदाहरण से स्पष्ट किया है। उदाहरण के रूप में प्रथम संशोधन रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य और मद्रास राज्य बनाम चंपाकम दोराई राजन मुकदमों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के द्वारा पेश 'बाधा' को दूर करने के लिए किया गया था। चौथे, सत्रहवें, पच्चीसवें और छब्बीसवें संशोधन कई दूसरे मुकदमों में निर्णयों के प्रभाव को रद्द करने के लिए गए थे। 26वें संशोधन माधव राव सिंधिया बनाम भारत सरकार (प्रिवी पर्सन मुकदमा) के निर्णय पर हावी होने के लिए किया गया था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय से पैदा हुई समस्याओं जिससे 1971 की चुनावों में रायबरेली क्षेत्र से लोकसभा के इन्दिरा गांधी के चुनाव को रद्द कर दिया था, से निपटने के लिए 39वां संशोधन किया गया था।

2. न्यायपालिका पर हावी होने के लिए 1976 में 42वां संशोधन किया गया था। इसमें संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त अपनाया गया था। संवैधानिक संशोधन न्यायिक पुनर्निरीक्षण के क्षेत्र से बाहर रखे गए थे, उच्च न्यायालयों को संघीय कानूनों पर न्यायिक पुनर्निरीक्षण करने की मनाही की गई थी, 2/3 बहुमत से निर्णयों की व्यवस्था करके न्यायिक पुनर्निरीक्षण को कठिन बना दिया गया था, 'किसी अन्य उद्देश्य के लिए' व्यक्ति की गवाही पर उच्च न्यायालय के द्वारा आदेश जारी करने की शक्ति वापस लेकर, दूसरे अन्य संबंधों में, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों सहित दीवानी न्यायालयों के समूचे अधिकार क्षेत्र वापस ले लिए गए थे और प्रशासनिक ट्रिब्यूनलों को सौंप दिए गए थे जिनको संसद की ओर से कानून के द्वारा स्थापित किया जाना था, और अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय का प्रशासनिक ट्रिब्यूनलों पर निगरानी करने का अधिकार क्षेत्र वापस ले लिया गया था। इस प्रकार, न्यायपालिका को दूसरे दर्जे की स्थिति में पीछे ले जाने का प्रयास किया गया था। परन्तु सौभाग्यवश, संविधान के 43वें संशोधन के द्वारा ऐसे प्रयास को रद्द कर दिया गया।

3. 1951 में संविधान के प्रथम संशोधन के द्वारा संविधान में 31-वीं अनुच्छेद और 9वीं अनुसूची शामिल की गई। इस अनुसूची में ऐसे कानून सूचीबद्ध किए गए जिन पर न्यायिक पुनर्निरीक्षण नहीं हो सकता था। 1951 के पश्चात् इस अनुसूची में शामिल कानूनों की संख्या निरन्तर बढ़ती रही है। अब इसमें 200 में भी अधिक कानून सूचीबद्ध कर दिए गए हैं। इस प्रकार न्यायपालिका का पुनर्निरीक्षण की शक्ति को सीमित किया गया है।

4. कार्यपालिका की ओर से न्यायिक स्वतंत्रता को कम करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की वरिष्ठता का उल्लंघन करके जूनियर न्यायाधीशों को प्रमुख न्यायाधीश नियुक्त करना भी एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास रहा था। 1973 में जस्टिस ए० एन० रे को तीन सबसे वरिष्ठ न्यायाधीशों—जिनके नाम जस्टिस शेल्ट, जस्टिस हेगड़े और जस्टिस ग्रोवर थे, की वरिष्ठता का उल्लंघन करके भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। इसके पश्चात् जब जस्टिस एच० एम० बेग को भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया था तो जस्टिस एच० आर० खन्ना की वरिष्ठता का उल्लंघन किया गया। इन सभी मामलों में वरिष्ठता उल्लंघन किए न्यायाधीशों ने रोष के रूप में त्याग-पत्र के दिए थे। परन्तु 1977 के पश्चात् वरिष्ठता के सिद्धान्त का कोई उल्लंघन नहीं किया गया। ऐसे लगता है कि वरिष्ठता सिद्धान्त को सभी न्यायिक नियुक्तियाँ और पदोन्नतियों में पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया गया है। वास्तव में अब सरकार ने नियुक्ति और न्यायाधीशों की पदोन्नति से संबंधित सभी मामलों में वरिष्ठता के सिद्धान्त को अपनाने के लिए वचनबद्ध होने का घोषणा की है।

5. असहयोगी न्यायाधीशों से निपटने के लिए उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानांतरण को व्यवहार में लाया जाता रहा है। इस व्यवहार की न्यायपालिका की ओर से विरोधता भी की गई है और जनमत भी इसके पूर्ण पक्ष में प्रतीत नहीं होता। परन्तु कार्यपालिका ने सदैव इसका प्रयोग किया है, यद्यपि सैद्धान्तिक रूप में इसका कम से कम प्रयोग किए जाने की बात सरकार ने स्वीकार की हुई है।

6. संसद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की आलोचना जैसे नाथ पाई बिल 1969 पर चर्चा भी न्यायपालिका के सम्मान को कम करने का एक प्रयास था।

7. सर्वोच्च न्यायालय और संसद के विचारों में अन्तर, जो संविधान के भाग III और भाग IV के संबंधों के मुद्दे पर थे, का प्रयोग संसद के कई सदस्यों की ओर से न्यायपालिका को 'पिछड़ी' या 'प्रतिक्रियावादी' संस्था के रूप में कहने के लिए किया गया था। परन्तु जनमत के सामान्य रूप में कभी भी इस दोष को उचित नहीं माना। सर्वोच्च न्यायालय ने भी समाज की इच्छाओं और सामाजिक-आर्थिक आवश्यकता के हित में अपने कई निर्णयों के एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपना कर जनमत और संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार व्यवहार किया है।

कई बार कार्यपालिका ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के हस्तांतरण की नीति का दुरुपयोग किया है और कई ऐसे परिवर्तन राजनीतिक परिवर्तन भी रहे हैं। कई बार सेवा-निवृत्त न्यायाधीशों को गवर्नर भी नियुक्त किया गया है। ऐसे प्रयासों के द्वारा न्यायिक स्वतंत्रता को सीमित करने का प्रयास किया जाता रहा है। परन्तु अब सौभाग्य से कार्यपालिका ने इस सिद्धान्त को अपना लिया है कि बिना सर्वोच्च न्यायालय के परामर्श से कोई ऐसा कार्य, नीति और हस्तांतरण नहीं किया जाएगा जिससे न्यायिक स्वतंत्रता सीमित होती हो। यह एक अच्छा लक्षण है और यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता और स्वतंत्र व्यवहार को बनाए रखने में काफी सहायक सिद्ध हुआ है।

इन प्रयासों के बावजूद, जो कार्यपालिका और विधानपालिका की ओर से किए गए हैं, भारत की न्यायपालिका ने सदैव स्वतंत्र न्यायपालिका के रूप में व्यवहार किया है। नागरिकों के मौलिक अधिकारों और संविधान की रक्षा के लिए और सभी को न्याय देने के लिए भारतीय न्यायपालिका ने वचनबद्धता से अपने संवैधानिक उत्तरदायित्वों को निभाया है। इसके संविधान की मौलिक संरचना को परिवर्तित न करने के पक्ष में किए निर्णय ने इसको और लोकप्रिय बना दिया है। इसने पिछले कुछ समय में सार्वजनिक हित मुकद्दमे की प्रणाली का बड़ा कार्य हाथ में लिया है। इसने लोगों की आसान पहुँच में लाने के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय देने के लिए नए ढंग प्रयोग किए हैं। जस्टिस पी० एन० भगवती के शब्दों में, "सर्वोच्च न्यायालय ने कई नवीन वचनबद्धताओं का विकास किया है। इसने भागीदारिता न्याय व्यवस्था को आगे बढ़ाया है। इसने प्रक्रिया के न्यायमुक्त स्तर बनाए हैं। इसने न्याय को नागरिकों की पहुँच में आगे से अधिक पहुँचाया है।" जरूरतमंदों और गरीबों के लिए मुफ्त कानूनी सहायता, सार्वजनिक हित मुकदमा प्रणाली और लोक अदालतों की प्रणाली हमारे समय के प्रशंसनीय विकास है। भारत में न्यायपालिका ने न केवल अपनी स्वतंत्रता विद्यमान रखी है बल्कि संविधान की पवित्रता को भी कायम रखा है तथा लोगों के मौलिक अधिकारों, स्वतंत्रताओं और न्याय के लक्ष्यों को भी पूर्ण किया है। सर्वोच्च न्यायालय ने कभी भी केन्द्र सरकार और इनके कर्मचारियों, राज्य सरकार और राज्य के कर्मचारियों को चेतावनी देने से हिचकिचाहट नहीं दिखाई। उच्च न्यायालयों ने भी सर्वोच्च न्यायालय के उदाहरण के सदैव पालन किया है। उन्होंने भी केन्द्र और राज्य

सरकारों की ओर से किए उन चुनावों, भर्तियों, नियुक्तियों, अधिकार-क्षेत्रों और पदोन्नतियों को एक ओर रख दिया जिन्होंने देश के कानूनों और संविधान की धाराओं या प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त को तोड़ा था। वास्तव में भारत उसे न्यायपालिका ने प्रशंसनीय ढंग से अपनी वांछित भूमिका निभाई है। आजकल एक नई शक्तिशाली न्यायिक सक्रियता को सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ भारत के उच्च न्यायालयों की ओर से भी व्यवहार में लाया जा रहा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य बताइए—

7. भारत में न्यायपालिका न तो कार्यपालिका की एक शाखा है, और न ही विधानपालिका की एक दासी है। संविधान के अधीन इसकी स्वतंत्र पहचान और अस्तित्व है।
8. किसी न्यायाधीश को उसके पद से महाभियोग की प्रक्रिया के द्वारा हटाया जा सकता है।
9. न्यायपालिका पर हावी होने के लिए 1976 में 42वाँ संशोधन किया गया था। इसमें संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त अपनाया गया था।
10. पी.आई.एल. का पूरा नाम Public Interest Litigation है।

सारांश (Summary)

- सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था को हम एक ऐसी कानूनी व्यवस्था की तरह परिभाषित कर सकते हैं जिसमें कानून के न्यायालय किसी सार्वजनिक या सामान्य हित की सुरक्षा के लिए कार्यवाही अर्थात् मुकदमा आरम्भ कर सकते हैं।
- सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था एक नई पहल है जिसका धीरे-धीरे विकास हो रहा है और धीरे-धीरे यह व्यवस्था लोकप्रिय हो रही है।
- संविधान के 42वें संशोधन के द्वारा एक नया निर्देशक सिद्धान्त 39(ए) अपनाया गया जिसके द्वारा राज्य को यह निर्देश दिया गया कि वह कानून व्यवस्था को इस प्रकार चलाए कि लोगों को न्याय प्राप्त करने के एक-समान अवसर प्राप्त हों।
- लोक अदालतों की व्यवस्था ने विश्वसनीय रूप में एक प्रशंसनीय कार्य किया है इसने न्यायपालिका के भार को घटाया तथा न्याय प्राप्ति की प्रक्रिया को आसान और कम खर्चीला बनाया है।
- नागरिकों के मौलिक अधिकारों और संविधान की रक्षा के लिए और सभी को न्याय देने के लिए भारतीय न्यायपालिका ने वचनबद्धता से अपने संवैधानिक उत्तरदायित्वों को निभाया है।
- सर्वोच्च न्यायालय ने कभी भी केन्द्र सरकार और इनके कर्मचारियों, राज्य सरकार और राज्य के कर्मचारियों को चेतावनी देने से हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था क्या है?
2. सार्वजनिक हित मुकदमा व्यवस्था की विशेषताएँ बताइए।
3. लोक अदालत से आप क्या समझते हैं?
4. न्यायपालिका की स्वतंत्रता को स्पष्ट कीजिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

- | | |
|----------|--------------|
| 1. कानून | 2. पी.आई.एल. |
| 3. कागजी | 4. (c) |
| 5. (a) | 6. (b) |
| 7. सत्य | 8. सत्य |
| 9. सत्य | 10. सत्य |

संदर्भ पुस्तकें (Further Reading)

1. भारतीय राजनीतिक प्रणाली— यू.आर. घई।
2. भारतीय शासन और राजनीति— पी. रस्तोगी।